ओ३म्

सन् १८५७ से १९४७

भारत वर्ष की सशस्त्र क्रान्ति का इतिहास

सन् १८५७ से १९४७

कर्नल देवमित्र गुप्त

२०१२

॥ ओ३म् ॥

भारत वर्ष की सशस्त्र क्रान्ति का इतिहास

सन् १८५७ से १९४७

लेखक

कर्नल देवमित्र गुप्त

प्रकाशक

हितकारी प्रकाशन समिति

हिण्डौन सिटी-३२२ २३० (राज०)

S२०९

इस पुस्तक के प्रकाशन में प्रूफ आदि की सावधानी बरती गई है। इसके पश्चात् भी यदि कोई त्रुटि रह गई हो तो कृपया हमें लिखकर भिजवाएँ।

—प्रकाशक

प्रकाशक : **हितकारी प्रकाशन समिति**
ब्यानिया पाड़ा, द्वारा-'अभ्युदय' भवन, अग्रसेन कन्या महाविद्यालय मार्ग, स्टेशन रोड, हिण्डौन सिटी, (राज०)- 322 230
चलभाष : 7014248035, 9414034072
Email-aryaprabhakar@yahoo.com

प्राप्ति स्थान : 1. **श्री ऋषिदेवजी**
www.vedrishi.com
चलभाष : 9818704609

2. **श्री गणेशदास-गरिमा गोयल**
वैदिक साहित्य प्रतिष्ठान, 4058-59, बिजली घर के सामने, नया बाजार, दिल्ली-110 006
व्यवस्थापक-9329125396
श्री गणेशदास-9212458841

संस्करण : सन् 2019

मूल्य : १२०.०० रुपये

शब्द-संयोजक : **आर्य लेजर प्रिंट्स**, हिण्डौन सिटी (राजस्थान)

मुद्रक : **राधा प्रेस**, 38/2/16, साइट 4, साहिबाबाद (उ०प्र०)

भूमिका

भारत वर्ष के ज्ञात इतिहास में राष्ट्र पर पहला विदेशी आक्रमण, ईसा से करीब ३०० वर्ष पहले ग्रीस के राजा सिकन्दर द्वारा हुआ था। प्रारम्भिक जीत के बाद सिकन्दर को चाणक्य व चन्द्रगुप्त ने बुरी तरह पराजित कर दिया तथा वह अपने देश जाते-जाते रास्ते में ही मर गया। उसके सेनापति सेल्यूकस को अपनी पुत्री 'हेलन' का विवाह चन्द्रगुप्त के साथ करना पड़ा।

पश्चात् विदेशी मुस्लिम आक्रान्ताओं का युग आया। जिसमें सन् ७३० से लगभग सन् १२०० तक तीन बार हमले हुये, जिनका नेतृत्व क्रमशः मोहम्मद बिन कासिम, महमूद गजनबी व मुहम्मद गौरी द्वारा किया गया। ये लोग लूटपाट, क्रूरता आदि करके वापस चले गये।

सन् १२०५ से राष्ट्र के सही मायने में दुर्भाग्य का समय प्रारम्भ होता है, जब एक गुलाम कुतुबुद्दीन ऐबक, भारत के मुस्लिम शासित क्षेत्र का बादशाह बना तथा उसकी राजधानी देहली बनी। तब से करीब ५०० वर्ष यथा सन् १७०७ तक, किसी न किसी विदेशी मुस्लिम आक्रान्ता का राज रहा तथा औरंगजेब की मृत्यु यथा १७०७ से करीब १५० वर्ष तक यानी १८५७ तक इनका राज्य किसी प्रकार घिसटता रहा, जब अंतिम बादशाह बहादुरशाह जफ़र को अंग्रेजों ने देश निकाला देकर रंगून भेज दिया।

औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् सन् १७०७ से प्रारम्भ हुये संक्रमण काल में अंग्रेजों की भी महत्वाकांक्षाएँ बढ़ी तथा सन् १७५७ में रोबर्टक्लाईव ने, भारत भूमि पर अपना खूनी पंजा गड़ाकर विदेशी मुगलों के बाद भारत में अपना राज्य विस्तार करने की दावेदारी प्रस्तुत कर दी तथा सन् १८५७ आते-आते, भारत के काफी हिस्से को अपने अधिकार में ले लिया। जो १५ अगस्त १९४७ तक तथा करीब १९० वर्ष तक चला।

विदेशी मुस्लिम आक्रान्ताओं का राज्यकाल भारतीयों पर बर्बरता, क्रूरता व अत्याचार से भरा पड़ा है। भारत के उन क्षेत्रों को जहाँ ये राज्य करते थे वहाँ उन्होंने इस्लामिक राज्य घोषित किया हुआ था तथा इस प्रकार इस्लाम न मानने वाले भारतीयों पर किस-किस प्रकार की ज्यादतियाँ की गई होंगी उसकी एक झलक

आज के काल यथा २०१२ में विश्व के घोषित इस्लामिक देशों में, गैर इस्लामिक जनता की क्या दुर्दशा होती होगी, आज भी देखने को मिलती है। अतः तब के मध्य कालीन युगीय इस्लामिक राज्यों की क्रूरता की कल्पना करना मुश्किल है। सभी ने गैर इस्लामिक जनता पर धार्मिक कर 'जजिया' लगाया हुआ था।

इतनी सारी क्रूरता करने के बाद भी इन बादशाहों ने भारत की सामाजिक, आर्थिक व अन्य संरचनाओं को बिल्कुल अछूता ही रखा था तथा उसमें किसी प्रकार की बाधा नहीं डाली थी परन्तु यदि हम इन विदेशी मुस्लिमों के करीब ६५० वर्षों के किये गये अत्याचारों की तुलना अंग्रेजों के लगभग २०० वर्ष के राज्य काल में किये गये अत्याचारों से करें तो वे बहुत ही बौने साबित होते हैं। इन मुस्लिमों ने अपने पूरे कार्यकाल में भी इतनी क्रूर हत्याएँ नहीं की होंगी, जितनी कि अंग्रेजों ने मात्र ९० वर्षों यथा सन् १८५७-१९४७ के बीच कर दीं। भारत में ब्रिटिश राज्य से सम्बन्धित अभिलेख जब Declassify करके, इंग्लैण्ड के Archive Section में जन साधारण के लिये रखे गये उनके अनुसार ऊपर दिये गये कालखण्ड में अंग्रेजों ने करीब साढ़े सात लाख भारतीयों की हत्या कर दी थी। इनमें निरीह जनता से लेकर वे बलिदानी क्रान्तिकारी भी थे जिन्होंने मातृभूमि की बलिवेदी पर अपने प्राण न्यौछावर कर दिये। उन्हें या तो मार डाला गया या झूंठे दिखावटी मुकद्दमे चलाकर मृत्युदण्ड दे दिया गया। सभ्य समाज के इतिहास में क्रूरता के रिकॉर्ड बनाते इन अंग्रेजों ने जलियाँवाला बाग पंजाब (सन् १८१८) में करीब ४००० लोगों तथा गुजरात में मानगढ की पहाड़ी पर १७-११-१९१३ को निरीह १५००-२००० भीलों की हत्या करने अति घृणित रिकॉर्ड भी बनाया।

साथ ही भारत के सामाजिक व आर्थिक ढाँचे को पूरी तरह से ध्वस्त करके तथा भारतीय इतिहास की गलत व पक्षपात पूर्ण व्याख्या करके राष्ट्रीय मानस को भीषण चोट भी पहुँचाई। कृषि व उस पर आधारित सारे ही उद्योग-धन्धों को पूरी तरह से समूल नष्ट करके भारतीयों को भुखमरी में उस मोड़ पर ले आये जहाँ उनके शासनकाल के ९० वर्षों में करीब ५-६ भीषण अकाल पड़े जिनमें मृत्यु दर कितनी हुई इसका कोई हिसाब नहीं है।

यह भी एक कटु सत्य है कि इस दुर्दशा के मूल में हम भारतीयों के पूर्वजों की अकर्मण्यता, मूर्खता व नपुसंकता प्रमुख कारण है, जिसकी वजह से ही यह सब विनाश सम्भव हो सका। अतः हम कम से कम भविष्य के लिये तो सबक ले ही सकते हैं।

वर्तमान पुस्तक में हम मुख्यत: १८५७ से १९४७ तक ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध भारतीयों के किये गये अतुलनीय प्रयासों का संक्षिप्त विवरण देने का प्रयत्न करेंगे। इस महायज्ञ में आम भारतीय जनता, क्रान्तिकारी, यहाँ तक कि सेना सभी समय-समय पर शामिल हुये।

१७०७ में औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् मुगल शासन तन्त्र पूरी तरह अक्षम हो चुका था, तथा भारत में व्यापार कर रही ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने अपने लिये सुयोग्य व उपयुक्त अवसर समझकर भारत पर अपना अधिकार करने के प्रयास शुरू कर दिये तथा १७५७ के प्लासी के युद्ध में रोबर्टक्लाईव ने सिराजुद्दौला को हराकर अंग्रेजी राज्य विस्तार की दिशा में पहला व महत्त्वपूर्ण पड़ाव जीत लिया। कालान्तर में अपने सारे प्रयासों के बावजूद हैदरअली, टीपू सुल्तान, महादजी सिंधिया आदि एक-एक करके ब्रिटिश द्वारा पराजित होते गये। बंगाल में संन्यासियों द्वारा किया जाने वाला सशस्त्र विद्रोह भी दबा दिया गया। तथा १८वीं सदी के अन्त में मराठा पेशवा का भी यह हाल हो गया कि उसे कुछ लाख पैंशन के बदले अपना राज्य अंग्रेजों के हवाले करना पड़ा तथा वह स्वयं कानपुर के पास बिठूर (ब्रह्मवर्त) नामक स्थान पर आकर रहने लगा।

ब्रिटिश फौज में कार्यरत भारतीय सैनिकों ने भी १८५७ तक कई असफल विद्रोह किये, जिनमें से कुछ का विवरण जैसा कि अंग्रेजों ने अपनी पुस्तकों में दिया है वह इस प्रकार है—

सन् १७५७ से लेकर १८५७ के स्वतन्त्रता समर के काल के बीच भी ब्रिटिश द्वारा हथियाये गये राज्यों के सैनिकों में उठे कुछ विद्रोहों का भी जिक्र है। जिसे अत्यन्त क्रूरतापूर्वक दबा दिया गया। यथा सन् १७६४ में बंगाल सेना में व्यापक विद्रोह हुआ जिसके विद्रोहियों को तोप से उड़ा दिया गया। इसका ब्यौरा कप्तान क्रम ने अपनी बंगाल आर्मी नामक पुस्तक में बड़ी शान से किया है। बंगाल में ही दूसरा विद्रोह सन् १७९५ में हुआ जिसका विवरण कलकत्ता गजट में है। ३ सितम्बर को बंगाल आर्मी की १५वीं बटालियन को डचों के साथ युद्ध करने के लिये समुद्र मार्ग से भेजा जाना था। सिपाहियों ने मना कर दिया। अत: बटालियन तोड़ दी गयी तथा उसके मुख्य प्रेरणा स्त्रोत रघुनाथ सिंह, उमरावगिरि, यूसुफ खाँ आदि को तोप से उड़ा दिया गया। १८०६ में बेल्लूर में मद्रास आर्मी की देशी सेना ने विद्रोह किया तथा १८५५ में २१ सितम्बर को निजाम की ३ घुड़सवार सेना ने विद्रोह किया तथा

अपने अंग्रेज अफसर ब्रिगेडियर मैकेञ्जी को बुरी तरह घायल कर दिया। इस विद्रोह के सारे नेता मुसलमान थे।

इस प्रकार सन् १८५७ समीप आता जा रहा था तथा पिछले १०० वर्षों में ब्रिटिश क्रूरता व अत्याचारों से ग्रसित भारतीय मानस में, इस शासन पद्धति के विरुद्ध जो बीज पड़े थे, वे सशक्त अंकुर के रूप में प्रस्फुटित होकर अपने लिये नियत स्वतन्त्रता प्राप्ति की भूमिका में उतरने के लिये तैयार थे। सन् १८५७ के स्वातन्त्र्य समर में, केन्द्रीय सक्षम नेतृत्व विहीन भारतीय सैनिक व जनता, पूरे तूफानी वेग से अंग्रेजों से लड़ी तथा कालान्तर में पराजित भी हुई पर उनके उद्योग से तैयार, अग्नि स्फुलिंगयुक्त स्वतन्त्रता प्राप्ति का अश्वमेध का वह अश्व तैयार हो चुका था जिसको भविष्य के क्रान्तिकारियों व राष्ट्र भक्तों ने तब तक साहस व वीरतापूर्वक सारे राष्ट्र में घुमाया जब तक कि १९४७ में आजाद हिन्द फौज द्वारा अपनी पूर्ण आहूति देने पर ब्रिटिश शत्रु का सफाया नहीं हो गया, तथा भारत में भारतवासियों का ही एक संयुक्त चक्रवर्ती राज्य काश्मीर से कन्या कुमारी तथा आसाम के वनों से पश्चिम के समुद्र तक स्थापित हो गया।

इन घटनाओं का संक्षिप्त वर्णन कर भारतीयों के सन्मुख रखने का प्रयास करते हुये हम उन असंख्य राष्ट्र प्रेमियों, क्रान्तिकारियों सैनिकों व नेताओं को अपने श्रद्धासुमन अर्पित करते हैं जिनके प्रयासों से हम आज स्वतन्त्र भारत में आजादी के वायुमण्डल में सांस ले रहे हैं।

इस लघुपुस्तिका को तैयार करने में विशेष रूप से जिन ग्रन्थों से सामग्री व सन्दर्भ लिये गये हैं वे इस प्रकार हैं—

१. १८५७ का स्वातन्त्र्य समर—वीर सावरकर
२. फांसी के फन्दे तक—यशपाल
३. वे अमर क्रान्तिकारी—मन्मथनाथ गुप्त
४. भारतीय क्रान्तिकारी आन्दोलन का इतिहास—मन्मथनाथ गुप्त

निवेदक

कर्नल देवमित्र गुप्त
ए-२ कावेरी व्यापार केन्द्र,
कावेरी विहार, फेस-1,
शमशाबाद रोड,
आगरा-२८२ ००१
फोन नं.-०५६२-६५३४३८८
मो. नं.-०९२५९१०३४३५

विषय-सूची

क्र.सं.	विषय	पृ.सं.
	भूमिका	३
	खण्ड-१, १८५७ का महासंग्राम	**१०-९२**
१.	१८५७ से पूर्व जन असन्तोष व पेशवा नाना साहब	११
२.	मंगल पाण्डे : क्रान्ति का प्रथम स्फुलिंग तथा मेरठ क्रान्ति	१६
३.	देहली : क्रान्ति का केन्द्र	१९
४.	क्रान्तिकारियों से मुठभेड़ प्रारम्भ	२१
५.	अलीगढ़, रूहेलखण्ड आदि स्थानों में स्फुलिंग	२२
६.	बनारस, इलाहाबाद आदि स्थानों में क्रान्ति सैनिकों की बदली रणनीति	२५
६.	कानपुर व झाँसी का रण	३०
७.	अवध का संग्राम	३५
८.	मध्यान्तर : कुछ राज्यों व रियासतों में पशोपेश व अनिश्चितता का माहौल	३८
९.	वायसराय व इंग्लैण्ड को क्रान्ति की अपूर्ण जानकारी	४०
१०.	दिल्ली का महासंग्राम	४२
११.	अवध का प्रवेश द्वार-कानपुर	५१
१२.	बिहार के तेवर व कुंवर सिंह	५२
१३.	लखनऊ की क्रान्ति, नाना साहब का पेंच तथा हैवलॉक की परेशानी	५५
१४.	तांत्या टोपे : कानपुर का अन्तिम युद्ध	६३
१५.	लखनऊ का पतन	६६
१६.	कुँवर सिंह व अमर सिंह	७१
१७.	रूहेलखण्ड का मोर्चा : मौलवी अहमदशाह	

का बलिदान ७४
१८. रानी लक्ष्मीबाई : झाँसी और ग्वालियर का पतन ७८
१९. स्वातन्त्र्य समर के विविध आयाम : सुसुप्त तथा भीरु रियासतें ८४
२०. अवध का अन्तिम रण व क्रान्ति का पटाक्षेप ८६
२१. तांत्या टोपे, राव साहब तथा शहजादा फिरोजशाह का बलिदान ८९

खण्ड-२, १८५७ पश्चात् की कुछ क्रान्तिकारी विभूतियों का संक्षिप्त परिचय ९३-१२६

२२. राम सिंह कूका ९४
२३. लोकमान्य बालगंगाधर तिलक ९६
२४. श्यामजी कृष्ण वर्मा ९८
२५. मदाम भीकाजी कामा १०६
२६. सोहनलाल पाठक १०९
२७. कर्तार सिंह सराभा १११
२८. चिंदवरम् पिल्लै ११३
२९. बाघा जतीन ११४
३०. सूर्यसेन १२०

खण्ड-३, १८५७ पश्चात् के क्रान्तिकारियों का अश्वमेध यज्ञ १२७-२१६

३१. १८५७ से सदी के अन्त तक क्रान्तिकारी गतिविधियाँ व काँग्रेस का जन्म १२८
३२. बंगाल में क्रान्ति का सूत्रपात १३१
३३. उत्तर प्रदेश, पंजाब व दिल्ली में भी क्रान्तिकारी गतिविधियाँ १३७
३४. प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान प्रवासी भारतीयों द्वारा भारतवर्ष में सशस्त्र क्रान्ति कराने के प्रयासों का संक्षिप्त विवरण १४१
३५. भारत में शस्त्र पहुँचाने की योजनायें तथा अंग्रेजों

पर आक्रमण करने की योजनाओं का
संक्षिप्त विवरण १४९
३६. उत्तर प्रदेश में क्रान्तिकारी आन्दोलन १५४
३७. सुदूर पूर्व व मध्य पूर्व देशों में स्वतन्त्रता संग्राम
के प्रति जागृति १५८
३८. १८५७ से लगभग १९१५-१६ तक हुई
सशस्त्र क्रान्ति प्रयासों पर एक दृष्टिपात व
मुस्लिम जगत् १६०
३९. असहयोग का युग व महात्मा गाँधी का पदार्पण १६३
४०. असहयोगोत्तर क्रान्तिकारी आन्दोलन :
काकोरी काण्ड १६८
४१. लाहौर षड्यन्त्र और सरदार भगत सिंह १७८
४२. असेम्बली में बम धमाका : भगत सिंह आदि
को फाँसी तथा क्रान्तियुग का अन्त १८२
४३. असहयोग आन्दोलन के ठप्प होने के बाद
काँग्रेस आदि संस्थानों के कार्यकलापों पर
एक विहंगम दृष्टि १८५
४४. १९२९ के बाद क्रान्तिकारियों के कार्यकलाप
तथा व्यक्तिगत क्रान्तिधारा का अन्त १८८
४५. दण्डी मार्च का भारत तथा द्वितीय विश्वयुद्ध
के लक्षणों का उदय १९०
४६. असमंजस ग्रस्त काँग्रेस की समकालीन
गतिविधियाँ १९३
४४. और भारतीय जनसमूह ने अगस्त क्रान्ति कर दी १९५
४६. १९४५ में काँग्रेस का तर्कहीन प्रस्ताव व
उस पर कुछ काँग्रेसियों की प्रतिक्रिया २०८
४७. आजाद हिन्द फौज : सुभाषचन्द्र बोस २१०

खण्ड-१

सन् १८५७ का महासंग्राम

१८५७ से पूर्व जन असन्तोष व पेशवा नाना साहब

इटली के प्रसिद्ध दार्शनिक व देशभक्त मेजिनी के अनुसार, ''हर क्रान्ति की नींव में कोई न कोई तत्त्व होना ही चाहिए।'' १८५७ में घटित प्रचण्ड क्रान्ति के इतिहास का विश्लेषण यदि हम ऊपर दी गयी परिभाषा के अनुसार करें तो हमें भी इसके मूल तत्त्व तक पहुँचने में अधिक समय नहीं लगेगा तथा यह निष्कर्ष निकलेगा कि ऐसी प्रचण्ड क्रान्ति, जो पेशावर से लेकर कलकत्ता तक एक अत्यन्त सशक्ततम, अंधड़ के रूप में चली, उसका उद्देश्य अपनी सामर्थ्यानुसार उन खास चीजों को नष्ट कर देना था जो भारत के उस काल में अंग्रेजों की गुलामी व बर्बर अत्याचार का मुख्य हेतु थीं।

क्रान्ति के दिव्य तत्त्व थे, 'स्वधर्म व स्वराज्य'। अपने प्राण प्रिय धर्म व स्वतन्त्रता पर भयंकर विघातक व कपटपूर्ण हमला हुआ है, यह स्पष्ट होते ही सारे भारत में असन्तोष की चिंगारियाँ निकलने लगी जिनका प्रारम्भ १७५७ के मई मास में प्लासी के युद्ध में ब्रिटिश शासन के रोबर्ट क्लाइव द्वारा किया गया। बर्बरतापूर्ण आक्रमण व अनगिनत भारतवासियों के खून से अपने हाथ रंगने के कारण, तथा कालान्तर में ब्रिटिश शासकों द्वारा एक के बाद एक भारतीय राजाओं के राज्यों को येन केन प्रकारेण छल, बल, कृतघ्नता, विश्वासघात व सारे नियमों को अपने पक्ष में रखकर राज्यों को हड़पने व अपने अधिकार में लेने के कारण ये चिंगारियाँ और प्रज्ज्वलित हुईं तथा १८५७ आते-आते इन चिंगारियों से एक ऐसे ज्वालामुखी का सृजन हुआ जिसके विस्फोट से तत्कालीन ब्रिटिश शासन की भी एक बार चूलें हिल गईं।

इटालियन दार्शनिक मेजिनी कहता है, ''स्वतन्त्रता प्रत्येक का प्रकृति प्रदत्त अधिकार है, और इसका अपहरण करने की इच्छा के अत्याचार को मिटाना भी प्रत्येक का प्रकृति प्रदत्त कर्त्तव्य है। व्यक्ति की, राष्ट्र की व मनुष्य जाति की प्रगति के लिये उसमें चैतन्यता चाहिए। परन्तु जहाँ स्वतन्त्रता नहीं होती वहाँ चैतन्यता नहीं होती। अतः इस चैतन्यता की प्राप्ति के लिये मानव बन्धुओं

के पैरों में पड़ी गुलामी की जंजीरों को किसी प्रकार निकाल फैंकना ही उचित है। अन्ततः स्वतन्त्रता व गुलामी के झगड़े में अन्तिम जय स्वतन्त्रता की ही होती है।''

१८वीं सदी से ही अंग्रेजों ने इस क्रान्ति के बीज कहाँ-कहाँ नहीं बोये। हैस्टिंग्स ने काशी, रुहेलखण्ड, बंगाल में, तो वेलेजली ने मैसूर, आंसई, पुणे, सतारा तथा उत्तरी भारत में इस क्रान्ति की बुआई की। यद्यपि इस बुआई में जगह-जगह उन्हें तरह-तरह के प्रतिरोधों का सामना करना पड़ा। इन बढ़ती चिंगारियों की पूर्णाहुति कर इसे धधकते ज्वालामुखी में परिवर्तित करने वाला डलहौजी था। जो क्रूरता, बर्बरता, बेईमानी की पराकाष्ठा कर, भारत के राज्यों को एक के बाद एक ब्रिटिश शासन में मिलाता गया तथा १८५७ तक अर्थात् मात्र १०० वर्ष में यह ज्वालामुखी अपनी पूर्ण शक्ति व तेज के साथ विस्फोट करने को तैयार था।

इस विस्फोट को करने तथा अपनी पूर्णाहुति देने को तत्पर अनगिनत जाने-अनजाने बलिदानियों में से कुछ थे, एक साधारण परिवार में जन्मे तथा अन्तिम पेशवा रावजी, जो अपना राज्य छोड़ कानपुर आ गये थे, द्वारा गोद लिये गये नाना साहब, तथा उसी प्रकार साधारण परिवार में जन्मी तथा बाद में झाँसी के राजा गंगाधर राव की पत्नी बनी, महारानी लक्ष्मीबाई जिन्होंने अंग्रेजों को झाँसी देने से साफ इन्कार कर दिया तथा अन्तिम सांस तक लड़ती रही। नाना साहब के मन्त्री श्री अजीमुल्ला तथा तांत्या टोपे।

पेशवा रावजी की मृत्यु के बाद आठ लाख की पैंशन अंग्रेजों द्वारा बन्द किये जाने पर नाना साहब ने अपने अति विश्वस्त, कर्मठ राष्ट्रभक्त मन्त्री अजीम उल्लाह खान को इंग्लैण्ड भेजा। वहीं पर उनकी मुलाकात श्री रंगोजी बापू से हुई। जो सतारा राज्य की गद्दी के सम्बन्ध में बात सुलझाने के लिये वहाँ आये हुये थे। इन दोनों ही दुर्घर्ष राष्ट्रभक्तों में क्या मन्त्रणा हुई यह तो कभी मालूम नहीं पड़ेगा। परन्तु अपने-अपने प्रयासों में इंग्लैण्ड से निराश होकर लौटने पर वे दोनों ही एक प्रखर आत्मविश्वास से भरे हुये थे तथा अपने-अपने क्षेत्रों में अभीष्ट सिद्धि के लिये लग गये। नाना साहब से गहन मन्त्रणा करने पर अपने देश व स्वराज्य का भविष्य निश्चित करने का वीरोचित निर्णय हो जाने पर, श्रीमन्त नाना साहब का एक मात्र लक्ष्य था उस निर्णय को कार्यरूप देना। क्रान्ति युद्ध की सफलता के लिये दो बातों का होना आवश्यक

है—पहला भारत के समस्त लोगों में स्वतन्त्रता की जंगी व अनिवार्य इच्छा पैदा होना और फिर उस इच्छा की सिद्धि के लिये एक ही समय में पूरे देश द्वारा विद्रोह करना। ये दोनों ही काम विदेशियों को चकमा देकर ही किये जा सकते थे। अन्यथा असफलता व पराजय निश्चित थी।

यह ऐतिहासिक सत्य जानकर श्रीमन्त नाना साहब व अजीमुल्लाह खान ने सन् १८५६ के प्रारम्भ से ही भारत को स्वतन्त्र कराने के लिये तथा जन मानस को तन-मन से जाग्रत करने के लिये एक युद्ध संगठन बनाया। उसी समय अंग्रेज भारत के सारे रजवाड़ों को एक के बाद एक छीनकर अपने अधिकार में करते चले जा रहे थे। यह वास्तविक स्थिति सारे राज्य रजवाड़ों के आगे रखकर उनके मन को स्वतन्त्रतागामी करने के लिये नाना ने हर दरबार में अपने दूत भेजने प्रारम्भ किये। कोल्हापुर, दक्षिण की पटवर्धिनी रियासतें, अवध के जमींदारों और दिल्ली से मैसूर तक की सारी राजधानियों में नाना के दूत व उनके पत्र सारे हिन्दुस्तान को स्वतन्त्रता युद्ध के लिये उठने की चेतना देते हुये घूम रहे थे।

साथ ही अपने देश की ब्रिटिश राज्य में हो रही दुर्गति व बर्बादी का चित्रण बहुत ही मार्मिक व स्पष्ट रूप से जनता के मन में भरते हुये मौलवी, पण्डित व राजनैतिक संन्यासी सारे हिन्दुस्तान भर में गुप्त रीति से बिचरने लगे। हम सब एक हो जायें तो मुट्ठी भर गोरों को धूल चटाकर क्षणभर में देश को स्वतन्त्र करा सकते हैं। इन उद्गारों को जनता सुलभ भाषा में देशवासियों को तरह-तरह से समझाते हुये ये राष्ट्र भक्त अपने कार्य को करने लगे। इस प्रकार १०० वर्षों से इधर-उधर उड़ती हुई चिंगारियों को समूहबद्ध करने में संलग्न नाना व अनगिनत राष्ट्रभक्त हिन्दू, मुसलमान, संन्यासी आदि के अथक् परिश्रम का ही परिणाम था कि काली नदी की लड़ाई में हारे हुये विद्रोहियों से जब अंग्रेजों ने प्रश्न किया, ''हमारे विरुद्ध तुम्हारी उठने की हिम्मत कैसे हुई'' तो विद्रोही सिपाहियों ने उत्तर दिया कि हिन्दुस्तानी सिपाही अगर एक हो गया तो गोरा चटनी के लिये भी नहीं रहेगा।

इस प्रकार भारत में राष्ट्र प्रेम व बलिदान के बीज तो बो दिये गये पर उनके जोरदार अंकुर १८५६ में गोरों द्वारा सारे अवध को हड़प कर जाने से उठे असन्तोष के बाद ही जन मानस में फूटे तथा लोगों में परतन्त्रता के प्रति घृणा उत्पन्न हुई। उसी समय देहली में

भी बादशाह बहादुरशाह जफर के संरक्षण में विद्रोह करने के सम्बन्ध में मन्त्रणाएँ होने लगीं। नाना साहब सबका संयोजन कर ही रहे थे। उधर मौलवियों, पण्डितों व संन्यासियों का प्रचार भी उग्र होता जा रहा था तथा वे घर-घर जाकर क्रान्ति सन्देश देने लगे। इसी प्रकार के प्रचार का कार्य कितने ही गुप्त संगठन कर रहे थे इसकी गणना करना सम्भव नहीं, हाँ-चिंगारियों को समूहबद्ध कर ज्वालामुखी में परिवर्तित करने का मार्ग दिन प्रतिदिन प्रशस्त से प्रशस्ततर होता जा रहा था तथा इस जन जागरण के कार्य में सभी वर्गों के लोग यथा उपदेशक शिक्षक, कवि, गवैये, यहाँ तक कि घर-घर जानेवाली दाईयाँ वैद्य आदि विभिन्न विभूतियाँ भी शामिल होने लगी तथा उनका अभियान घर-घर तक ही सीमित न रहकर मेलों, समारोहों, धार्मिक अनुष्ठानों आदि में भी, अपने रंग दिखाने लगा। ऐसी स्थिति में सन् १८५७ का उदय हुआ तथा ऐसी सूचनायें आने लगी कि भारत में यत्र-तत्र सांकेतिक महत् कार्य का मुहुर्त आ गया है।

राष्ट्रभक्ति व स्वतन्त्रता प्राप्ति की उदात्त भावनाओं को जन-जन में बढ़ानेवाले इन्हीं उपदेशकों, मौलवियों आदि के अथक् व साहसिक प्रयासों का ही फल था कि ब्रिटिश के आधीन भारतीय रेजीमेण्टों, जिन्हें अंग्रेज नेटिव रेजीमेण्ट कहते थे, के सिपाहियों में भी राष्ट्रभक्ति व विद्रोह करने की भावना प्रबल होती गयी। छावनी में जाकर प्रचार करनेवाले कई प्रचारक पकड़े भी गये जिन्हें फाँसी दे दी गयी पर यह कार्य चलता रहा। सैनिकों की गोष्ठियाँ शुरू हो गयी तथा एक रेजीमेण्ट से दूसरी रेजीमेण्ट में संवाद भी होने लगा।

अंग्रेज भी इस पर नजर रखे थे तथा जरा सा भी शक होने पर वे पूरी की पूरी रेजीमेण्ट को निशस्त्र कर देते थे। इस प्रकार मुक्त हुये सिपाही भी जगह-जगह जाकर क्रान्ति का प्रचार करते फिर रहे थे।

पुलिस वाले भी इन सबसे सहानुभूति रखते थे अर्थात् क्रान्ति के स्वर जगह-जगह उठ रहे थे, उन्हें सूत्रबद्ध करने के लिये व सुनियोजित करने के लिये क्रान्ति का निशान रक्त कमल हाथ में लेकर एक क्रान्तिकारी छावनी में रेजीमेण्ट के भारतीय अधिकारी से मिलकर कमल उसके हाथ में दे देता था। पश्चात् वह कमल सारे रेजीमेण्ट के सिपाहियों के हाथों से स्पर्श पाता हुआ अन्त में

उसी क्रान्तिकारी के पास वापिस आ जाता था तथा वह उस पुष्प को लेकर छावनी में अन्य रेजीमेण्टों की ओर चला जाता। इस प्रकार एक भी शब्द कहे बिना उस कमल के स्पर्श मात्र से ही सैनिकों के अन्दर स्फुल्लिंग फूटने लगते थे तथा भावी क्रान्ति के लिये वे उद्यत होने लगते थे।

सेना में जागृति व विद्रोह की ज्वाला भड़काने का पूरा कार्य-कलाप इतने गुप्त व गोपनीय ढंग से हुआ था कि धूर्त अंग्रेजों को भी इसकी अधिक भनक नहीं पड़ सकी। तथा देश की अधिकतर भारतीय पलटनों में राष्ट्रभक्ति व विद्रोह की उत्कट भावना हिलोरें लेने लगीं। सारे देश में सामंजस्य बनाये रखने के उद्देश्य से क्रान्ति के लिये ३१ मई, १८५७ की तारीख निश्चित की गयी। जो गुप्त रूप से सारे सैन्य शिविरों में प्रेषित कर दी गयी। यहाँ यह भी बताना आवश्यक है कि राष्ट्रभक्ति व विद्रोह की धधकती ज्वाला से कुछ पलटनें अब भी अछूती रह गयी थी, जिनमें सिक्खों की व गोरखों की पलटनें प्रमुख थी तथा आगामी स्वतन्त्रता संग्राम में इन पलटनों ने पूरी शक्ति व स्वामी भक्ति से फिरंगियों का साथ दिया। अस्तु।

इन प्रयासों से देश के गाँव-गाँव में व ब्रिटिश अधिपत्य में भारतीय पलटनों में राष्ट्रभक्ति व फिरंगियों के प्रति असीम घृणा व विद्रोह का भाव पैदा हुआ तथा सभी ३१ मई, १८५७ का बेसब्री से इन्तजार करने लगे। यह सारे कार्यकलाप इतनी गोपनीय व सूत्रबद्ध तरीके से सम्पन्न किये जा रहे थे कि अंग्रेजों को इसकी हल्की सी भनक तो थी पर इसके प्रचण्ड रूप की न तो उन्होंने कल्पना ही की थी और न ही उन्होंने स्वप्न में भी सोचा था कि ये नेटिव पलटनें कभी भी उनके खिलाफ इतना प्रलयंकारी विद्रोह करेंगी। अर्थात् उन्हें अपनी इन पलटनों की अटूट स्वामी भक्ति पर पूर्ण विश्वास रहा जो विद्रोह होने के बाद भी काफी समय तक कायम रहा।

हाँ थोड़ी बहुत भनक उन्हें अवश्य थी कि सेना में कुछ सुगबुगाहट है। उसे बीज रूप में ही नष्ट करने के लिये वे इन पलटनों को निशस्त्र करते रहते थे तथा इस प्रकार गोरों की आधीनता से मुक्त हुये ये राष्ट्र प्रेमी सैनिक खुशी-खुशी नौकरी को लात मारकर अन्य पलटनों में विद्रोह की ज्वाला भड़काने निकल पड़ते थे। अस्तु।

मंगल पाण्डे : क्रान्ति का प्रथम स्फुलिंग तथा मेरठ क्रान्ति

जैसी कि आम कहावत है कि सारे ही कार्यक्रम व योजनाएँ पूर्व निर्धारित योजनानुसार नहीं हो पाते हैं। ऐसा ही भाव कुछ अपनी ही विद्रोह पर उतारू पलटनों के अन्दर घट रहा था। अंग्रेज शाम होते ही पलटन के हथियार रखवाकर सैनिकों को नौकरी से निकाल देते थे। इस बार बारी बैरिकपुर में स्थित १९वीं पलटन को निशस्त्र करने की थी तथा बाद में ३४वीं पलटन का नम्बर था। १९वीं पलटन का एक देशाभिमानी सैनिक मंगल पाण्डे इस प्रकार होने वाली बेइज्जती को बिल्कुल सहन नहीं कर पा रहा था। अतः यह जानते हुये भी कि क्रान्ति ३१ मई को तय हुई है उसके सब्र का बाँध टूट गया तथा छावनी में अपने भारतीय हाकिमों से, वह शीघ्र ही विद्रोह करने की प्रार्थना करने लगा पर उसकी बात नहीं मानी गयी। अतः जब २९ मार्च १८५७ को उसकी पलटन परेड पर निशस्त्रीकरण के लिये खड़ी थी, तो वह अपनी लाइन से बाहर निकल आया तथा देश प्रेम सिक्त अपने वचनों से सारी पलटन को विद्रोह करने के लिये भड़काने लगा। तथा इसी आवेश में उसने सार्जेण्ट मेजर की हत्या कर दी। तथा दूसरे अफसर लेफ्टीनेण्ट ह्यूसन (Hewson) के घोड़े को मार डाला तथा इससे पहले लेफ्टीनेण्ट बाहा (Baugh) उसे अपनी रिवाल्वर का निशाना बनाता मंगल पाण्डे ने अपनी तलवार से उस पर मरणान्तर प्रहार करके उसे ही मार डाला।

इस बीच कुछ गोरे उसकी ओर दौड़े पर गोलियाँ खत्म होने व यह जानकर वह पकड़ लिया जायेगा उसने अपने ऊपर आखिरी गोली चला दी जिससे वह घायल हो गया। इस सारे दृश्य में नेटिव पलटन मात्र मूकदर्शक बनी रही तथा किसी ने भी उस अंग्रेज से सहयोग नहीं किया। उसका कोर्टमार्शल हुआ तथा ८ अप्रैल को उसे फाँसी दे दी गयी। इस प्रकार क्रान्ति का पहला स्फुलिंग बैरकपुर में फूटा, जिसकी चिंगारियों ने बाकी पलटनों में भी असीम चेतना का संचार किया। इस घटना के बाद हर एक विद्रोही सैनिक को 'पाण्डे' कहा जाने लगा कि अमुक व्यक्ति भी अब पाण्डे हो गया है।

यद्यपि श्रीमन्त नाना साहब पेशवा क्रान्ति के सुनियोजित संचालन के लिये अप्रैल के अन्त में देहली आ गये थे तथा ३१ मई को समग्र क्रान्ति कर एक ही झटके में सारे भारत में विद्रोह का तुमुल नाद करते हुये सारे ही अंग्रेज सैनिकों उनके परिवारों व अन्य अंग्रेजों के परिवारों की हत्या कर सारे राष्ट्र को फिरंगीविहीन बनाकर देश को स्वतन्त्र कराने के सम्बन्ध में बादशाह जफर आदि से विचार विमर्श कर अवध की ओर चले गये।

परन्तु इतिहास गवाह है कि यह समग्र क्रान्ति एक साथ नहीं हो सकी। मंगल पाण्डे के बलिदान की कहानी बिजली की गति से सारे राष्ट्र में फैल गयी तथा सारे ही स्थानों पर सैनिक कुछ न कुछ करने को उतावले होने लगे। अंबाला के सैनिकों ने अत्यन्त गोपनीय तरीके से उन सभी अंग्रेजों के घरों को फूँकना शुरू कर दिया जो उनकी बातों को नहीं मानते थे। तथा इस आगजनी की घटना का कोई कारण पता न लगने की वजह से वहाँ के हाकिम बहुत परेशान थे। इसी प्रकार की छुट-पुट घटनायें अन्यत्र भी होती रहीं, पर किसी प्रकार वे सभी यथा सम्भव धीरज रखते हुये ३१ मई का इन्तजार कर रहे थे कि मेरठ में भीषणतम विद्रोह का विस्फोट हो गया। मेरठ एक ऐसी छावनी थी जहाँ पर अंग्रेजों की पलटन, एक घुड़सवार दस्ता, व एक तोप खाना रेजीमेण्ट भी थी। तथा ऐसी परिस्थिति में वहाँ नेटिव रेजीमेण्ट का विद्रोह कर उठना वहाँ के हाकिमों के कल्पना के भी परे था।

मेरठ में यह देखने के लिये कि नेटिव सैनिक उनके आदेशों का किस प्रकार पालन करते हैं। ब्रिटिश हाकिमों ने, उनकी एक घुड़सवार टुकड़ी जिसमें ९० सैनिक थे, के सामने गाय व सूअर की चर्बी वाले कारतूस रखकर उन्हें उठाने के लिये कहा, पर मात्र पाँच से भी कम सैनिकों ने उनकी आज्ञा मानी। इस हुक्म अदुली को देखकर, ९ मई को उन अंग्रेजों ने तोपों का सहारा ले सारी नेटिव टुकड़ियों के सामने उन सैनिकों के कपड़े उतरवाये और उन्हें दस साल की सजा सुनाकर बेड़ियाँ डालते हुये जेल में भेज दिया। मात्र तलवारों से सज्जित उन भारतीयों सैनिकों के पास उस समय अपने ही देशवासी सैनिकों का अपमान देखने के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं था। इस दृश्य से बुरी तरह विचलित व क्रोधित सैनिक अपनी-अपनी बैरिकों में वापिस चले गये। शाम

को जब शहर में घूमते-घूमते मेरठ की महिलाओं ने उनका तिरस्कार व अपमान करना शुरू कर दिया तथा उनके पुरुषत्व व वीरत्व पर भी सीधा हमला बोल दिया तो पहले से ही पगलाये उन सैनिकों के सब्र का बाँध टूट गया, रात्रि में गुप्त सभाएँ करके १० मई यानी रविवार को पूरा विद्रोह करने का विचार किया गया तथा देहली को खबर भेज दी कि वे ११, १२ मई तक देहली पहुँच जायेंगे। उनकी नीति साफ थी कि मेरठ से गोरों का सपरिवार खात्मा करके देहली जाकर इस क्रान्ति को राष्ट्रीय क्रान्ति में परिवर्तित कर दिया जाये।

१० मई १८५७ को सारे सैनिक व आस-पास के ग्रामों व शहरों में जिसके हाथों में जो हथियार लगा उसे लेकर लोग तैयार हो गये तथा शाम होते-होते अपने ८५ बंदी सैनिकों को छुड़ाते हुये वे मेरठ से बाहर जाने वाले सारे सम्पर्क सूत्र काटते हुये उन्होंने मेरठ स्थित अंग्रेजों व उनके परिवारों का कत्लेआम शुरू कर दिया। मेरठ में उस समय २०वीं पलटन, १९वीं घुड़सवार पलटन के सैनिक सबसे आगे थे। कर्नल फिनिक्स, मिसेस चैम्बर्स, डॉ० ब्रिस्टले, सर्जन फिलिप्स, लेफ्टिनेण्ट टैम्पलर, लेफ्टि हैण्डर्सन व पेण्ट तथा कैप्टन टेलर आदि कितने ही अंग्रेजों की हत्या कर दी गयी। इसी बीच मेरठ शहरवासी भी इस महायज्ञ में शामिल होकर अंग्रेजों के विरुद्ध दबी अपनी घृणा को उजागर करते हुये जहाँ जो भी मिला उसी की हत्या करते हुये चले गये। यह सारा कार्यकलाप इतनी समग्रता के साथ हुआ कि अंग्रेज यह भी नहीं समझ पाये कि आक्रमण किस ओर से हो रहा है। जहाँ तक अंग्रेजी घुड़सवार व तोपखाने का प्रश्न है उसके अधिकारियों ने अत्यन्त भीरुता व अव्यवस्था का परिचय दिया तथा मेरठ को वहाँ की जनता के हवाले कर करीब दो हजार विद्रोही सैनिक तोपखाना लेकर देहली की ओर चल पड़े, तथा ११-५-५७ की सुबह यमुना तट पर पहुँच गये। देहली की प्राचीर में स्थित विभिन्न द्वारों से यह सैनिक अन्दर प्रविष्ट हुये तथा पहले से ही तैयार ५४वीं नेटिव रेजीमेण्ट विद्रोही सैनिकों से मिलकर वहाँ जो भी गोरे सैनिक व असैनिक थे उनका परिवार सहित खात्मा कर दिया। सारे देहली शहर में यही हाल रहा। बादशाह बहादुरशाह जफर को २१ तोपों की सलामी दी गयी तथा बादशाह को आश्वस्त करने पर कि वे स्वतन्त्रता सैनिक हैं

तथा अपना वेतन आदि उनसे न लेकर गोरों के खजानों को लूटकर उसकी प्राप्ति की जायेगी, बहादुरशाह ने उनका नेतृत्व करना स्वीकार कर लिया। किले के अन्दर ही बारूद खाने को काबू करने के प्रयास में उसके रक्षक अंग्रेजों ने वह बारूद खाना विस्फोट कर दिया। फिर भी विद्रोही सैनिकों के हाथ काफी सामान लगा। अगले पाँच दिनों में यथा १६ मई तक मेरठ व देहली से अंग्रेजों का पूरी तरह सफाया हो गया। या तो वे मारे गये या किसी प्रकार छुपकर अपनी जान बचाकर भाग गये।

देहली : क्रान्ति का केन्द्र

इस समय से पूर्व हुये क्रान्ति के विस्फोट का सारे भारत पर क्या असर हुआ इसका आंकलन करना भी समचीन होगा। जहाँ एक ओर क्रान्तिकारियों में स्तब्धता व किंकर्तव्यविमूढ़ता का भाव चल रहा था कि अब इस अचानक हुये विस्फोट से पैदा हुई स्थिति से कैसे निपटें। क्या क्रान्ति घोष तुरन्त किया जाय, या निश्चित तिथि तक यथा ३१ मई तक रोका जाये, आदि असंख्य प्रश्न उन्हें कुरेद रहे थे तथा समय भी गुजरता जा रहा था, तो इसी बीच अंग्रेजों को इस विद्रोह से निपटने के लिये आनायास ही समय मिल गया। नतीजा यह हुआ कि कलकत्ता में स्थित तत्कालीन वायसराय लार्ड केनिंग ने सरहद से अपनी गोरी सेना को वापिस बुलाना शुरू कर दिया। जो ईसान व चाईना के बोर्डर पर तैनात थी, साथ ही शिमला में स्थित कमाण्डर-इन-चीफ अन्सन को तुरन्त देहली पर पुनः कब्जा करने का आदेश दे दिया।

ध्यान में रखने की बात है कि जिस प्रकार मात्र पाँच दिनों में मेरठ व देहली ले लिये गये यदि विद्रोह निश्चित तिथि यानी ३१ मई को एक साथ सारे भारत में होता तो सारे भारत को अधिक से अधिक सात दिनों में सारी अंग्रेजी कौम से मुक्त कर स्वतन्त्रता प्राप्त की जा सकती थी, पर जैसा हम सभी जानते हैं कि कुछ अपरिहार्य कारणों से ऐसा अक्सर नहीं होता। नतीजा यह कि हमें अपनी स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिये अगले ९० वर्ष तक क्रान्ति शंखनाद करते रहना पड़ा तथा हम १५ अगस्त १९४७ को स्वतन्त्र हुये। अस्तु।

कमाण्डर-इन-चीफ अन्सन भारतीय विद्रोही सैनिकों व भारतीय जनता के इस्पाती इरादों के बारे में इतना अज्ञान था कि उसने मात्र

एक सप्ताह में ही दिल्ली वापिस लेने का संकल्प कर लिया। पंजाब का मुख्य अधिकारी जॉन लारेंस भी जोर डाल रहा था। अपने अंबाला हैड क्वार्टर पहुँचकर अन्सन ने पहले सेना इकट्ठा करने का प्लान बनाया।

इन तैयारियों को कुछ समय के लिये यहीं छोड़कर हम एक महत्त्वपूर्ण पहलू पर विचार करते हैं कि सारे पंजाब में इस बीच यानी २९ मार्च से १३ मई के बीच क्या-क्या सामरिक महत्त्व के कार्य ब्रिटिशों द्वारा किये गये। एक ओर मेरठ से देहली तक का सारा क्षेत्र भारतीय सैनिकों के अधिकार में था। तथा मेरठ में अंग्रेजी पलटन अकर्मन्य सी थी। इसी प्रकार अंबाला व उसके पश्चिम में बसे सारे शहर यथा मियाँ मीर, लाहौर, फिरोजपुर, पेशावर आदि थे। जहाँ नेटिव पलटनें पूरी तरह विद्रोह के लिये तैयार थीं। तथा ३१ मई का इन्तजार था कि संकेत के अनुसार पहले लाहौर पर आक्रमण होगा तथा बाद में एक साथ क्रान्ति कर दी जायेगी।

परन्तु इतिहास को कुछ और मंजूर था। अंबाला और मेरठ के बीच पड़ने वाली सामरिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण थी, जिसके बिना अंबाला से मेरठ का मार्ग तय करना सम्भव ही नहीं था ऐसी तीन रियासतें यथा पटियाला, नाभा व जींद थी। जिनके राजाओं ने न सिर्फ ब्रिटिशों का साथ दिया बल्कि अपनी सारी सिख पलटनें उनके हवाले करके अत्यन्त क्रूरतापूर्वक इस विद्रोह को दबाने में पूर्ण शक्ति लगा दी। इस प्रकार एक ओर जहाँ पेशावर से अंबाला तक विद्रोही पलटनों का मार्ग पूर्णतः अवरुद्ध हो गया वहीं अंग्रेजी पलटनों को आसानी से देहली की ओर बढ़ने का मौका मिलता रहा।

दूसरी बात यह कि इस बीच सम्भल चुके अंग्रेजों ने पंजाब में मुख्य अधिकारी लारेंस व लाहौर के अधीक्षक रोबर्ट मोंटगुमरी के साथ मिलकर मिया मीर की नेटिव पलटनों को तोपखाने के दम पर निशस्त्र कर दिया तथा बाद में लाहौर की पलटन को भी तथा इसी प्रकार सारे पंजाब की नेटिव पलटनों को यथा पेशावर, जालन्धर, पिल्लौर, अमृतसर आदि सभी स्थानों पर निशस्त्र कर दिया तथा सारा पंजाब कोई भी महत्त्वपूर्ण विद्रोह शुरू होने से पहले ही नियन्त्रण में कर लिया गया। कुछ छुट-पुट घटनायें फिरोजपुर, अमृतसर, जालन्धर आदि स्थानों पर हुई पर उन्हें निर्ममता

से दबा दिया गया। इस प्रकार पंजाब में पूरी राष्ट्र भक्त नेटिव पलटनें होते हुये भी समय पूर्व हुये क्रान्ति विस्फोट से फैली स्तब्धता का लाभ उठाकर गोरों ने सारे प्रान्त को अपने अधिकार में ले लिया। हाँ पटियाला, नाभा व जींद के राजाओं की पूरी मदद से ही।

पंजाब में विद्रोह को दबाये जाने व तीन राष्ट्रद्रोही रियासतों के संबल से बल प्राप्त करते हुये घटनाक्रम के नेपथ्य में हम कमाण्डर-इन-चीफ अन्सन को अपनी सेना के साथ देहली की ओर बढ़ते हुये देखते हैं, तथा राह में पड़े ग्राम व शहरों की जनता को कोर्टमार्शल के नाम पर जघन्य हत्याएँ करते हुये भी पाते हैं तथा इस प्रकार क्रूरता की पराकाष्ठा करता अन्सन २५ मई को अंबाला से चलकर देहली स्वतन्त्र होने की हताशा से भरा हुआ २७ मई को करनाल आते-आते मानसिक व शारीरिक चिन्ताओं के कारण वही मर गया।

क्रान्तिकारियों से मुठभेड़ प्रारम्भ

नये कमाण्डर इन चीफ बर्नार्ड के नेतृत्व में यह सेना देहली की ओर चल पड़ी, तथा बर्नार्ड के अनुसार, सारी देहली को मात्र एक दो दिन में जीतकर सारे देश में विद्रोह दबाने की प्रक्रिया शुरू हो जायेगी। यह सोचकर वे उत्साह से भरे थे। साथ में मेरठ की पलटन भी इनसे मिल गयी तथा हिंडन नदी के किनारे यह सेना ३० मई को पहुँच गई।

पश्चात् ३० मई से क्रान्तिकारियों द्वारा विभिन्न मोर्चों पर अंग्रेजों से पूरे वेग और जज्बे के साथ युद्ध करते हुये भी ८ जून तक गोरी सेना देहली की प्राचीर तक पहुँच पाई। पर साथ ही कमाण्डर बर्नार्ड को यह अच्छी तरह आभास हो गया कि वह एक पूरा युद्ध लड़ रहा है ना कि मात्र कुछ क्रान्तिकारियों के विद्रोह को दबा रहा है। देहली को दो दिन में काबू करने के, उसके मंसूबे धरे के धरे रह गये।

इस युद्ध में सम्मिलित होने वाले दोनों ही पक्षों में हर दृष्टि से कितनी असमानता थी यह साफ दिख रहा था। एक ओर गोरों की प्रशिक्षित अनुशासनबद्ध, सक्षम नेतृत्व से सजी धजी, व अपार यौद्धिक साधनों से परिपूर्ण, सेना तथा दूसरी ओर नेतृत्व विहीन, राष्ट्रभक्त भारतीय जन मानस जिसमें विद्रोही सैनिक व आम जनता

दोनों शामिल थे। उनकी एक मात्र उत्कट इच्छा व भावना थी कि सर पर कफन बाँधकर पूरी ताकत से लड़ेंगे, परिणाम चाहे कुछ भी हो। जब तक अन्तिम सांस है तब तक। अपने इसी प्रेरणा के स्त्रोत से प्लावित ये सैनिक देहली में करीब १३४ दिन तक अंग्रेजों से लोहा लेते रहे तथा उन्हें विजय पाने से पूर्व, नाकों चने चबाने पर मजबूर कर दिया। कमाण्डर अन्सन की मृत्यु के बाद दो और कमाण्डरों में से एक तो इसी युद्ध में अपने प्राण गवाँ बैठा तथा दूसरा हताश होकर त्यागपत्र देकर चला गया। ऐसे वातावरण में अन्य अफसरों व सैनिकों का तो कहना ही क्या?

कहना न होगा कि इन असंगठित व सक्षम नेतृत्वविहीन राष्ट्र भक्त रणबाकुरों ने १३४ दिन तक इस शक्तिशाली सेना से लोहा लिया व उन्हें देहली प्रवेश से रोके रखा। यह इतिहास सदैव याद रहेगा, तथा सारी ही भावी भारतीय पीढ़ियाँ भी उनके इस अतुलनीय बलिदान को याद रखेंगी।

अलीगढ़, रूहेलखण्ड आदि स्थानों में स्फुलिंग

मेरठ विद्रोह से निकले स्फुलिंगों को पंजाब में किस प्रकार निखरने से पहले ही पूरी तरह दबा दिया गया। यह हम संक्षेप में वर्णन कर चुके हैं। परन्तु इन्हीं स्फुलिंगों ने बुलन्दशहर, अलीगढ़, नसीराबाद, रूहेलखण्ड, इलाहाबाद एवं बनारस आदि में भीषण ज्वाला का रूप लेकर गोरों के शासन को अस्थाई रूप से ही सही पूरी तरह छिन्न-भिन्न करने का दृढ़ संकल्प लेने वाली, नेटिव रेजीमेण्टों ने क्या गुल खिलाये इसका भी यहाँ संक्षेप में निवेदन कर दें। जो इन सैनिकों व क्षेत्र में निवासियों ने गोरों के प्रति असीम घृणा व आक्रोश को तो दर्शाता ही है साथ ही उन हत्यारों से मुक्ति पाने के लिये अपने प्राणों की बाजी लगाने को प्रेरित करता है। हमें यह भी आभास होगा कि इन स्थानों पर क्रान्ति कर, अंग्रेजों के शासन को उखाड़ फैंकने के बाद ये रणबांकुरे सैनिक उस स्थान का गोला-बारूद खजानां आदि लेकर अंग्रेजों से युद्ध करने व देहली को उनसे मुक्त करवाने के लिये तुरन्त दिल्ली चल पड़ते थे।

अलीगढ़ शहर में नौंवी रेजीमेण्ट का हैडक्वार्टर था तथा यह पलटन अलीगढ़, बुलन्दशहर, मैनपुरी व इटावा तक फैली हुई थी। मेरठ से कुछ सैनिक बुलन्दशहर, अलीगढ़, मैनपुरी व इटावा आदि

की छावनियों में पहुँचकर सिपाहियों को संग्राम के लिये तैयार कर रहे थे। साथ ही उस शहर व गाँव के संभ्रान्त व सम्माननीय नागरिकों ने एक देशभक्त क्रान्तिकारी ब्राह्मण को भी बुलन्दशहर छावनी में सैनिकों को प्रोत्साहित करने के लिये भेजा। वह निष्ठावान ब्राह्मण अपने ओजस्वी व प्रेरणादायी वक्तव्य से सैनिकों में जोश भर रहा था, तभी पलटन के तीन सैनिकों ने उस राष्ट्र भक्त को गिरफ्तार करवा दिया, तथा उसे सैनिक प्रशासन ने अलीगढ़ सजा के लिये भेज दिया। उसे फाँसी की सजा हुई तथा २० मई को पूरी पलटन के सामने, जिसमें बुलन्दशहर के सैनिक भी शामिल थे उसे फाँसी पर लटका दिया गया। यह देख पहले से ही उत्तेजित सैनिकों में से एक ने तलवार निकाल ली तथा देखते ही देखते पल भर में ही वहाँ का दृश्य पूरी तरह बदल गया। उन सभी क्रान्तिकारियों ने अंग्रेजों से दो घण्टे में अलीगढ़ छोड़ने के लिये कहा वरना मार डाले जाओगे। डर के मारे अंग्रेजों के परिवार अलीगढ़ से भाग गये तथा रात ११ बजे पूरा अलीगढ़ उनके शासन से मुक्त हो गया।

यह मुक्ति का समाचार २२ मई को मैनपुरी पहुँचा तथा वहाँ भी पलटन के सारे सैनिक बेताबी से ३१ मई का इन्तजार कर रहे थे तथा शहर में घूमते हुये जब खटीक व कसाई भी उनसे पूछने लगे कि भाई क्रान्ति कब करोगे तो उनके सब्र का बाँध भी टूट गया तथा सारे लश्कर ने विद्रोह कर मैनपुरी को भी अंग्रेजों से मुक्त कर दिया। अंग्रेजों को अलीगढ़ की तर्ज पर जीवनदान दिया तथा २३ मई को ऊँटों पर शस्त्र व खजाना लादकर देहली को चल पड़े। इसी प्रकार इटावा की पलटन की टुकड़ी ने इस ब्राह्मण की हत्या की खबर सुनते ही २३ तारीख को विद्रोह कर दिया तथा उस क्रान्ति में मिस्टर डेनियल नामक सैनिक अधिकारी मारा गया। हर-हर महादेव के नारे लगाती इस टुकड़ी ने अंग्रेजों की छावनी पर धावा बोल दिया तथा उन्हें शीघ्र ही शहर छोड़ने को अथवा मृत्यु वरण करने को तैयार रहने के लिये कहा। डरे हुये अंग्रेज सपरिवार इधर-उधर भागकर अपनी जान बचाने लगे। इस प्रकार इटावा के सैनिक भी सारे लाव लश्कर गोला, बारूद व खजाने सहित नौवीं रेजीमेण्ट से देहली जाने वाले मुख्य मार्ग पर जा मिले।

नसीराबाद (अजमेर से करीब १४ मील दूर) में स्थित तीसवीं रेजीमेण्ट, नेटिव तोपखाना, पहली बम्बई लांसर, तथा मेरठ से लायी गई पन्द्रहवीं रेजीमेण्ट थीं। २८ मई को यहाँ के सभी नेटिव

सैनिकों ने अंग्रेजों पर हमला बोल दिया। जिसमें अधिकतर मारे गये बाकी भाग गये। मारे गये अंग्रेजों में कर्नल पेनी, कैप्टन स्पाटिश गुड़ आदि प्रमुख थे। यूरोपियनों के घर जलाये गये तथा अन्ततः खजाना तोपखाना व अन्य युद्धोचित साजो सामान लेकर करीब ३००० क्रान्तिकारी सैनिक देहली की ओर चल पड़े। सशस्त्र क्रान्ति की यह आग रूहेलखण्ड में भी सुलग रही थी, तथा वहाँ भी मेरठ से आये करीब १०० सैनिक अपने इन भाईयों में विद्रोह करने का जज्बा भरकर आगे निकल गये। रूहेलखण्ड यानि बरेली, मुरादाबाद, शाहजहाँपुर, बदायूँ आदि का क्षेत्र जहाँ पर रूहेला जाति के पठान, अंग्रेजों के राज छीने जाने तक शासक थे, तथा पश्चात् अपने अपमान का बदला लेने की फिराक में थे। बरेली में उस समय आठवीं इररेगूलर घुड़सवार व नेटिव पैदल सेना की १८ व ६८वीं रेजीमेण्ट तथा नेटिव तोपखाने की एक बैटरी थी। जिसका सिरमौर ब्रिगेडियर सिलवाड था।

क्रान्ति की इस धधकती आग में घी का काम, देहली की क्रान्ति सेना द्वारा भेजा गया निमन्त्रण था जिसका भाव था कि पूरी ताकत से विद्रोह कर देहली के बादशाह जफर का शासन स्थापित करें तथा आगामी युद्ध के लिये देहली आ जायें। बरेली के सैनिक मात्र ३१ मई की प्रतीक्षा कर रहे थे यद्यपि विद्रोह का समाचार उन तक १५ मई तक ही पहुँच गया था। ३१ मई आते ही तोप की गड़गड़ाहट से क्रान्ति का आगाज कैप्टिन ब्राउन के घर को जलाकर किया गया, तथा सारी युनिटों के लिये पहले से ही निर्धारित कार्यक्रम अनुसार बरेली के अंग्रेजों के ऊपर हमला बोल दिया गया। इस कार्य में अधिकतर अंग्रेज सपरिवार मारे गये जिनमें कैप्टिन कर्बी, लेफ्टि फ्रेजर, सार्जेण्ट ब्राउन, कर्नल ट्रूप, कैप्टिन रोबर्ट्सन आदि अधिकारी प्रमुख थे। बरेली छावनी के मात्र ३२ अफसर किसी प्रकार बचकर नैनीताल पहुँच सके।

अंग्रेजी ध्वज फैंककर स्वतन्त्रता का झण्डा फैराते ही सूबेदार बख्त खान ने सारी नेटिव सेना का नियन्त्रण अपने हाथ में ले लिया तथा एक अन्य खानबहादुर खान, जो रूहेलों के बंशज थे तथा सरकार से रूहेल वंश होने की तथा जज के पद से रिटायर होने की दो-दो पैंशन पा रहे थे तथा इस सारे कार्यकलाप में वे सूत्रधार भी थे, ने सारे बरेली व बाद के रूहेलखण्ड का शासन अपने हाथ में ले लिया तथा बरेली में स्थित ६ यूरोपियन यथा डॉ० हे, डॉ०

कर्सन, बरेली के जिला मजिस्ट्रेट आदि थे को कोर्टमार्शल कर फांसी पर चढ़ा दिया इस प्रकार सारा रूहेलखण्ड स्वतन्त्र होने का समाचार देहली भेज दिया गया। इसी प्रकार ३१ मई को ही ऊपर दिये गये वर्णन क्रम के अनुसार ही शाहजहाँपुर, मुरादाबाद व बदायूँ में भी वहाँ स्थित नेटिव बटालियनों यथा २८वीं पैदल रेजीमेण्ट, २९वीं पैदल रेजीमेण्ट ने विद्रोह कर दिया तथा या तो वहाँ अंग्रेजों को मार डाला या वे डर के मारे इधर-उधर भाग गये। यहाँ पर मृत अंग्रेजों में प्रमुख थे—मजिस्ट्रेट रिफेट्स, सरवाडोर, असिस्टेण्ड मजिस्ट्रेट जोन, डॉ० बाउलिंग आदि। इस प्रकार ३१ मई को सारा रूहेलखण्ड स्वतन्त्र होकर खान बहादुर के नेतृत्व में चला गया तथा इन स्थानों का सैनिक साजो सामान व खजाना लूटकर सैनिक देहली कूच कर गये। खान बहादुर बहुत ही कुशलता से रूहेलखण्ड का शासन करने लगे।

बनारस, इलाहाबाद आदि स्थानों में क्रान्ति सैनिकों की बदली रणनीति

उपर्युक्त स्वतन्त्रता संग्राम की विधा में हमें दो विभिन्न स्तर या कार्यप्रणाली स्पष्ट दृष्टिगोचर होती हैं। पहली वह जिसमें सारे ही भारतीय सैनिकों ने एक साथ विद्रोह कर वहाँ के ब्रिटिश शासन तन्त्र को पूरी तरह ध्वस्त कर देहली की ओर रुख किया तथा अस्थाई तौर पर ही सही गोरों के शान का खात्मा हो गया। यथा मेरठ, अलीगढ़, रूहेलखण्ड आदि। ध्यान रहे कि इन क्षेत्रों में ये क्रान्तियाँ एक ही तारीख को न होकर अलग-अलग तारीखों पर हुई थी, हाँ पर एक क्षेत्र में एक ही तारीख को विद्रोह हो गया तथा गोरों का खात्मा हो गया।

दूसरी विधा यह है कि इस विद्रोह से सजग होकर अंग्रेजों ने शीघ्र ही सारे पंजाब की नेटिव सेना को एक के बाद एक निशस्त्र करा दिया तथा प्रत्येक स्थान पर ३१ मई का इन्तजार करते सैनिकों को समझ ही नहीं आ रहा था कि क्या करें, तथा साथ ही तीन राज्यों की सिख सेना ने पूरी तरह ब्रिटिशों का साथ दिया और पंजाब के स्वतन्त्रता प्रेमी भारतीयों का स्वप्न धरा का धरा रह गया इस प्रकार सारे विद्रोह को प्रारम्भ होने से पहले ही पूरी शक्ति से गर्भ में ही कुचल दिया गया। छोटी-मोटी मुठभेड़ें तो हुई पर अन्ततोगत्वा पंजाब के सैनिकों की साध मन की मन में ही रह

गयी।

इस स्वतन्त्रता प्राप्ति के पटल पर अब हम एक अन्य परिदृश्य निवेदन करना चाहते हैं। अमर सेनानी मंगल पाण्डे के क्रान्ति के शंखनाद (यथा २९-३-१८५७) से लेकर रूहेलखण्ड तक की यात्रा में करीब डेढ़ माह से अधिक समय व्यतीत हो चुका था तथा गवर्नर जनरल लार्ड केनिंग तथा कमाण्डर इन चीफ लॉरेन्स के अथक् प्रयासों से सीमा पर तैनात ब्रिटिश सैनिकों की विभिन्न विद्रोह स्थलों पर वापिसी का क्रम प्रारम्भ हो चुका था व इसी श्रृंखला में मद्रास की फ्यूजीलियर्स सेना एक अति अनुभवी व कर्मठ जनरल नील के नेतृत्व में बनारस तक पहुँच चुकी थी तथा निश्चित था कि भविष्य में बनारस व इलाहाबाद क्रान्ति के भारतीयों को निशस्त्र कराकर उनकी हत्या करवा दी जायेगी। नेटिव सैनिक भी पंजाब में हुये असमंजस में फँसे सैनिकों का वीरोचित शौर्य प्रदर्शन करने से पहले ही दुःखद अन्त देख चुके थे। अतः वे भी इस स्थिति का वीरोचित जबाव देने के लिये पूरी तरह तैयार थे। उन्होंने ठान लिया था कि ऐसी स्थिति आने पर पूरे प्रान्त यथा बनारस व इलाहाबाद में एक साथ सब सैनिक व असैनिक भारतीय क्रान्ति कर दें तथा भले ही इन स्थानों का मुख्यालय उनके कब्जे में न आ पाये पर पूरे प्रान्त में क्रान्ति करके ब्रिटिश शासन की ईंट से ईंट बजा दी जाये। जैसा कि आगे के वर्णन से स्पष्ट हो जायेगा कि नेटिव सैनिकों के अथक् प्रयास के बावजूद, सिखों द्वारा गोरों का साथ दिये जाने के कारण, बनारस व इलाहाबाद शहर तो उनके कब्जे में आते-आते रह गये पर बाकी सारे प्रान्त में स्वतन्त्रता प्राप्ति की ज्वाला एक ऐसे वेग से फैली कि देखते ही देखते सारा प्रान्त ही अंग्रेजों से कुछ समय के लिये स्वतन्त्र हो गया। हाँ मात्र बनारस व इलाहाबाद मुख्यालय को छोड़कर।

इस प्रकार ३१ मई आते-आते इस बदले परिदृश्य की पृष्ठभूमि में हम अति संक्षेप में बनारस व इलाहाबाद प्रान्त में होने वाले विद्रोह का अध्ययन करने का प्रयास करते हैं। बनारस उन दिनों अंग्रेजों के अत्याचारों से त्रस्त व अपने-अपने राज्यों, ताल्लुकों व अमीरी आदि से च्युत हुये, भाग्यहीन कितने ही राजपुत्र मुसलमान, सिक्ख व मराठों के नष्ट वैभव हुये राजकुल वहाँ पर अपना जीवन यापन करते हुये उपर्युक्त बदले के अवसर की प्रतीक्षा में थे। कहना न होगा कि सारा ही बनारस प्रान्त उन दिनों अंग्रेजों के प्रति विद्रोह

करने की फिराक में ३१ मई का इन्तजार कर रहा था। पर जनरल नील के बनारस के पास तक आने तथा बनारस के सिक्ख स्वयं सेवकों द्वारा उन्हें रक्षित किये जाने के कारण वे किसी हद तक आश्वस्त थे, कि बनारस से मात्र ६० मील दूर बसे आजमगढ़ में सैनिकों का विद्रोह ३ जून १८५७ को एक साथ भड़क उठा तथा वहाँ की सत्रहवीं रेजीमेण्ट के सारे सैनिकों व प्रजा ने विद्रोह कर दिया। परन्तु मानवता दिखाते उन्होंने अंग्रेजों को तुरन्त आजमगढ़ छोड़ने को कहा तथा उनके जाने की समुचित व्यवस्था की। इस विद्रोह में मात्र दो अंग्रेज यथा लेफ्टिनेण्ट हचिंसन तथा क्वार्टर सार्जेण्ट लुई मारे गये। सारे आजमगढ़ में अंग्रेजी सत्ता का नामोनिशान मिटाकर वहाँ बादशाह का हरा झण्डा फहराया गया तथा खजाने का सात लाख रुपया नेटिव रेजीमेण्ट व अंग्रेजी तोपखाने सहित फैजाबाद की ओर निकल गये तथा कुछ सैनिक बनारस क्रान्ति का सन्देश देने चले गये तथा चार जून को बनारस में विद्रोह करने की तैयारी शुरु हो गयी।

इस बीच जनरल नील अपनी गोरी सेना के साथ बनारस आ गया। दानापुर से भी कुमुक पहुँच गयी तथा बनारस के सिक्ख सरदार व तोपखाने की सहायता से वहाँ के विद्रोह को सहज ही गर्भावस्था में मसल दिया जायेगा, पंजाब के नमूने पर ऐसा विचार कर जनरल नील ने चार जून को सुबह अपनी सेना की उपयुक्त मोर्चाबन्दी करके नेटिव सिपाहियों को परेड पर आने का आदेश दिया। उन वीर देशभक्तों ने जनरल नील के आदेश को धता बताते हुये तुरन्त शस्त्रागार पर हमला कर दिया तथा अंग्रेजों के तोपों के बरसते हुये गोलों की परवाह न करते हुये सारे हिन्दू, मुस्लिम व सिक्ख सिपाहियों ने (जिन्हें अंग्रेजों के गफलत के कारण देश द्रोही समझकर उन पर भी तोप के गोले बरसाये थे) अंग्रेजी तोपखाने पर भीषण आक्रमण कर दिया। जाहिर है कि बेमेल लड़ाई में वे वीर राष्ट्र भक्त कुछ अधिक तो न कर सके तथा बनारस का शहर हाथ में नहीं आ पाया पर सारे प्रान्त में ही इस समग्र क्रान्ति का शंखनाद जो एक साथ भड़का तो मात्र बनारस को छोड़कर बाकी सारा प्रान्त ही स्वतन्त्र हो गया। इस युद्ध में अंग्रेजों के कमाण्डर क्यूरस व ब्रिगेडियर जनरल हटसन मारे गये।

ये नेटिव सैनिक बनारस से निकलकर सारे प्रान्त में फैल गये तथा इस रणभेरी ने ऐसा समा बाँधा कि पाँच जून को जौनपुर

विद्रोह कर उठा तथा वहाँ का ज्वाईण्ट मजिस्ट्रेट क्यूपेज मार डाला गया। कमाण्डर लेफ्टिनेण्ट मारा गया तथा सैनिकों ने खजाने पर हमला कर उसे काबू में ले लिया तथा भागते हुये अंग्रेजों को भी मौत के घाट उतार दिया। सारे बनारस प्रान्त पर दिल्ली बादशाह के नाम से शासन व्यवस्था की गयी तथा प्रान्त के सारे सम्पर्क सूत्रों यथा तार, रेल आदि को पूरी तरह ध्वस्त कर यह क्रान्तिकारी खजाने, तोपखाने आदि के साथ अवध की ओर निकल गये। कुछ ने इलाहाबाद की ओर रुख किया।

जनरल नील ने बाजार में पहुँचकर सारे प्रान्त की प्रजा को जिस क्रूरतम तरीके से सता-सता कर मारा इसकी मिसाल अन्यत्र मिलना असंभव है। कोर्ट मार्शल के नाम पर ग्रामवासियों को सूली पर लटकाना, सूलियाँ कम पड़ने पर पेड़ों पर लटकाकर फाँसी देना व इससे भी मन नहीं भरा तो सारे के सारे गाँव को चारों तरफ से घेरकर उसमें आग लगाकर जीवित लोगों को जला देना उसका नित्य का काम हो गया। इस क्रूरतम वीभत्स कार्य के लिये उसे इतिहास व सभ्य समाज कभी क्षमा नहीं करेगा। इस जनरल के अत्याचारों से बचे हुये लोग भागकर इलाहाबाद व कानपुर अपनी व्यथा-कथा कहने चल पड़े। अस्तु। इस प्रकार ३, ४, ५ जून को सारा बनारस प्रान्त क्रान्ति की चपेट में आ चुका था।

इलाहाबाद प्रान्त भी अन्दर ही अन्दर पूरी तरह से क्रान्ति करने के लिये सुलग रहा था पर ऊपर से सतही शान्ति का प्रदर्शन भी चल रहा था। यह शहर सामरिक दृष्टि से अति महत्त्वपूर्ण था। क्योंकि कलकत्ता से देहली व पंजाब की ओर जाने का यह एक मात्र रास्ता था। तथा इसमें स्थित किले पर जिसका भी अधिकार रहेगा वही इलाहाबाद के प्रशासन आदि को अपने पूर्ण प्रभाव में रख सकेगा। उस समय इलाहाबाद में छठवीं नेटिव रेजीमेण्ट फिरोजपुर रेजीमेण्ट के ४०० सैनिक तथा अवध से आये कुछ घुड़सवार थे। किले की रक्षा का प्रचुर इन्तजाम किया गया था तथा वहाँ पर ४०० सिक्ख सैनिकों के साथ छठवीं रेजीमेण्ट की टुकड़ी आई हुई थी।

उसी रात को छठवीं रेजीमेण्ट ने विद्रोह कर दिया तथा बनारस के रास्ते पर तैनात तोपखाने को सैनिक छावनी में ले गये। उन्हें रोकने के लिये गया नेटिव घुड़सवार टुकड़ी का मुखिया लेफ्टिनेण्ट कर्नल अलैक्जेण्डर मारा गया तथा सारी देशी टुकड़ी

अपने विद्रोही भाईयों से मिल गयी। अधिकतर अंग्रेज काट डाले गये तथा विद्रोह सब ओर फैला होने पर भी इलाहाबाद के किले को नहीं जीता जा सका। क्योंकि सिक्खों ने पूरी तरह गोरों का साथ देकर अन्दर स्थित छठवीं रेजीमेण्ट के सैनिकों को निशस्त्र करवा दिया तथा काफी प्रयासों के बाद भी किला विद्रोहियों के कब्जे में नहीं आ सका। परन्तु इसके अतिरिक्त सारा इलाहाबाद प्रान्त विद्रोहियों व स्थानीय मुसलमान ताल्लुकेदारों जिनकी प्रजा हिन्दू थी, ग्रामवासियों व अन्य सभी स्तरों की जनता ने विद्रोही सिपाहियों के साथ मिलकर जहाँ भी अंग्रेज दिखे उन्हें मार डाला तथा सबने देहली बादशाह के प्रति वफादार रहने की कसम खाई। सारे रेल, तार व अन्य सम्पर्क सूत्र पूरी तरह ध्वस्त कर दिये गये। ७ जून को प्रात:काल इलाहाबाद का खजाना लूट लिया गया तथा ३० लाख रुपये लेकर अपने कब्जे में कर लिया। लगभग एक सप्ताह तक अन्धाधुन्धी रहकर धीरे-धीरे इलाहाबाद का सही में क्रान्ति का आकार समझ में आने लगा तथा वहाँ के क्रान्तिकारियों ने एक प्रखर राष्ट्रभक्त व अनुभवी मौलवी लियाकत अली को अपना नेता बनाया। तुरन्त दिल्ली बादशाह के प्रतिनिधि के रूप में उसके नाम की डौंडी पीट दी गयी। तथा प्रान्त की शासन व्यवस्था को व चाक चौबन्द करने में लग गया।

मौलवी लियाकत अली ने एक बार पुनः इलाहाबाद का किला जीतने का प्रयास किया पर इसी बीच जनरल नील इलाहाबाद आ पहुँचा। अतः व्यर्थ में अपने सैनिकों का खून बहाने की अपेक्षा वह १७ जून की रात अपने सैनिकों व खजाने के साथ कानपुर निकल गया। नील ११ जून को इलाहाबाद पहुँचा पुनः उसे अपने अधिकार में ले लिया तथा १८ जून को उसने इलाहाबाद शहर में प्रवेश कर अपनी क्रूरता व वीभत्सता का नंगा नाच करना प्रारम्भ कर दिया। इस पर भी सारे इलाहाबाद प्रान्त को पुनः अपने अधिकार में करने के लिये नील को एक जुलाई तक इसी क्षेत्र में इन राष्ट्र भक्त व्यक्ति समूह से जूझते रहना पड़ा तथा चाहते हुये भी वह कानपुर की ओर इससे पहले सहायता के लिये नहीं बढ़ सका। बनारस व इलाहाबाद में नील द्वारा की गयी क्रूरता व बर्बरता की कहानी लेकर कानपुर पहुँचे लोगों ने इस क्षेत्र को बदले की भावना से भर दिया।

कानपुर व झाँसी का रण

अब हम थोड़ा आगे बढ़कर कानपुर व झाँसी में इन्हीं दिनों होने वाली घटनाओं व तैयारियों की ओर दृष्टिपात करने का प्रयास करते हैं। कानपुर भौगोलिक दृष्टि से एक अत्यन्त ही संवेदनशील स्थान है। पूर्व की ओर से यथा कलकत्ता, बिहार आदि से दिल्ली जाने के लिये कानपुर से गुजरना आवश्यक होता है। अतः इस स्थान पर कुशल व्यूह रचना करके कलकत्ता आदि से देहली जाने वाली सभी सेनाओं का मार्ग रोका जा सकता है। यहाँ पर अन्तिम पेशवा राव बाजी जिन्हें उनके राज्य से बेदखल करके अंग्रेजों ने छह लाख रुपया वार्षिक पैंशन देना प्रारम्भ कर दिया तथा रावजी अपना राजपाट छोड़कर कानपुर में ब्रह्मावर्त (वर्तमान बिठूर) नामक स्थान पर आकर अपने बचेखुचे शानो-शौकत के साथ रहने लगे। निस्सन्तान होने के कारण इन्होंने साधारण परिवार में जन्मे अति तेजस्वी बालक नाना साहब को गोद ले लिया था पर उनकी मृत्यु के बाद उनकी पैंशन बन्द कर दी गयी व उनके युवा दत्तक पुत्र नाना साहब पेशवा के अथक् प्रयासों के बाद भी वह पैंशन ब्रिटिश सरकार ने नहीं दी। झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई भी बनारस में एक साधारण परिवार के मोरोपन्त तांबे के घर में जन्मीं थी तथा उनका बचपन का नाम मनु या छबीली था। मोरोपन्त भी आजीविका की तलाश में बिठूर आ गये तथा छबीली का लालन-पालन भी नाना साहब आदि के साथ होने लगा तथा सारी युद्ध विद्या में वे मात्र १३ वर्ष की आयु में ही पारंगत हो गयी। नाना की वह मुँह बोली बहन थी। कालान्तर में उनका विवाह झाँसी के राजा गंगाधर राव से हुआ तथा उनकी मृत्यु के बाद अंग्रेजों ने उनके दत्तक पुत्र को वारिस न मानकर झाँसी को हड़प लिया तथा रानी लक्ष्मीबाई को कुछ लाख रुपये पैंशन देना शुरु कर दिया। विपरीत परिस्थिति देखकर निराश महारानी किले से हटकर झाँसी शहर में ही रहने लगी। उनकी इस निराशा को तोड़कर पुनः उन्हें राष्ट्र की स्वतन्त्रता के लिये युद्ध करने के लिये स्वनामधन्य महर्षि दयानन्द सरस्वती ने प्रेरित किया तथा वे राष्ट्र की बलिवेदी पर उत्सर्ग होने के लिये तैयार हो गयी। उनका नाना साहब से सम्पर्क बना रहा तथा वे समय-समय पर मन्त्रणा के लिये कानपुर भी जाती रहती थी।

जैसा कि पहले कह आये हैं कि अंग्रेजों के विरुद्ध सारे राष्ट्र में एक साथ समग्र क्रान्ति करके एक ही झटके में गोरों का समूल नाश करने की समस्त योजना व उसके प्रभावशाली प्रसार व प्रचार की धुरी कानपुर थी। जिसका संचालन नाना साहब, उनके भाई बाला साहब व बाबा साहब भतीजे राव साहब तथा उनके गुरु श्री अजीमुल्लाह कर रहे थे तथा उसमें युद्ध शास्त्र कौशल का असाधारण परिचय देने वाले तथा छत्रपति शिवाजी की छापामार युद्ध पद्धति व अन्य युद्ध कलाओं के अन्तिम वारिस 'तांत्याटोपे' बिठूर के सैनिकों व हथियारों को तैयार कर रहे थे। अंग्रेजों द्वारा किये गये अपमानों को मन ही मन पीकर ये सभी योजनानुसार क्रान्ति करने की ३१ मई १८५७ की प्रतीक्षा इतने गुप्त रूप से कर रहे थे कि इनके अन्दर धधकते ज्वालामुखी की भनक तक अंग्रेजों को नहीं हुयी।

इस ब्रह्मावर्त के महल में इस १८५७ की क्रान्ति का गर्भ सम्भव हुआ और वहीं वह गर्भ विकसित हो रहा था। वहीं उस विचार गर्भ के द्रवीभूत तत्व का संगठन होने लगा और पूर्ण गर्भ का उद्‌भव यदि यथाकाल ब्रह्मावर्त में ही होता तो निश्चय ही वह ब्रिटिश राज्य की पूर्ण आहुति में समाप्त होता। पर जब बीच में ही समय पूर्व यथा दस मई को मेरठ की गड़गड़ाहट से वह कच्चा क्रान्ति गर्भ निकलकर सामने आ गया तब उसका परित्याग न करते हुये उस कठिन परिस्थिति में उसकी उचित अभिवृद्धि करने के लिये जोर-शोर से प्रयास चलने लगे तथा यह निश्चय किया गया कि कानपुर में ३१ मई १८५७ से पहले क्रान्ति का बिगुल न फूँका जाये। इस योजनानुसार मेरठ के विस्फोट का असर उन पर व सेना पर नहीं है ऐसा पूर्ण रूप से शान्त वातावरण कानपुर व बिठूर में रहा। नाना की इस कूटनीतिक बुद्धि कौशल के जाल में कानपुर का तत्कालीन अंग्रेज कमाण्डर व्हीलर किस प्रकार फँस गया यह आगे देखेंगे।

कानपुर में उस समय फैली ५३वीं, ५६वीं पैदल सेना तथा घुड़सवार सिपाहियों की दूसरी पलटन यानी कोई तीन हजार नेटिव सैनिकों की पलटनें तथा तोपखाना करीब १५० से १७५ गोरे सैनिकों के अधिकार में था। नेटिव पलटनों के सारे सिपाही विद्रोह के लिये तैयार थे तथा सिर्फ इशारे की राह देख रहे थे पर ऊपर सम्पूर्ण शान्ति जैसे कुछ हुआ ही नहीं व्याप्त थी। १८ मई को मेरठ

विप्लव की खबर व दिल्ली के स्वतन्त्र होने की सूचना व्हीलर को मिल गई पर सारे नेटिव सैनिकों के पूरी तरह शान्त व्यवहार को देखते हुये वह आश्वस्त था। फिर भी भावी संकट से उबरने के लिये व्हीलर ने गंगा के दक्षिण में एक चाहर दीवारी बनवाई। उस क्षेत्र में यथावत् राशन आदि की व्यवस्था तथा तोपों व अन्य शस्त्रों को अन्दर इस प्रकार सज्जित किया कि कुछ दिन तक युद्ध चल सके तथा उस बाड़े में सारे अंग्रेज परिवार सुरक्षित रहें। उसे यही उम्मीद थी कि जैसे अन्य स्थानों पर सैनिक विद्रोह के बाद अधिक मारकाट न करते हुये देहली की ओर चल पड़ते थे वैसे ही कानपुर में भी होगा तथा कालान्तर में उसके सैनिक परिवार गंगा से नीचे उतरकर इलाहाबाद पहुँच जायेंगे।

उसने अवध से ही जनरल लारेन्स से सैनिक सहायता माँगी जिसके उत्तर में उसने चौरासी गोरे सैनिक लेफ्टीनेण्ट अंसे के नेतृत्व में गोरा तोपखाना और कुछ घुड़सवार कानपुर भेज दिये। व्हीलर ने अपनी रक्षा का एक और मार्ग भी चुना जो यह दर्शाता है कि अन्दर से विद्रोह को पूरी तरह से तैयार पर ऊपर पूर्णतः शान्त दिखने वाले कानपुर के नेटिव सैनिकों व जनता की भावनाओं को भांपने में वह कितना अनिभिज्ञ व गलत था कि उसने अपने गोरे सैनिकों व परिवारों की सुरक्षा के लिये नाना साहब से ही सैनिक आदि भेजने की प्रार्थना कर डाली। नाना की कूटनीति का इससे सफल व सशक्त उदाहरण और क्या हो सकता। पहले से ही तैयार बैठे नाना ने उसकी प्रार्थना तुरन्त स्वीकार कर ली तथा २२ मई को अपने ३०० निजी सिपाही पैदल व घुड़सवारों के साथ कानपुर पहुँचकर अंग्रेज सैनिकों व असैनिकों के बीच अपना शिविर बनाया। व्हीलर ने बारूद खाना व खजाना भी नाना साहब को सौंप दिया। कानपुर स्थित सारी रेजीमेण्टों में तालमेल बनाये रखने व समय-समय पर दिशा निर्देश देने के लिये एक गुप्त मण्डली सुबेदार टीका सिंह तथा शमसुद्दीन खान सिपाही का घर था तथा नाना की ओर से अति विश्वसनीय सेवक ज्वाला प्रसाद व महमूद अली शामिल रहते थे तथा आवश्यक सूचनाओं का सम्प्रेषण सुचारु रूप से सैनिकों तथा शहरवासियों तक पहुँचता रहता था। टीका सिंह व शमसुद्दीन पर नेटिव सैनिकों का इतना अटल विश्वास था कि उनका आदेश ही सैनिकों के लिये अन्तिम सत्य होता था।

क्रान्ति को मूर्त रूप देने के लिये समय निकट होने के कारण

टीका सिंह आदि की नाना साहब के साथ भी दो-तीन बैठकें गुप्त स्थान पर हुई तथा पूरी योजना की क्रियान्वयन प्रक्रिया तैयार हो गयी। इस महायज्ञ में सैनिक असैनिक ही नहीं अपितु वेश्यायें तक शामिल थीं। जिन्होंने देह व्यापार छोड़कर मात्र अपने मृदुहास्य, व्यंग व भाव भंगिमा से सैनिकों को क्रान्ति के लिये प्रोत्साहित किया। जिनमें सबसे प्रमुख शमसुद्दीन खान की प्रेमिका वेश्या अजीजन थी, जो क्रान्ति के समय सैनिक वेशभूषा पहनकर सैनिकों के उत्साह में वृद्धि करती रही। व्हीलर नाना साहब की ऊपर से चल रही तैयारी से इतना निश्चित था कि एक जून को उसने लखनऊ से आई सैनिक सहायता वापिस भेजने का निश्चय कर लिया। ऐसे कूटनीतिज्ञ व कुशल सेनापति व प्रशासक को शत् शत् नमन।

४ जून को कानपुर में विप्लव प्रारम्भ हो गया। इसी तारीख यानी ४ जून को नाना की मुँह बोली बहन छबीली ने भी उसी तर्ज पर सैनिकों में विद्रोह की भावना भर के झाँसी के किले पर आक्रमण कर दिया। झाँसी में मई में नेटिव की १२वीं रेजीमेण्ट १४वीं घुड़सवार, एक तोपखाना क्षेत्राधिकारी कैप्टिन डनलप के अधिकार में था। शहर में अंग्रेजों की मारकाट प्रारम्भ हो गयी तो डर के मारे सब किले में भागे व द्वार बन्द कर लिया। कैप्टिन डनलप व एनसाइन मार डाले गये तथा तीन दिन के अन्दर ही अंग्रेजों की हिम्मत ने जबाब दे दिया तथा किला पुनः महारानी लक्ष्मीबाई के अधिकार में आ गया। किले के अन्दर सभी अंग्रेजों को आठ जून को हाथ बाँधकर बाहर घुमाया गया व झोखनबाग में उन सभी की हत्या कर दी गयी व झाँसी में पुनः सत्ता कुछ समय के लिये लक्ष्मीबाई के हाथ में आ गई। पूरे झाँसी क्षेत्र की व्यवस्था को वह एकदम चाक चौबन्द करने के लिये तत्पर हो गयी।

उधर कानपुर में भी ४ जून को विद्रोह को सूत्रपात हो गया। सारी नेटिव पलटनों के सैनिकों ने तथा जनता ने नाना साहब को अपना एक क्षत्र राजा व सेनापति घोषित कर दिया तथा सारे शहर में जिसको जो हथियार हाथ लगा लेकर अंग्रेजों की हत्या करने निकल पड़ा। विवश व्हीलर ने अपने सभी सैनिकों को लेकर पहले से बनाये गये बाडे में प्रविष्ट होकर वहाँ मोर्चा संभाल लिया। इस उम्मीद से कि दो तीन दिन में सैनिक देहली की ओर निकल जायेंगे

पर ऐसा हुआ नहीं। नाना साहब यौद्धिक व व्यूह रचना की दृष्टि से इतने संवेदनशील स्थान यथा कानपुर में ही डटे रहकर अंग्रेजों से मोर्चा लेने के लिये तत्पर थे। व्हीलर को उन्होंने अग्रिम सूचना भेज दी कि ७ जून को उनके बाडे पर हमला किया जायेगा। कहीं से भी सहायता न मिलने की स्थिति में व्हीलर ने बाडे के अन्दर उपलब्ध साधनों से यथासंभव मोर्चा संभाल लिया। सूबेदार टीका सिंह जिन्हें अब जनरल बना दिया गया था, ने प्रभावशाली व्यूह रचना कर बाडे में तोपों से प्रहार करना प्रारम्भ कर दिया। दूसरी ओर से भी प्रभावशाली प्रतिउत्तर मिला पर प्रारम्भ से ही यह एकपक्षीय युद्ध था। बड़ी तेजी से बाडे के अन्दर अंग्रेज व उनके परिवार तोप के गोलों से मरने लगे। विद्रोहियों की तोपें धीरे-धीरे बाडे के समीप आने लगी तथा २३ जून आते-आते जोकि प्लासी से प्रारम्भ हुई अंग्रेजों के विश्वासघात व बेईमानी व क्रूरता की १००वीं बरसी थी उस दिन प्रहार सहते-सहते व आगे से कुमक न आने से हताश व्हीलर ने सन्धि का प्रस्ताव नाना साहब के पास भेजा। जिसे तुरन्त स्वीकार कर यह तय हुआ कि अंग्रेज कानपुर से अपना अधिकार छोड़कर इलाहाबाद चले जायेंगे जिसके लिये नावों की व्यवस्था नाना साहब कर देंगे तथा पूरा अधिकार नाना साहब को दे दिया जायेगा।

२७ जून को सारे अंग्रेज परिवारों को गंगा तट पर ले जाया गया तथा उन्हें नावों पर बिठाकर इलाहाबाद भेजने की व्यवस्था कर दी गयी। पर नावें चलते ही विद्रोहियों ने जिन्हें अंग्रेजों की बनारस व इलाहाबाद में की गयी क्रूरता की गाथाएँ पता चल चुकी थीं उन्हें जीवित न छोड़ने का निश्चय किया तथा उन अंग्रेजों पर सब ओर से गोलियाँ बरसने लगीं। इस प्रकार ३ जून को करीब एक हजार अंग्रेज सैनिक व परिवारों में से २७ जून को मात्र चार घायल पुरुष १२५ स्त्रियाँ बची जिन्हें नाना साहब ने जेल में डाल दिया पर उनकी देखभाल पूरी मानवता के साथ हुई।

२८ जून को नाना ने विशाल दरबार का आयोजन किया जिसमें आस-पास की गाँवों व रियासतों से आये लोग व सैनिक भी थे। उन्होंने नाना साहब को अपना राजा घोषित कर दिया तथा दिल्ली राजा को एक हजार तोपों की सलामी दी गयी व इसी प्रकार क्रम से अन्य विशिष्ट लोगों को भी तोपों की सलामी दी गयी। नाना साहब शहर की व्यवस्था व शासन आदि को सुधारने

में लग गये व अगले कदम का इन्तजार करते रहे। जैसा आगे पता लगेगा कि युद्ध संचालन में जब परिस्थिति अनुकूल हो तो आगे से युद्ध छेड़ना व प्रतिकूल स्थिति में उसी तत्परता से पीछे हटकर सही मौके का इन्तजार करना इस विशिष्ट पद्धति से नाना साहब व उनके अति योग्य तांत्याटोपे ने 'हैवलाक' जैसे छटे हुये व कुशल सेनापति को खूब छकाया था।

अवध का संग्राम

कानपुर विद्रोह के बाद अब हम अवध में हो रही घटनाओं का संक्षेप में वर्णन करते हैं। लार्ड डलहौजी ने जिस क्रूरता, बर्बरता व नृशंसता से अवध का राज्य ब्रिटिश शासन में मिलाकर तत्कालीन नबाब वाजिदअली शाह को उसके निकट सहयोगियों के साथ कलकत्ता में नजर बन्द कर दिया था। इसका असन्तोष अवध के नागरिकों में बढ़ता ही जा रहा था तथा स्वातन्त्र्य समर में सम्मिलित होने के प्रेरणा देने वाले राष्ट्र प्रेमी मौलवी, पण्डित, अध्यापक आदि इस असन्तोष को और भी बढ़ाने का कार्य कर रहे थे। नवाब के दरबारियों को हटाकर गोरों को बिठा दिया गया। तथा जमींदारों, ताल्लुकेदारों आदि के सारे अधिकार छीन उन्हें भूमिहीन व किसानों को लगान बढ़ा-बढ़ाकर अपनी करतूतों से सारे ही अवध के मानस में एक सशक्त विद्रोह की ज्वाला धधका दी थी।

अवध का प्रशासनिक व सुरक्षा का भार एक योग्य कमाण्डर हेनरी लॉरेन्स के हाथों में था तथा इसका मुख्यालय लखनऊ। एहतियात के तौर पर उसने ७वीं रेजीमेण्ट को निशस्त्र कर दिया तथा एक प्रखर राष्ट्र भक्त मौलवी सिकन्दरशाह को अवधवासियों को विद्रोह के लिये भड़काने के अपराध में कारावास का दण्ड दिया। १२ मई को उसने दरबार करके कौशलपूर्ण व्याख्या न देकर लोगों में ब्रिटिश राज्य के प्रति वफादार रहने की अपील की। १३ और १४ मई को उसे मेरठ विद्रोह व दिल्ली स्वतन्त्र होने की सूचना मिली। अतः स्थिति से निपटने के लिये उसने लखनऊ व रेजीडैन्सी को अपना केन्द्र बिन्दु बनाकर सारे अंग्रेजों व महिलाओं व बच्चों को वहाँ ले जाने आदि के उपक्रम चलते रहे।

३० मई रात्रि ९ बजे तोप की गड़गड़ाहट के साथ लखनऊ विद्रोह की आग में सुलग उठा। ७१वीं रेजीमेण्ट के सिपाहियों ने

सैनिक छावनी में अंग्रेजों की हत्या व सफाई का अभियान प्रारम्भ हुआ जिसमें लेफ्टिनेण्ट ग्राण्ट, लेफ्टिनेण्ट हार्डिंग, ब्रिगेडियर हर्ड स्कोम आदि मारे गये। सुबह ३१ मई को लारेन्स ने अपने मातहत गोरों व अभी भी राजनिष्ठ नेटिव सेना को लेकर हमला किया तो छठी घुड़सवार रेजीमेण्ट ने हमला करने से इन्कार कर दिया। हताश लोरेन्स रेजीडेन्सी वापिस लौट आया। सारे प्रयास करने पर भी तथा पूरी एक गोरों की रेजीमेण्ट व गोरों का तोपखाना होते हुये भी छठी, सातवीं घुड़सवार, ७१ व ४८वीं पैदल रेजीमेण्ट और अधिकतर रेगूलर सेना ने विद्रोह का झण्डा गाड़ दिया।

न्यूनाधिक इसी घटनाक्रम की आवृत्ति ३ जून को सीतापुर में तथा ४ जून को मुहम्मदी, जहाँ स्थित ४१वीं पैदल, ९वीं, १०वीं इरेगूलर पलटन ने विद्रोह कर करीब २४-२५ गोरों को मारकर वहाँ का किला अपने अधिकार में ले लिया तथा १० जून तक बहराइच जिले में स्थित सिकोरा, मालापुरा, गौण्डा भी गोरों के शासन से मुक्त करा लिये गये।

इसी प्रकार फैजाबाद विभाग में स्थित सुल्तानपुर व सलौनी भी ९ जून तक मुक्त हो गयी। इस क्षेत्र का एक प्रमुख ताल्लुकेदार राष्ट्रभक्त मौलवी अहमदशाह था जिसकी युद्ध निपुणता का जौहर हमें आगे भी देखने को मिलेगा। इसकी बात को फैजाबाद क्षेत्र में ब्रह्म वाक्य समझा जाता था तथा जनता व सिपाहियों में राष्ट्र प्रेम व क्रान्ति के लिये उत्साहित करने की दक्षता में यह अद्वितीय था।

अवध के इस विद्रोह में काफी अंग्रेज मारे गये पर उनसे भी अधिक लोगों की वहीं के दयाभावी राजाओं यथा राजा मान सिंह, हनुमन्त सिंह आदि लोगों ने रक्षा की, व उन्हें सही सलामत अंग्रेजों की छावनी भी पहुँचाया।

भारतीयों के दयाभाव को व इस परिस्थिति का सूक्ष्म चित्र देते हुये प्रसिद्ध ब्रिटिश इतिहास संशोधक फॉरेस्ट अपनी प्रस्तावना में लिखा है—''इस तरह दस दिन में अंग्रेजी शासन किसी स्वप्न की तरह था या नहीं था'' ऐसा हो गया। उसका लेशमात्र भी नहीं रहा। लश्कर ने विद्रोह किया जनता ने जुआ उतार फैंका। परन्तु उसमें बदला या क्रूरता कहीं नहीं थी। उन बहादुर व क्रोधित लोगों ने कुछ अपवाद छोड़कर राज पक्ष के शरणागत लोगों के साथ बड़ी दयालुता से व्यवहार किया। जिन्होंने अपने शासनकाल में

मदान्ध होकर अवध के इन्हीं सरदारों को गहरे घाव दिये थे आज उन्हीं सत्ताधारियों के पदच्युत होने पर, उन सरदारों ने उनसे वीरोचित सम्मान व व्यवहार किया। अवध के इस वीरोदार्य से यदि बड़े-बड़े अनुभवी व मंजे हुये अंग्रेज अधिकारी जीवित न छूटते तो अवध को फिर से जीतने के लिये अंग्रेजों के नौसिखिया लोग कितने काम आते ?

इस प्रकार अवध पुन: कुछ काल के लिये मुक्त हुआ तथा इस अन्तराल के लिये वाजिद अली शाह की पत्नी बेगम हजरत महल के नाम से अवध का शासन चलने लगा। ब्रिटिश के अधिकार में मात्र रेजीडेन्सी व मच्छी भवन था। १० जून से २८-२९ जून तक अवध की शासन व्यवस्था को चाक चौबन्द करने की प्रक्रिया शुरु हो गयी। जगह-जगह नेटिव सैनिकों की चौकियाँ बनायी गयी व सुरक्षा के अन्य इन्तजाम किये गये।

सैनिक अब रेजीडेन्सी पर आक्रमण कर रहे थे कि इसी बीच कानपुर से ब्रिटिश सत्ता शेष हो जाने का समाचार कमाण्डर लॉरेन्स तथा नेटिवों तक पहुँचा। इस बीच लौरेन्स ने रेजीडेन्सी में एक सिक्ख रेजीमेण्ट और नेटिव की भी एक रेजीमेण्ट भी तैयार कर ली थी। कानपुर की हार का बदला लेने व २९ जून को सुबह ही लौरेन्स अपने १०० अंग्रेजी सोल्जर व ४०० नेटिव सिपाही व दस तोपों की चुनी हुई सेना लेकर रेजीडेन्सी से निकला तथा काफी आगे चलकर उसका सामना चिनहट के पास विद्रोही सोल्जरों से हुआ। शाम तक लड़ाई चली जिसमें अन्त में लौरेन्स को हारकर अपनी दो तोपें व एक हॉविट्जर छोड़कर वापिस रेजीडेन्सी जाना पड़ा। उसके साथ आई नेटिव घुड़सवार सेना ने भी युद्ध करने से इन्कार कर दिया तथा हताश वह रेजीडेन्सी वापिस आकर मच्छी भवन को भी असुरक्षित जान वहाँ के लोगों को भी रेजीडैन्सी में बुलाकर मच्छी भवन को बारूदखाने से उड़ा दिया।

३० जून को स्थिति यह थी कि हैनरी लौरेन्स अपने लोगों सहित रेजीडेन्सी में था तथा अवध की विद्रोही सेना इस रेजीडेन्सी के पास पहुँच चुकी थी इस जीत से उत्साहित होकर सारे अवध के जमींदार ताल्लुकेदार राजा आदि भी पूरे मनोयोग से इस महायज्ञ में शामिल हो गये।

मध्यान्तर : कुछ राज्यों व रियासतों में पशोपेश व अनिश्चितता का माहौल

देहली, कानपुर, लखनऊ, बरेली आदि मृतप्राय रियासतों में स्वतन्त्रता प्राप्ति के उठे इस अद्भुत क्रान्ति विस्फोट का अन्य रियासतों पर क्या प्रभाव पड़ा। यह जानने से पहले सारे भारतीय जन-मानस में गोरों के प्रति व्याप्त असन्तोष व घृणा तथा क्रोध व स्वतन्त्रता प्राप्ति की अभीप्सा के मूलाधार में कौन सी 'माला में धागेवत्' भावना उछालें ले रही थी इस पर अति संक्षेप में चर्चा कर लें। अपने देश में विदेशी शासन के रहते हुये कोई भी रियासत चाहे वह गोरों द्वारा छीन ली गयी हो, या अभी भी येन-केन-प्रकारेण अपनी तथाकथित स्वतन्त्रता को मृतवत चला रही हो, जब तक विदेशी शासन है तब तक इनका उद्धार सम्भव नहीं है, अतः सारे राष्ट्र के जनमानस का असन्तोष किसी रियासत विशेष के पक्ष में न उठकर समस्त ब्रिटिश शासन के प्रति विद्रोह करने के लिये तैयार था। रियासत रहे या जाये, राजा जीवित रहे या मृत्यु को प्राप्त हो, परन्तु राष्ट्र की स्वतन्त्रता प्राप्ति का महत्तम ध्येय ही उस समय जनमानस के हृदयों में हिलोरें मार रहा था तथा रियासतवाद का तुच्छ व संकीर्ण विचार उनके मानस को छू तक नहीं गया था। इस पृष्ठभूमि में जहाँ राजा ने विद्रोह का बिगुल बजाया वहाँ सारी प्रजा उसके साथ उठ खड़ी हुई, पर जहाँ राजा ने पशोपेश की अवस्था दिखाई वहाँ भी जनसाधरण ने उसे रण में उतरने को उद्यत किया, परन्तु जैसा सब जानते हैं कि अनिच्छुक राजा या कर्णाधार के चलते प्रजा पूरे वेग से विद्रोह करने के बाद भी कुछ अधिक नहीं कर पाती।

इसके अनगिनत ज्वलन्त उदाहरणों में एक था ग्वालियर का राजा, जियाजीराव सिन्धिया। महादजी सिंधिया जैसे नर व्याघ्र जिसने अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध में छक्के छुड़ा दिये थे तथा बाद में अपनों के ही द्वारा विष देकर मार डाला गया था, के इस वंशज ने क्लीवत्व व दासता की पराकाष्ठा कर दी। ग्वालियर रियासत की जनता व नेटिव रेजीमेण्ट के बार-बार प्रार्थना करने पर भी सिन्धिया की जीभ से अंग्रेजों के प्रति 'मित्रता का ही शब्द निकला।' हार कर नेतृत्वविहीन इस नेटिव रेजीमेण्ट व वहाँ के नागरिकों ने १४ जून को अंग्रेजों पर आक्रमण कर उन्हें मार डाला, परन्तु महिलाओं को सुरक्षित आगरा भिजवाने की व्यवस्था कर दी। इस प्रकार ग्वालियर रियासत को अंग्रेजों से अस्थाई रूप से आजाद

कराके वे सिन्धिया को आदेश देने लगे कि आगे के रण में हमारा नेतृत्व करें, पर उस क्लीव व पौरुषहीन राजा ने टालमटोल ही की। इस बीच स्वनाम धन्य तांत्याटोपे ग्वालियर पहुँचकर वहाँ के मुरार कंटिञ्जेण्ट को भुलावे से निकालकर नाना साहब की ओर उसे लेकर वापस चल पड़ा।

इसी प्रकार नसीराबाद व नीमच की विद्रोही रेजीमेण्ट जब ५ जुलाई को आगरा पर आक्रमण करने गयी तो उनके पीछे भरतपुर व करौली की सेना को वहाँ के गोरों के साथ राजाओं ने उन पर ही हमला करने भेज दिया। तब भरतपुर व करौली के नेटिव सैनिकों ने अपने गोरे कमाण्डरों से साफ कहा कि रियासत के आदेश से वे बाहर तो आ गये पर अपने ही भाईयों पर वह हथियार नहीं उठायेंगे। तब शेष बची गोरी सेना के साथ ब्रिगेडियर पालवल आगरा से चढ़े आ रहे विद्रोहियों से लड़ने चला तथा नेटिव सैनिकों से मार खाकर वापिस आगरा आकर किले में बन्द हो गया। इसी बीच मौके का इन्तजार करते भारतीय नागरिकों व वहाँ का शासन संभाल रहे अफसरों ने ६ जुलाई को आगरे का सारा कण्ट्रोल अपने हाथ में ले लिया। इतना होने पर भी सिंधिया आगरा के गोरे साहबों की सहायता करता रहा तथा राष्ट्रद्रोहियों के शिखर पुरुषों में अपना नाम भी पूर्ण कालिमा से लिखा दिया।

ग्वालियर से सबक लेते हुये इन्दौर की नेटिव पलटन ने भी वहाँ के शासक होल्कर की परवाह न करते हुये वहाँ की छावनी के ऊपर हमला कर दिया तथा मऊ के कंटिञ्जेण्ट के साथ मिलकर इन्दौर रियासत से गोरों को भाग जाने को कहा तथा उनकी वहाँ से जाते समय सुरक्षा भी की।

इस प्रकार हमारे सन्मुख विद्रोह से सम्बन्धित दो प्रकार के दृश्य उपस्थित होते हैं। एक, देहली, मेरठ, कानपुर, लखनऊ, इलाहाबाद आदि के जनपद जहाँ पर राजा व प्रजा ने एक साथ सशस्त्र विद्रोह का झण्डा बुलन्द कर अंग्रेजों की नींद हराम कर दी तथा दो जहाँ की रियासतों के मुखियाओं ने तो कोई प्रत्यक्ष योगदान नहीं किया पर उनकी प्रजा व रेजीमेण्टों ने नेतृत्वविहीन होने पर भी यथासम्भव इस स्वातन्त्र्य महायज्ञ में बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया। जाहिर है कि अधिकतर रियासतों के मुखियाओं ने एक 'चमगादड़ी नीति' अपनाकर न तो अपनी जनता का पूरे मन से साथ दिया और न ही गोरों का। प्रत्यक्ष रूप से उन्होंने राष्ट्र द्रोह

भी नहीं किया पर स्वातन्त्र्य युद्ध के इस यज्ञ में अपनी पूर्णाहुति भी नहीं दी। यदि उत्तर भारत के राजाओं के समान उन्होंने भी पूरे वेग के साथ क्रान्ति का साथ दिया होता तो सारे अंग्रेजों को भारत से निकालने में १८५७ के मात्र दो-तीन मास ही पर्याप्त होते। अस्तु।

वायसराय व इंग्लैण्ड को क्रान्ति की अपूर्ण जानकारी

इस समग्र क्रान्ति की कलकत्ता के वायसराय व इंग्लैण्ड को कितनी अल्प जानकारी थी यह इसी से सिद्ध होता है कि मेरठ के १० मई के विस्फोट से लेकर ३१ मई के सार्वजनिक विद्रोह के बीच कहीं कोई गड़बड़ी नहीं हुई ऐसा समझकर २५ मई १८५७ को गृह सचिव ने घोषित किया कि कलकत्ता से ६०० मील दूर सर्वत्र शान्ति है, क्रान्ति कहीं भी नहीं व हर ओर निर्भयता का और शान्ति का वातावरण है। ३१ मई के विस्फोट ने जब लखनऊ, झाँसी, इलाहाबाद, कानपुर आदि क्षेत्रों में ताण्डव मचाना शुरू किया तथा रेल की पटरियाँ व सभी प्रकार के सम्पर्क साधन भी टूटकर तितर-बितर हो गये तब कहीं जाकर वायसराय केनिंग को कुछ-कुछ उस विस्फोट की गम्भीरता समझ में आयी। और जब इस उग्रता से बेखबर लार्ड केनिंग की सूचना के आधार पर परिपोषित ब्रिटिश पार्लियामेण्ट को और कितनी अधिक अपूर्ण जानकारी होगी इसकी कल्पना ही की जा सकती है। इंग्लैण्ड जून के प्रथम सप्ताह तक तो 'सब कुछ ठीक है' के भ्रमजाल में रहा। जैसा कि पार्लियामेण्ट हाउस ऑफ कॉमन्स में प्रेसीडेण्ट बोर्ड ऑफ कॉमर्स के बयान से स्पष्ट है, ''बंगाल में हाल में घटित असन्तोष से लोगों को घबराने का कोई कारण नहीं है क्योंकि लॉर्ड केनिंग द्वारा दिखाई गई तत्परता कड़ाई व तुरन्त कार्यवाही से सेना में देखे गये असन्तोष के बीज पूरी तरह नष्ट हो गये हैं।'' और ११ जून तक भारत में घुड़सवारों की ११ रेजीमेण्ट तोपखाने की ५ फील्ड बैटरी, पैदल सेना की कम से कम ५० नेटिव रेजीमेण्ट और करीब सारे सैपर्स व माइनर्स ने खुला विद्रोह किया हुआ था। पूरा अवध विद्रोहियों के हाथ में था, कानपुर व लखनऊ दोनों शहर घिरे हुये थे। खजाने का करीब एक करोड़ से अधिक रुपया विद्रोहियों के हाथ लग चुका था। पर १५ जून आते-आते जब वास्तविक खबरें वहाँ पहुँची तब वहाँ क्या हुआ होगा इसकी मात्र कल्पना ही की जा सकती है। इस विषय पर अधिक लिखना

हमारा अभीष्ट नहीं है। एक तथ्य जो निर्विवाद है वह यह कि इस समग्र सशस्त्र क्रान्ति की कल्पना भी गोरों ने कभी नहीं की थी तथा क्रान्ति को दबा देने के बाद भी वे यह नहीं समझ पाये कि आखिर हुआ क्या ?

लॉर्ड केनिंग ने १२ जून को कलकत्ता के नागरिक गोरे लोगों की स्वयंसेवक टोलियाँ बनाकर उसे सैनिक प्रशिक्षण देकर एक काम चलाऊ ब्रिगेड तैयार कर ली इस प्रकार लश्करी यूरोपियन सोल्जरों को बाहर भेजना प्रारम्भ किया। बैरकपुर के नेटिवों को निशस्त्र करवा दिया गया तथा अवध के वजीर नक्की खान जो कलकत्ता में स्वराज्य प्राप्ति के लिये सक्रिय थे उन्हें तथा नवाब वाजिदअली शाह को नजरबन्दी से हटाकर किले में कैद कर दिया। इस प्रकार बंगाल में विद्रोह का ताना-बाना बुनकर क्रान्ति कराने की योजना गर्भ में ही समाप्त कर दी गयी।

आइये अब १८५७ के संग्राम में अंग्रेज लेखकों द्वारा जोर-शोर से प्रचारित भारतीय सैनिकों की गोरे असैनिक वाशिन्दों, स्त्रियों व बच्चों पर की गयी क्रूर हत्याओं के सच की भी जाँच कर लें। १८५७ का भारत हमारे सन्मुख ऐसा दृश्य उपस्थित करता है जहाँ गोरों की क्रूरता अपने चरम पर थी। कहीं से भी किसी भी प्रकार का न्याय पाने की आशा नहीं। भारतीयों के सिंहासन फूटे हुये, उनके मुकुट टूटे हुये, धर्म कुचला हुआ, जागीरें जब्त, कानून लतिआये हुये, वचन भंग अपमान व मान भंग जीवन में विफलता का पहाड़, निवेदन व्यर्थ, अर्जिया व्यर्थ, रोना चिल्लाना व्यर्थ। ऐसे मंजर में 'प्रतिशोध व बदला' ऐसी कानाफूंसी होने लगी। क्योंकि इतने अत्याचारों के बाद भी जो कौम प्रतिशोध की न सोचे तो वह निश्चय ही एक मृत कौम है। अतः जब प्रतिशोध का ज्वालामुखी फूटा तब सशस्त्र विद्रोह में सारी क्रान्ति के दौरान मुश्किल से पाँच-छह ऐसे उदाहरण हैं जहाँ पर गोरों को सपरिवार कत्ल कर दिया गया। वरना अधिकतर उन्हें सुरक्षा दी गयी। भागते गोरों को गाँव वालों ने अपने कपड़े पहनाकर क्रान्तिकारियों से बचाया तथा नाना साहब व बेगम हजरत महल ने उन लोगों को शरण दी। और नतीजा ठीक उल्टा हुआ। इन्हीं शरणागत गोरों ने समय पड़ने पर अपने ही संरक्षकों को मरवा डाला। आश्चर्य तो सिर्फ इस बात का होता है कि इतना सहने के बाद भी हत्याकाण्ड की घटनायें मात्र चार-पाँच स्थानों पर ही क्यों हुई। अधिक स्थानों पर क्यों नहीं और

इसका कारण मात्र एक तथ्य में छिपा हुआ है। भारतीय मानस के संस्कार व उसकी सहनशीलता।

इसके उलट यदि हम तत्कालीन गोरों द्वारा किये गये सामूहिक नरसंहार के उदाहरण पेश करें तो भारतीयों की क्रूरता कुछ भी नहीं है यथा जनरल नील द्वारा बनारस से कानपुर तक किया जाने वाला घोर नरसंहार। अवध में गाँव के गाँव महिला व बच्चों सहित जलाने वाला इंग्लैण्ड, पाण्डे सैनिकों को फाँसी के बजाय जिन्दा जलाने वाले कमाण्डर इन चीफ सरकॉलेन्स जनरल हडसन व आउट्रम आदि इन घोर क्रूरतम् कृत्यों द्वारा असंख्य निरअपराध निरीह भारतीयों की हत्या करने के दोषी है। इस प्रकार सन् १८५७ में घोरतम् नरसंहार करने वाले इन ब्रिटिश जनरलों की तुलना में चार-पाँच स्थानों पर किया गया नरसंहार कोई मायने नहीं रखता।

वैसे इस प्रकार दमनकारी राज्य व्यवस्था के प्रतिशोध रूप अन्य देशों के विद्रोहियों ने क्या किया उसकी कुछ बानगी भी यहाँ प्रस्तुत हैं। जब स्पेनवासियों ने मूर लोगों से अपनी स्वतन्त्रता ५०० वर्ष बाद वापिस ली तो उन मूर मुस्लिमों के स्त्री, पुरुष, बच्चों सहित एक विशिष्ट जाति का होने के कारण कत्लेआम कर दिया था।

ग्रीस देश ने सन् १८२१ में कोई २१ हजार तुर्की किसानों के पुरुष, महिला, बच्चों का अति अघोरतम् कत्ल कर दिया। उन दिनों यूरोप की हिटेरिया नामक गुप्त संस्था ने इसके समर्थन में कहा कि ग्रीस देश में तुर्क, हम ग्रीस लोगों के प्रति कभी भी वैमनस्य छोड़ने वाले नहीं है। अतः उनकी हत्या ही उचित है। इसी प्रकार क्रैमवैल ने आयरलैण्ड में घुसकर घोरतम् व क्रूरतम् सामूहिक नरसंहार किया था।

इन उदाहरणों के सन्मुख मात्र पाँच-छह स्थानों पर किया गया भारतीय विद्रोहियों द्वारा गोरों का नरसंहार अति अल्प है और किसी टिप्पणी का भी अधिकारी नहीं है।

दिल्ली का महासंग्राम

१० मई को हुये इस महाविस्फोट की तथा उसके परिणाम-स्वरूप सारे पंजाब में मची हलचल की चर्चा हम पहले ही कर आये हैं। ११ मई को दिल्ली पहुँचकर अपनी स्वतन्त्रता घोषित करने के बाद दिल्ली शहर उस प्रचण्ड लड़ाई की तैयारी करने

और मची हुई अन्धाधुन्धी को अनुशासित व व्यवस्थित करने में लगा रहा। सारे सैनिकों व दिल्लीवासियों ने अंग्रेजों से पैंशन प्राप्त हतशौर्य हुये मुगलों के अन्तिम बादशाह बहादुर शाह जफर को अपना बादशाह चुनकर क्रान्तिकारियों ने जो एक शक्तिकेन्द्र तैयार किया वह इतना शक्तिशाली था कि उसके प्रभाव से स्वतन्त्रता संग्राम स्थिर हो गया और यह इतिहास की एक करवट ही कहा जायेगा कि क्रूर व अत्याचारी मुगल वंश का यह अन्तिम, नाम मात्र का बादशाह क्रान्तिकारियों द्वारा एक पूर्ण लोकतान्त्रिक पद्धति से सारे क्रान्तिकारियों देहलीवासियों व बाद में जैसा कि हम जानेंगे कि सारे ही उत्तर भारत में स्वतन्त्रता प्राप्ति में संलग्न क्रान्तिकारियों द्वारा अपना बादशाह चुना गया। इस घटनाक्रम में एक थोपे हुये बादशाह, व एक लोकतान्त्रिक पद्धति से चुने गये बादशाह में अन्तर स्पष्ट है।

बहादुर शाह ने तुरन्त ही समय न गँवाते हुये सारे ही राज्यों व रियासतों को एक पत्र भेजा जिसका सार था ''विदेशियों के साम्राज्य व सत्ता का अब अन्त हो गया है तथा इन क्रूर अंग्रेजों को भारत से बाहर खदेड़ देना व मार डालना प्रत्येक भारतीय का कर्त्तव्य है।'' एहिक लाभ की कोई आशा न रखते हुये जो धार्मिक कर्त्तव्य भावना से प्रेरित हैं वे हमसे आकर मिले। इस प्रकार के जाहिरनामे देहली व अवध से प्रकाशित हुये व देश के सुदूर दक्षिण छोर तक उनकी प्रतियाँ हाथों हाथ व बाजार व सेना में पहुँच गयी।

इस घोषणा के अनुसार पास व दूर की रियासतों की अनेक सैनिक टोलियों से व हिन्दुस्तान के प्रमुख नगरों से दिल्ली के राजा के लिये नजराने आने लगे। पंजाब में अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध करने वाली नेटिव सिपाहियों की पलटने तथा अवध नीमच रूहेलखण्ड और दूसरी जगह के विद्रोही अपने-अपने झण्डे व निशान लिये दिल्ली की ओर चलने लगे। इस प्रकार क्रान्तिकारियों द्वारा अपने-अपने क्षेत्र को अंग्रेजों से मुक्त कराने के लिये देहली की ओर कूच करते रहने के कारण देहली में न तो सैनिकों की कमी रही और नहीं धन-धान्य की। हाँ यदि कमी थी तो इन विभिन्न स्थानों से आये देश को स्वतन्त्र कराने की भावना से कूट-कूट कर भरे दृढ़निश्चयी विद्रोहियों को एक सूत्र में पिरोकर उनसे एक अनुशासित व गठी हुई समर पद्धति अपनाकर अंग्रेजों से युद्ध करवाने वाले एक योग्य व असाधारण नेतृत्व वाले नेता की। जो इन सैनिकों को

कभी नहीं मिला। अतः वे अपने-अपने स्वतन्त्र तरीके से अंग्रेजों से युद्ध करने में मशगूल रहे तथा जो प्रभावशाली समन्वय इस प्रकार के युद्धों के लिये आवश्यक है उसकी सदैव कमी रही तथा इन सभी क्रान्तिकारियों के जज्बे को साष्टांग प्रणाम करने पर भी हम स्वीकार करते हैं कि इस कमी के कारण वह प्रलयंकारी विद्रोह विफल हो गया तथा हमें ९० वर्ष तक अर्थात् १९४७ तक क्रान्ति को आगे चलाकर स्वतन्त्रता मिली।

देहली में गोला-बारूद, तोप-बन्दूक और छोटे हथियार बनाने का कारखाना चालू किया गया तथा उसके निर्माण को अबाध गति से चलाने के लिये कुछ फ्रैंच लोगों को नौकरी पर रखा गया। गोरी सेना देहली तक तो पहुँच गयी तथा आगे की योजना पर विचार कर रही थी। उन्होंने यमुना नदी के किनारे-किनारे पर चार-पाँच मील तक फैली हुयी करीब चालीस-पचास ऊँची टेकडियों पर अपनी तोपें लगा ली जो देहली की ओर प्रभावशाली मार कर सकती थी।

साथ ही नाभा, जींद व पटियाला के राजाओं द्वारा पंजाब के सारे राजमार्ग की सुरक्षा करने के कारण वहाँ से सारी युद्ध सम्बन्धी सामग्री व सैनिकों की आपूर्ति बिना रुकावट होती रही। इस प्रकार सामरिक दृष्टि से सामग्री प्राप्ति के प्रति आश्वस्त होकर ब्रिटिश कमाण्डर वर्नार्ड आत्मविश्वास से परिपूर्ण गर्वोक्ति से कहने लगा कि अब दिल्ली जीतने में एक दिन भी नहीं लगेगा। उस समय वह नहीं जानता था कि अपनी जान हथेली में रखे हुये उन नेतृत्वविहीन स्वतन्त्रता के मतवाले सैनिकों से देहली मुक्त कराने में उसे मृत्यु का ग्रास बनना पड़ेगा तथा साढ़े चार माह का समय भी लगेगा। जैसा कि आगे के वर्णन से पता लगेगा कि वर्नार्ड का कार्यकाल यथा ५ जुलाई १८५७ तक विद्रोहियों के हमले झेलते-झेलते वह एक इंच भी आगे न बढ़ सकने की कहानी है जिसके कारण दुःखी व निराश वर्नार्ड ५ जुलाई १८५७ को हैजे से मर गया। बहुत संक्षेप में घटनाक्रम इस प्रकार है—

बिल्वरफोर्स, ग्रेट हैड, इबम हडसन, जैसे कमाण्डर तुरन्त प्रभावशाली कार्यवाही चाहते थे। अतः १२ जून को उन्होंने अपने सैनिकों को अर्द्ध रात्रि से ही नियोजित परेड ग्राउण्ड पर इकट्ठा करना शुरू कर दिया। तभी उन्हें सेना का कुछ भाग लापता मिला। अर्थात् काफी नेटिव सैनिक उन्हें छोड़कर देहली की ओर

कूच कर गये। हार कर १२ जून को सारी दिल्ली को जीतने की इच्छा धरी की धरी रह गयी तथा उन्होंने उस दिन हमला नहीं किया। इस प्रकार १२ से १६ जून तक ये कमाण्डर योजना ही बनाते रहे पर उनकी देहली पर आक्रमण करने की योजना फलीभूत नहीं हो सकी।

इसी बीच देहली में सैनिकों व सैन्य सामग्री की लगातार आवक होते रहने के कारण उन्होंने अपनी युद्ध पद्धति में बदलाव करते हुये छापामार, घात लगाकर हमला करने की योजना बनाई। १२ जून को अंग्रेजों के एक हिस्से पर विद्रोहियों ने दो तरफ से अचानक हमला कर दिया। तोपखाने के सैनिकों को मार डाला उनका नेता नाक्स मारा गया। जब अंग्रेजों ने अपनी ओर के नेटिव सिपाहियों को विद्रोहियों पर हमला करने के लिये भेजा तो वे भी विद्रोहियों से मिलकर दिल्ली शहर में चले गये। ऐसा क्रम लगभग रोजाना चलता रहा तथा अंग्रेजों में दहशत फैल गयी। १७ जून को भारतीय सेना ने ईदगाह भवन पर तोपों का मोर्चा जमाना शुरू कर दिया। तथा वहाँ से अंग्रेजों की टेकरी पर तैनात तोपों पर जोरदार गोलाबारी शुरू कर दी। यह देखकर मेजर रीड व हेनरी टोप्स ने उन पर दो तरफा आक्रमण कर दिया। सब तरफ से घिरे उन भारतीय सैनिकों ने अन्तिम सांस तक युद्ध किया तथा सभी वहीं लड़ते हुये शहीद हो गये।

१८ जून को नसीराबाद के सिपाही देहली पहुँच गये व अपना खजाना उन्होंने शाही प्रतिनिधि को दे दिया। २० जून को इन सैनिकों ने अंग्रेजों की छावनी की पिछाड़ी पर छापामार पद्धति अपनाते हुये जोरदार हमला किया। स्कॉट, मनी, टॉप्स आदि ने जोरदार मार करके यह हमला रोकने का प्रयास किया पर उसमें सफल नहीं हो सके। लॉर्ड रोबर्ट्सन लिखता है—''विद्रोहियों के कारण हम में भगदड़ मच गयी'' होप ग्राण्ड का घोड़ा मर गया तथा स्वयं भी घायल हो गया। मध्य रात्रि तक ऐसे झपट्टे चालू रहे और अन्त में अंग्रेज युद्ध क्षेत्र से पीछे हट गये और अंग्रेज छावनी का एक प्रमुख स्थान विद्रोहियों के हाथ लग गया।

इस प्रकार हमले चलते-चलते २३ जून १८५७ आ गया यानी प्लासी की लड़ाई का १००वाँ वर्ष। प्लासी के अपमान का बदला लेने को कटिबद्ध विद्रोही सैनिकों के भयंकर हमलों की जानकारी अंग्रेजों को पहले ही होने के कारण उन्होंने भी पूरी तैयारी कर ली

थी। दोनों ही ओर से वीरतापूर्वक युद्ध लड़ा गया तथा दोनों ही पक्ष एक-दूसरे को परास्त करने में उद्यत रहे। मेजर रीड कहता है—मेरे सारे स्थानों पर विद्रोहियों ने बड़ी दृढ़ता से लड़ाई लड़ी इससे अधिक पराक्रम से कोई लड़ नहीं सकता। रायफलधारी सिपाहियों पर मार्ग दर्शकों पर और खास मेरे पास के आदमियों पर उन्होंने बार-बार हमले किये व एक बार मुझे ऐसा लगा कि हम हार गये। इस युद्ध में कर्नल बैल्शमन भी मारा गया। उस दिन हार के नजदीक पहुँचते-पहुँचते अंग्रेज कमाण्डर ने पंजाबी टुकरी को लडने का आदेश दिया तथा शाम होते-होते युद्ध बराबरी पर छूटा। इसी प्रकार दिन गुजरते रहे व दोनों ही पक्षों के सैनिकों की पूर्ति अबाध गति से होती रही।

२ जुलाई को रूहेलखण्ड की विद्रोही पलटन अति योग्य प्रशासक बख्तर खान के नेतृत्व में देहली आ गयी। बख्तर खान अपने साथ चार पैदल टुकड़ियाँ, ७०० घुड़सवार सैनिक, घोड़े पर चढ़ी ६ तोपें, तीन जमीनी तोपें आदि सामान लाया था तथा सिपाहियों को ६ माह का पेशगी वेतन देने के बाद भी उसके पास ४ लाख रुपये बचे थे जो बादशाह के कोश में जमा करा दिये गये। वहाँ की सारी सैनिक टुकड़ियों के नायकों के अनुमोदन से बख्तर खान को सर सेनानायक बनाया गया। जिसके नेतृत्व में सारी सेना आगे के युद्ध के लिये सजग हो गयी। बख्तर खान ने दिल्ली में बढ़ती अनुशासनहीनता, लूटपाट आदि पर नकेल कसने के लिये प्रभावी कदम उठाये तथा कोई गैर इत्तेफाकियत न हो इस कारण शहर कोतवाल को सख्त कदम उठाने की राय दे डाली तथा अव्यवस्था फैलाने वाला चाहे राजकुमार ही क्यों न हो उसे फाँसी देने का विधान रचा। दूसरी ओर अंग्रेजों को नई कुमुक के साथ ब्रिगेडियर जनरल चैम्बरलेन जैसा शूर तथा बेअर्ड स्मिथ जैसा योग्य इञ्जीनियर भी मिल गया। जो नई कुमुक के साथ आया था।

३ जुलाई को कमाण्डर वर्नार्ड एक बार पुनः देहली पर आक्रमण करने की योजना बना रहा था कि बख्तर खान के नेतृत्व में विद्रोही सैनिक अंग्रेजों पर पुनः हमला करने चढ़ आये तथा पुनः ४ जुलाई को भी उसने आक्रमण कर अंग्रेजों को अलीपुर तक धकेल दिया। इस प्रकार अंग्रेजों को पंजाब से कुमुक रसद् व योग्य नेतृत्व मिलने के बाद भी गोरे सैनिक एक माह तक एक इंच भी आगे नहीं बढ़ पाये। उनकी एक दिन में दिल्ली जीतने की

गर्वोक्ति चूर-चूर हो गयी। तथा बुरी तरह से निराश व हताश कमाण्डर वर्नार्ड ५ जुलाई को हैजे से मर गया। उसके स्थान पर सेनापति रीड अंग्रेजी सेना का सेनापति बना।

९ और १४ जुलाई के दिन स्वतन्त्रता सेनानियों ने अंग्रेजों पर पुनः-पुनः हमला किया। ९ तारीख के भयानक आक्रमण में हिल व उसके घोड़े को मार गिराया उस दिन अंग्रेजों का अपमान भरा पराभव हुआ तथा हार की खीज उन्होंने अपने सेवा में लगे भिस्तियों व अन्य भारतीयों की हत्या करने में लगा दी। १४ जुलाई के हमले में और भी बुरा हाल हुआ क्योंकि चैम्बरलेन इस हमले में मारा गया। इस प्रकार हार सहते-सहते रीड पूरी तरह से निरोत्साहित हो गया व उसने इस्तीफा दे दिया, अधिकार त्याग दिया व हिमालय की टेकड़ियों में जाकर रहने लगा। क्रान्तिकारियों की संख्या अब तक बीस हजार हो चुकी थी। रीड के स्थान पर अब चौथा कमाण्डर ब्रिगेडियर जनरल विल्सन आया तथा अंग्रेजों की स्थिति अब तक काफी दयनीय हो गयी थी। अपनी इस स्थिति से उभरने के तथा देहली को परास्त करने के लिये कमाण्डर इन चीफ जनरल लॉरेन्स से मँगाई गई सीज ट्रेन जो विशेष युद्धक दस्तों का समूह था तथा अधिक पंजाबी सैनिकों की कुमुक के आने का बेसब्री से इन्तजार कर रहे थे।

इस अन्तराल में जहाँ विल्सन एक ओर देहली से घेरा तक हटाने के बारे में गम्भीरता से मंथन कर रहे थे वहीं बेअर्ड स्मिथ जैसा साहसी, उसका पुरजोर विरोध कर चेतावनी दे रहा था कि घेरा हटाने का अर्थ है कि इन ३०-३५ हजार सैनिकों को सारे देश में फैलने देना जो स्वतन्त्रता संग्राम की देश में फैली आग में घी का काम करे। अतः घेरा उठाने का विचार त्याग दिया गया। इसी बीच भारतीय सैनिक छोटी-छोटी टोलियों में आये दिन गोरों पर आक्रमण करते रहे तथा उन्होंने एक नायाब पद्धति भी ईजाद कर ली कि पूरी ताकत से अंग्रेजों की छावनियों में घुसकर हमला करो तथा पीछे हटकर अंग्रेजी सेना को भारतीय तोपों की मार में लाकर ओझल हो जाओ ऐसा करके कई बार गोरे सैनिकों को इतनी हानि पहुँची कि जनरल विल्सन ने इन विद्रोहियों का पीछा करने के लिये अपनी फौज को सख्त मना कर दिया।

इस छिटपुट युद्ध दृश्य के बीच जॉन लारेन्स ने सीजट्रेन तथा नयी कुमुक एक योग्य कमाण्डर निकलसन के नेतृत्व में देहली

भेज दी। जो यथासमय पहुँच गयी। अंग्रेजों में खुशी की लहर दौड़ गयी कि अब विजय निश्चित है। उतनी ही निराशा भारतीय सैनिकों में भी फैल गयी कि अब अपनी पराजय अधिक दूर नहीं। कारण एक सुयोग्य कर्णधार की कमी। इसी कारण ये पचास हजार सैनिक अव्यवस्थित अपनी-अपनी टोलियों के नेता की आज्ञा मानकर विभिन्न दिशाओं में छितरे-छितरे युद्ध करते रहे पर विजयश्री के लिये आवश्यक एक सूत्र में बद्ध होकर पूरे वेग से युद्ध कराने वाले नेता का अभाव होने के कारण अन्ततोगत्वा पराजय ही होती रही। बहादुर शाह जफर ने अपनी ओर से सारे प्रयास किये कि कोई एक सुयोग्य नेतृत्व इन सैनिकों को मिले। यहाँ तक कि उन्होंने सारी रियासतों को पत्र भेजकर स्पष्ट किया कि कोई भी जो इस सेना का नेतृत्व करने में सक्षम हो उसे वे दिल्ली का बादशाह घोषित कर स्वयं पद छोड़ देंगे। इतने पर भी ऐसा कुशल नेतृत्व देने वाला कहीं नहीं मिला। तथापि यदि यह बन्धरहित माला टूटी नहीं तो उसका एक मात्र कारण सैनिकों में गोरों के प्रति घृणा व अपने देश को किसी प्रकार स्वतन्त्र कराने की उत्कट अभिलाषा थी।

पंजाब से सहायता आने के बाद सेना की कुल संख्या करीब ११ हजार हो गई तथा अपने सैनिकों को लेकर जींध का राजा भी अंग्रेजों से आ मिला। सितम्बर के पूर्वार्द्ध में अंग्रेज जनरल ने विघातक पद्धति से हमला व मार करने वाली विभिन्न बैटरियों का निर्माण कर सेना की प्रहारक क्षमता को और मजबूत बनाया।

अपनी ओर नेतृत्व की कमी होने पर भी वहाँ के सभी सैनिकों ने एक स्वर से युद्ध जारी रखने का निर्णय कर सर्वप्रथम सीज ट्रेन पर हमला करने की योजना बनाई। सेनापति बख्तर खान के नेतृत्व में भारतीय सैनिक नजफगढ़ की ओर सीज ट्रेन पर हमला करने चले। परन्तु नीमच की ब्रिगेड ने बख्तर खान के आदेश की अवहेलना करते हुये पास के एक गाँव में डेरा डाला। अंग्रेजों को सूचना मिलते ही जनरल निकल्सन के नेतृत्व में सेना ने इतना जोरदार हमला किया पूरी की पूरी नीमच ब्रिगेड नेस्तनाबूद हो गयी। २५ अगस्त को मिली इस विजय से अंग्रेजों की खुशी का पारावार न रहा तथा निकल्सन को अन्तिम आक्रमण का नक्शा तैयार करने का आदेश दिया गया। योजनानुसार सेना के चार भाग में से तीन भाग निकल्सन के नेतृत्व में कश्मीरी दरवाजे से व चौथा

भाग मेजर रीड के नेतृत्व में काबुल दरवाजे से देहली में प्रवेश करने के लिये तैयार हुये व सेना का मुख्य भाग कमाण्डर कैम्पवैल के नेतृत्व में इन कॉलमों के सफल होने के बाद देहली में प्रवेश करने के लिये तैयार किया गया। १४ सितम्बर को ये चारों कॉलम अपने नियत कार्यों को अंजाम देने के लिये देहली की ओर चल पड़े। रात भर दीवार तोड़ने वाली अंग्रेजों की तोपें सुबह शान्त हो गयी।

पहला कॉलम काश्मीर वेस्टन, दूसरा वाटर वैस्टन से किये गये तोप से बने छेदों को पार कर अन्दर घुसने लगा तो तीसरा कॉलम लेफ्टीनेण्ट होम व सालकोल्ड के नेतृत्व में कश्मीरी दरवाजे से प्रवेश करने के लिये आगे बढ़ा। इन तीनों ही स्थानों पर भारतीय सैनिकों का जबर्दस्त प्रतिरोध झेलते हुये व मृत्यु का वरण करते ये तीनों ही कॉलम शाम होते-होते अपने नियत स्थान पर मिल गये। इसमें सालकोल्ड मारा गया पर काश्मीरी दरवाजे के सफल अभियान के बाद कैम्पवैल भी अपनी सेना के साथ अन्दर प्रवेश कर गया। इस तरह तीन कॉलम व मुख्य सेना तो एक दूसरे को मिल गये पर काबुल दरवाजे के चौथे कॉलम का अभी तक पता नहीं था।

मेजर रीड के नेतृत्व में चौथा कॉलम काबुल दरवाजे से घुसते ही उसका इंच-इंच पर इतना प्रतिरोध हुआ कि रीड घायल होकर गिर पड़ा तब होप ग्राण्ट ने कमान संभाली फिर भी काफी समय लड़ते-लड़ते भी भारतीय सैनिकों के भीषण प्रतिरोध के कारण यह कॉलम आगे नहीं बढ़ सका तथा पीछे लौटने लगा। इसी बीच निकल्सन के नेतृत्व वाले तीनों कॉलम व कैम्पवैल व जौन्स कुछ देर रुककर शहर पर कब्जा करने आगे बढ़ते हुये काबुल दरवाजे की ओर चल पड़े तथा मार काट करते-करते वर्नवेस्टन स्थान तक पहुँचे। इस २०० गज लम्बी गली को विजय करने की जीतोड़ कोशिश में लगी ब्रिटिश सेना का मुकाबला करते भारतीय रणबाँकुरों के प्रखर प्रहारों को सहने में असफल रहे ब्रिटिशरों को दो बार इस गली से पीछे हटना पड़ा। हर घर से गोलियों की बौछार तथा भारतीय सैनिकों के प्रहार से निकल्सन घायल हो गया जैकव मारा गया तथा कमाण्डर कैम्पवैल भी घायल हो गया। इस प्रकार काबुल दरवाजे पहुँचते न पहुँचते १४ सितम्बर का दिन समाप्त हो गया। इसका परिणाम ६६ अंग्रेज अधिकारी और ११०४ सैनिक

इस दिन समरांगण में मृत्यु का ग्रास बने और इसकी ऐवज में मुश्किल से देहली का एक चौथाई भाग ही विल्सन के हाथ लगा। पहले ही दिन के इस भीषण प्रतिरोध व इतने अधिक सैनिकों की मृत्यु से विचलित विल्सन ने जब भविष्य में होने वाले युद्ध की भीषणता का अनुमान किया तो वह थर-थर काँपने लगा पर उसका यह भय इतना आधारहीन था यह अगले ही दिनों में साफ हो गया।

भारतीय सैनिकों से भी अब दो मुख्य सोच उभरकर आये। एक समूह के अनुसार सभी को अन्त तक युद्ध करना चाहिए। जबकि दूसरे के अनुसार क्योंकि देहली निश्चय ही हारनी है तो इसे छोड़कर आगे अन्य विद्रोहियों से मिलकर युद्ध किया जाये। ऐसी धारणा बनी। अतः काफी सैनिक देहली छोड़ गये और जो बचे उन्होंने बख्तर खान के नेतृत्व में अन्त तक युद्ध किया। १५ से २४ सितम्बर तक इन वीर सैनिकों ने अभूतपूर्व साहस व बलिदान का परिचय देते हुये अपनी मातृभूमि की रक्षा में अपने प्राण त्याग दिये। उनके इरादों और वीरता के बारे में एक अंग्रेज इतिहासकार लिखता है—''जिस समय महल में अंग्रेजी सेना घुसने लगी उस समय वहाँ कुछ जेहादी लोग खड़े दिखाई दिये।'' वे पंक्ति में भी नहीं थे क्योंकि पंक्ति बनाने की उनकी संख्या भी नहीं थी तथा वे जिस सेना से आज तीन माह तक बड़ी घृणा से उन्होंने संघर्ष किया उन फिरंगियों से उनकी शत्रुता जीवन के अन्तिम क्षण तक भी ढीली नहीं पड़ी थी, यह सिद्ध करने के लिये वे सिपाही विजय की रत्तीभर परवाह किये बगैर अद्भुतकर्मी लोग हमें चिढ़ाते खड़े रहे। एक गोरे इतिहासकार द्वारा दी गयी इस श्रद्धाञ्जलि के बाद इन अनगिनत वीरों के बारे में कुछ भी कहना शेष नहीं रह जाता।

इस प्रकार देहली का तीन चौथाई भाग अंग्रेजों के पास चला जाने के बाद कमाण्डर बख्तर खान ने देहली छोड़कर अन्यत्र विद्रोहियों से मिलकर गोरों से युद्ध जारी रखने की योजना बनाई। बहादुर शाह ने साथ जाने से इन्कार कर दिया तथा उसके साथ क्या हुआ यह इतिहास है।

जीत के बाद देहली में जो लूट व कत्लेआम अंग्रेजों ने कराया उसके बारे में लॉर्ड एल्फिस्टन, जॉन लोरेन्स को लिखता है— ''दिल्ली का घेरा समाप्त होने के बाद अपनी सेना ने दिल्ली का

जो हाल किया वह हृदयद्रावक है। शत्रु और मित्र का भेद न करते हुये सरेआम बदला लिया जा रहा है। लूट में तो हमने नादिरशाह को भी मात दे दी। जनरल आउट्रम कहता है दिल्ली जला दो।''

इस प्रकार यह नगर १३४ दिन तक अंग्रेजों जैसे सबल शत्रु की कुशलता को धिक्कारता हुआ दिन-रात संघर्षरत रहा।

अवध का प्रवेश द्वार-कानपुर

विद्रोह को दबाने के लिये सामरिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण फैसला करते हुये लॉर्ड केनिंग अपनी राजधानी इलाहाबाद ले आया। जनरल नील ने कुछ सेना इलाहाबाद रखकर बाकी मेजर रिनॉल्ड के नेतृत्व में कानपुर भेज दी। इसी बीच ईरान युद्ध में निवृत्त हुये अनुभवी जनरल हैवलॉक की नियुक्ति जनरल नील की जगह हो गयी और वह जून के अन्त तक इलाहाबाद आ पहुँचा। सर व्हीलर की कानपुर पराजय व अंग्रेजों के कत्ल के समाचार तब तक इलाहाबाद पहुँच चुके थे। हैवलॉक बिना समय गवाँये १००० यूरोपियन पैदल १००-१५० सिक्ख, यूरोपियन घुड़सवारों की एक छोटी सी टुकड़ी व ६ तोपें लेकर शीघ्र ही कानपुर की ओर चल पड़ा। फतेहपुर की ओर बढ़ते हुये रिनॉल्ड को रोकने के लिये १२ जुलाई को नाना साहब ने ज्वालाप्रसाद, टीका सिंह व इलाहाबाद के मौलवी के नेतृत्व में सेना फतेहपुर भेज दी। परन्तु इसी बीच हैवलॉक भी रिनॉल्ड की सेना से आ मिला तथा इन दोनों के प्रहार को नाना साहब की सेना न झेल सकी व उसके पैर उखड़ गये तथा कानपुर की ओर मुड़ गये। फतेहपुर का पतन होते ही अंग्रेजों ने सारे शहर में लूटपाट कर व कत्लेआम कर अपनी क्रूरता का परिचय दिया।

इसी बीच नाना साहब को पूरा पता लग चुका था कि उनकी शरण में रह रही गोरी महिलाओं ने एक जासूसी का जाल बिछाकर कानपुर की सारी सूचनायें अंग्रेजों की भेजनी शुरू कर दी थी। नतीजन उन सारी अंग्रेज महिलाओं को बचे खुचे गोरों सहित कत्ल करके कुएँ में डाल दिया गया। इस तरह के विश्वासघात के किस्से सारे ही क्षेत्र में भरे पड़े थे। हैवलॉक भी १६ जुलाई तक कानपुर की बाहरी सीमा तक आ पहुँचा तथा कानपुर छोड़ने से पूर्व एक बार और शत्रु को जोरदार टक्कर देने के लिहाज से नाना साहब ने अपनी सेना की उत्तम व्यूह रचना की। जिससे स्तंभित हैवलॉक

ने अपने व्यूह में आवश्यक फेरबदल करके नाना पर दो तरफ से प्रहार कर उसकी सेना को तितर-बितर करके पीछे हटने को मजबूर कर दिया। पश्चात् नाना साहब अपने खजाने व आवश्यक युद्ध तन्त्र के साथ कानपुर छोड़ गंगा पार उतर गये तथा अगले आक्रमण की तैयारी के लिये फतेहपुर पहुँच गये।

कानपुर में हैवलॉक ने जो नरसंहार किया उसका चित्रण चार्ल्सवाल इस प्रकार करता है-जनरल हैवलॉक ने सर व्हीलर की मृत्यु का भयानक प्रतिशोध लेना आरम्भ किया। नेटिवों की टोलियों पर टोलियाँ फाँसी चढ़ायी जाने लगी। इन विद्रोहियों में से कुछ ने मृत्यु के समय जो मानसिक अचलता व धैर्य का प्रदर्शन किया वह किसी सिद्धान्त प्रियता के लिये आत्मयज्ञ करने वालों के लिये एक उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करने वाला था।

नाना की आगे की सूचना न मिलने से हैवलॉक लखनऊ की ओर बढ़ा। जून माह के अन्त तक सारा अवध प्रदेश विद्रोह का एक जीवित छत्ता बन गया था। इसलिये उस प्रदेश से रास्ता निकालते हुये लखनऊ पहुँचना व वहाँ का घेरा उठाकर सर हैनरी लॉरेन्स को मुक्त कराना और यह कार्य दुष्कर होते हुये भी विजय के पहले आवेश में कानपुर से गंगा नदी उतरकर लखनऊ जीतना हैवलॉक व उसकी सेना को बहुत सुलभ लग रहा था। इस बात से अनभिज्ञ कि सारे अवध के गाँव-गाँव में झोपड़े-झोपड़े में उन पुरबियों के माँ-बाप, बच्चे व नाते सम्बन्धी सारे ही राज्य क्रान्ति की अनिवार्य चेतना से सुलगे हुये थे। फिर भी ऐसी हिम्मत व आवेश से हैवलॉक लगभग दो हजार अंग्रेजी सैनिक व दस तोपों सहित २५ जुलाई को गंगा पार हो गया। जनरल नील कानपुर में ही ठहर गया। हैवलॉक का यह आवेश भरा अभियान उसे कितना महंगा पड़ने जा रहा है यह आगे के सन्दर्भों में स्पष्ट हो जायेगा।

बिहार के तेवर व कुँवर सिंह

सारा उत्तर भारत यथा देहली, रूहेलखण्ड अवध में भी जब क्रान्ति की ज्वाला पूर्ण वेग से धधक रही थी तो भला बिहार उनसे कैसे अछूता रहता। बिहार के मुख्य शहर यथा पटना, आरा, गया, छपरा, मोतिहारी, मुजफ्फरपुर पूरी तरह से क्रान्ति की गिरफ्त में थे। इन शहरों की सुरक्षा के लिये रखा लश्कर पटना के बाद दानापुर छावनी में रहता था। जिसमें सात, आठ और चालीसवीं

नेटिव पैदल रेजीमेण्ट, नेटिव घुड़सवारों की बारहवीं रेजीमेण्ट मेजर जनरल लॉयट के आधीन थी।

इस्लाम की बहावी नामक कट्टर जाति के केन्द्र पटना में इस समय गुप्त रूप से क्रान्तिकारी गतिविधियाँ अपने चरम पर थी। गुप्त समितियों का जाल पटना ही नहीं व बाकी शहरों में बिछा रहा व अन्य प्रान्तों में सम्पर्क भी साधा हुआ था। पुलिस भी इनके साथ होने के कारण गुप्त समितियों का काम काफी जोर-शोर से चल रहा था तथा धनाड्यों ने अपने खजाने खोल देने से क्रान्ति के लिये समितियों के पास अपार धन भी इकट्ठा था तथा रात्रि में गश्त करने वाले अंग्रेज सैनिकों की हत्या का आयोजन भी साथ-साथ चल रहा था। इसी बीच मेरठ से समाचार आने से पटना के कमिश्नर टेलर ने रेटरे के आधीन दो-ढाई सौ सिक्ख सैनिक पटना बुलवाये तथा क्रान्ति का दमन करने हेतु सर्वप्रथम पुलिस जमादार वारिस अली को पकड़कर क्रान्ति में लिप्त होने के कारण फाँसी पर चढ़ा दिया गया। तीन अन्य मौलवियों को जिनका पटना पर बहुत असर था धोखे से उन्हें नजरबन्द कर दिया गया। सारे पटना के नागरिकों को निशस्त्र कर दिया गया तथा रात्रि में नौ बजे के बाद घरों से बाहर निकलने पर पाबंदी लगा दी। इस दमन का चरम तब हुआ जब पीर अली नामक एक राष्ट्र भक्त जो पुस्तक विक्रेता होने के साथ ही क्रान्ति में भरपूर सहयोग कर रहा था तथा उसने समितियों के धन से आगामी क्रान्ति के लिये वैतनिक नौकर रखे हुये थे उसने ३-७-१८५७ को करीब २०० क्रान्तिकारियों को लेकर एक चर्च पर हमला कर दिया। इससे लायर नाम का गोरा मारा गया। वे क्रान्तिकारी रेटरे व उसके सिक्ख सैनिकों द्वारा जोरदार हमला किये जाने पर पकड़ लिये गये तथा पीर अली को बंदी बनाकर फाँसी दे दी गयी।

उसकी मृत्यु का समाचार सुनकर दानापुर की तीनों नेटिव रेजीमेण्टों ने २५ जुलाई को विद्रोह कर दिया तथा शोण नदी की ओर चल पड़े। उनका लक्ष्य शोण नदी को पार कर आरा क्षेत्र के साहाबाद तहसील में स्थित जगदीशपुर के ८० वर्षीय वृद्ध युवा कुँवर सिंह का नेतृत्व प्राप्त कर क्रान्ति को आगे बढ़ाने का था। कुँवर सिंह के राजपूत पूर्वज अंग्रेजों द्वारा सारे क्षेत्र को अपने आधीन करने के बाद भी अपनी छोटी सी रियासत जगदीशपुर को सुरक्षित व स्वतन्त्र रखने में सफल रहे तथा इसी परम्परा का

प्रभावशाली ढंग से कुंवर सिंह निर्वाह कर रहा था। छापामार युद्ध में पटू व रणांगण में बदलती परिस्थितियों में भी सही व त्वरित निर्णय लेने में निपुण कुँवर सिंह के पास ये तीनों ही रेजीमेण्टों के सिपाही जब पहुँचे तो क्रान्ति का बिगुल बजना ही था।

जगदीशपुर से आरा पहुँचकर सिपाहियों ने मुख्यालय को लूटकर खजाना लूट लिया तथा छोटे से परकोटे को घेर लिया। जिसमें २५ ब्रिटिश व ५० सिक्ख सैनिक सुरक्षित रूप से युद्ध कर रहे थे। इस परकोटे को घेरकर इसे बस में करने के प्रयास चल ही रहे थे कि इस घेरे को तोड़ने के लिये दानापुर से कैप्टिन डनवार जैसे साहसी अफसर के नेतृत्व में करीब ४१५ गोरे व नेटिव सैनिकों की सेना शोण नदी पार कर चुकी है ऐसी सूचना आई। कुँवर सिंह ने तत्काल घात लगाकर छापामार युद्ध के लिये अपनी सेना को तैयार कर वहाँ के क्षेत्र से पूर्ण परिचित होने के कारण प्रहार की दृष्टि से उपयुक्त स्थानों पर अपने सैनिकों को काली नदी के क्षेत्र में तैनात कर दिया तथा डनवार व उसकी सेना की प्रतीक्षा करनी प्रारम्भ कर दी। शोण नदी पार करते-करते तथा आगे चलते-चलते मध्य रात्रि हो चुकी थी पर डनवार को अभी भी शत्रु का पता नहीं चल पा रहा था कि अचानक उसकी टोली पर सब ओर से गोलियों की ऐसी भीषण वर्षा होने लगी कि पहले ही झटके में तो डनवार मारा गया तथा अपने आपको बचाते व भागते सैनिक जब तक पुनः नदी तक पहुँचे तब तक ४१५ में से मात्र ४०-५० ही बचे थे। वे भी नदी पार करने में अक्षम क्योंकि कुँवर सिंह ने सारी नावें खोल दी थीं या जला दी थी। किसी प्रकार दो नावों पर सवार होकर यह पूरी तरह पराजित सेना वापस दानापुर पहुँची। यह सामना २९ व ३० जुलाई को हुआ।

आरा का घेरा बदस्तूर चालू था तथा उसे तोड़ने के लिये मेजर आयर के नेतृत्व में सेना वहाँ आ धमकी। तनिक भी विश्राम किये बिना कुंवर सिंह उनसे टक्कर लेने बढ़ा तथा कुछ समय बाद जब उसे लगा कि यह असमान लड़ाई है और इसमें पराजय निश्चित है तो उसने तुरन्त पीछे लौटकर जगदीशपुर महल से खजाना व शस्त्र लेकर सैनिकों सहित वहाँ के जंगलों में अन्तर्ध्यान हो गया। आयर भी १४ अगस्त को जगदीशपुर पहुँच गया। लूटपाट काफी की पर असली सिंह अब भी उनसे आगे टक्कर लेने के लिये भविष्य की योजनाएँ जगदीशपुर के जंगलों में बना रहा था।

लखनऊ की क्रान्ति, नाना साहब का पेंच तथा हैवलॉक की परेशानी

३० जून को अंग्रेजी हुकूमत का नामोनिशान सारे अवध से हटकर मात्र रेजीडेन्सी तक सीमित हो गया। उस समय वहाँ के परिकोटे बेहद दयनीय स्थिति में थे। परन्तु इस अवसर का लाभ उठाकर रेजीडेन्सी पर जोर का हमला करने के अवसर का लाभ उठाने योग्य एकता व अनुशासन उन विद्रोहियों में नहीं था।

एकता, अनुशासन, लक्ष्य की एकाग्रता ऐसे आवश्यक गुण हैं जो नेतृत्व को पूरी समग्रता के साथ आगे बढ़ाने की व विजयी होने की प्रेरणा देते हैं। अवध में तथा विशेषकर लखनऊ में एकत्रित सारे विद्रोहियों को यदि कोई एक शक्ति एक सूत्र में पिरोए हुये थी तो वह थी उनकी स्वतन्त्रता प्राप्ति की उद्दात्त चेतना। जिसको उन्होंने आमरण या अन्तिम समय तक भी नहीं छोड़ा। पर इसके अतिरिक्त युद्ध में जीतने के लिये एकता, अनुशासन, आज्ञापालन का उनमें नितान्त अभाव था। ऐसे सैनिकों के जमघट में यदि एक प्रभावशाली नेतृत्व न उभर पाये तो स्थिति कैसी होगी इसकी सहज ही कल्पना की जा सकती है। एक दमनकारी राज्य व्यवस्था के नियमों को चीर कर रख देना क्रान्तिकारियों का पहला लक्षण होता है पर उसके पश्चात् स्वराज्य मिलने पर तत्काल बहुमत से जो राज्य व्यवस्था व उपयुक्त नियमों आदि का निर्माण हो उसे सारे क्रान्तिकारी वन्दनीय मानकर उसका पूरी निष्ठा से पालन करें। तभी इस क्रान्ति महायज्ञ को सफलता की अन्तिम सीढ़ी तक ले जाना सम्भव है।

परन्तु यदि स्वराज्य में स्थापित नियमों को भी पहले ही प्रकार से चीरने का चस्का क्रान्तिकारियों में लगा रहने पर सारा संगठन दो प्रकार के समूहों की खिचड़ी बनकर रह जाता है। एक वह जो राष्ट्र की क्रान्ति को वन्दनीय मान उन नियमों का पालन करता है तथा अनुशासन में रहता है और दूसरा, इसके ठीक उल्टा करके अनुशासनहीन व संगठन की परवाह न करके स्वेच्छाचारी बन जाता है। लखनऊ में उन दिनों इन दोनों ही समूहों का एक ढीला मिश्रण था जिसमें दुर्भाग्य से स्वेच्छाचारी अनुशासनहीन सैनिकों का जमावड़ा अधिक था जिन्होंने युद्ध में भी भीरुता भी दिखाई व जो बचे थे उन सैनिकों ने वीरता के अद्वितीय उदाहरण प्रस्तुत कर माँ भारती का गौरव बढ़ाया।

इन दोनों ही समूहों के मिश्रण से हमारा लखनऊ का अगला अभियान प्रारम्भ होना था। याद रहे कि ये अनुशासनहीन सैनिक भी उतने ही राष्ट्रभक्त थे जितने दूसरे क्योंकि स्वतन्त्रता प्राप्ति की चेतना की माला में तो ये सब गुथे रहे पर यौद्धिक अभियानों में उपर्युक्त कारणों से इन्हें काफी हानि उठानी पड़ी। इस अदम्य वीरता व भीरुता के घालमेल से बने सैनिक संगठन में प्रथम श्रेणी के श्रीयुक्त सैनिक कम थे पर उन्होंने पूरे तीन वर्ष तक जमकर युद्ध किया तथा उस समय तक हथियार नहीं डाले जब तक कि युद्ध जारी रखने के सारे ही रास्ते ही बन्द नहीं हो गये। यह घालमेल सारे ही उत्तर भारत के क्रान्तिकारियों की सैनिक संरचना का प्रतिनिधित्व करता है। विभिन्न क्षेत्रों राज्यों रियासतों से आकर एक स्थान पर एकत्रित सैनिकों व नागरिकों की ये टुकड़ियाँ एक समर्थ नेतृत्व के अभाव में आपस में बिल्कुल लयबद्ध न हो सकी। अतः प्रत्येक मोर्चों पर जहाँ भी जिस भी स्थान पर ये लड़े हों अन्ततोगत्वा पराजय का ही सामना करना पड़ा। पर यह मात्र उनके कर्त्तव्य का एक पहलू है। दूसरी ओर उनकी प्रखर राष्ट्र भक्ति, अंग्रेजों के प्रति असीम घृणा व स्वतन्त्रता प्राप्ति हेतु उत्पन्न उद्दात्त चेतना का उनमें कभी भी अभाव नहीं रहा। इन विभिन्न प्रकारों से युक्त इस सैनिक, नागरिक समूह के कार्यकलाप बहुत सी कमियों के बाद भी अभिनन्दनीय है। अस्तु।

इस प्रकार इन विभिन्न मानसिक संरचनाओं से युक्त स्वतन्त्रता संग्राम के सैनिकों को ऊपर लिखित वर्णन क्रम की पृष्ठभूमि में हम लखनऊ में चल रहे घटनाक्रम को आगे बढ़ाते हैं। चिनहट युद्ध के बाद मची अराजकता अव्यवस्था आदि समाप्त किये बिना युद्ध कार्य के लिये आगे कोई प्रयास नहीं कर पाने के कारण उस हफ्ते में अंग्रेजों को कोट की मजबूती का बन्दोबस्त करने देने का समय देकर विद्रोही पहले लखनऊ की राज्य रचना में लगे। सर्वसम्मति से वाजिद अली शाह के अल्पवय पुत्र वर्जिस कादर के स्थान पर राजमाता बेगम हजरत महल को राज्य के सारे अधिकार दे दिये गये तथा इस पराकाष्ठा की कर्त्तव्यवती, स्वतन्त्रता के रस में सरावोर महिला ने भिन्न-भिन्न स्थानों से दौड़ते आये स्वतन्त्रता सैनानियों व कर्मठ लोगों को व भिन्न-भिन्न योग्य पुरुषों को न्याय, वसूली, लश्कर, पुलिस आदि अधिकारी नियुक्त कर दिया तथा अवध में अंग्रेजी सत्ता की समाप्ति की घोषणा भी कर दी गयी और

इसे राजनैतिक संगठनत्व प्राप्त हो गया।

स्वतन्त्रता सैनिकों की पूर्व वर्णित मन:स्थिति के कारण विद्रोहियों का एक अच्छा-खासा भाग इन पदाधिकारियों द्वारा जारी आदेशों की अवहेलना करता रहता था। पर कुछ अनुशासनबद्ध विद्रोहियों द्वारा इनका पालन भी किया जाता था। इस प्रकार इन दोनों ही प्रकार के विद्रोहियों से युक्त जमघट के नेतृत्व ने २० जुलाई को रेजीडेन्सी पर आक्रमण करने की योजना बनाई। इसी बीच परकोटे की मरम्मत आदि के कार्य पूर्ण हो चुका था।

विद्रोहियों की तोपों की मार व रेजीडेन्सी के पास लगाये गये बारूद के धमाके के साथ ही यह सेना चारों ओर से आक्रमण के लिये उछली तथा रेडन, इन्नेस के घरों पर व अंग्रेजों की कानपुर बैटरी पर भी आक्रमण प्रारम्भ हो गया। सेना में कानपुर बैटरी पर हमला करने वाले भाग का नायक बड़ी वीरता के साथ हमला करते हुये व साथियों को उत्साहित करते हुये आगे बढ़कर तोप की खन्दक में कूद गया तथा वीरगति को प्राप्त हो गया पर यह देखते ही उसके साथी बजाय आगे बढ़कर हमला करने के भीरुता दिखाते हुये पीछे हट गये। यही क्रम सीढ़ियों से तोपखाने तक पहुँचने वाली टोली के साथ भी हुआ। यह नायक तो मारा गया पर बाकी सैनिक पीछे हट गये। वीरता व भीरुता के ऐसे मंजर बार-बार देखे गये। इस प्रकार उस दिन पहला हमला विफल हो गया। बाद के दिनों में रेजीडेन्सी को बारूद से उड़ाने के प्रयास जोर-शोर से चल रहे थे पर सफलता नहीं मिली। हाँ तोपों की मार व भूतपूर्व नवाब ने एक अफ्रीकन खोजा जिसका नाम अंग्रेजों ने 'ओथेलो' रखा हुआ था की सटीक निशानेबाजी के कारण रेजीडेन्सी में सैनिकों व निवासियों की संख्या दिन-प्रतिदिन घटती जा रही थी।

इस गोलाबारी में रेजीडेन्सी के दो कमिश्नर यथा सर हैनरी लॉरेन्स व मेजर वेक्स मारे जा चुके थे तथा तीसरा ब्रिगेडियर इन्गलिस नियुक्त हो चुका था। एवं रेजीडेन्सी के लोग निराश तो नहीं थे पर हताश जरूर थे। २५ जुलाई को गुप्तचर सूत्रों से लखनऊ खबर पहुँची की कि हैवलॉक २५ जुलाई को गंगा पार कर गया है तथा अगले चार-पाँच दिन में रेजीडेन्सी को मुक्त करा लिया जायेगा। अंग्रेजों को मिली यह प्रसन्नता कितनी अस्थाई थी यह आगे पता लग जायेगा। २६ जुलाई १८५७ को एक बार फिर

विद्रोहियों ने रेजीडेन्सी पर जोरदार हमला किया तथा कानपुर बैटरी, जोहान्स हाऊस, वेराम कोठी आदि स्थानों पर जोरदार प्रहार होने लगे तथा बारूदी सुरंग में इतना बढ़िया धमाका किया कि दीवार में बहुत बड़ी सुरंग बन गयी। जिसमें पूरी रेजीमेण्ट जा सके पर सुरंग को पार कर शत्रु प्रहार के बीच अन्दर जाने की वीरता किसी ने नहीं दिखाई। २ बजे तक कुछ नेटिव वीरों ने गोरों से लड़ाई की तथा अंग्रेजों की ओर से नेटिवों ने शौर्य अनुशासन व मरण तुच्छता का कमाल दिखाया। इन विद्रोही वीरों ने गोरों के प्रहार की परवाह न करके उन पर सीधा आक्रमण कर दिया तथा बैनट लेकर आपसी घमासन शुरू हो गया। परिणाम तो निश्चित था पर फिर भी अपनी वीरता व अदम्य साहस का परिचय देकर सबको चौकाने वाले वीरगति प्राप्त ये अनाम वीर भारतीयों के हृदयों में हमेशा जीवित रहेंगे।

२८ जुलाई को एक बार फिर विद्रोहियों ने जबर्दस्त आक्रमण किया तथा पुनः एक बार बारूद से दीवार में सुरंग बनाई आगे इन्हीं विद्रोहियों की भीरुता का बखान करते हुये इतिहासकार नेल्सन लिखता है—''शत्रुओं ने रास्ता बनाते हुये अत्यन्त आवेश से इसका लाभ लेना प्रारम्भ किया। उनमें से एक अतिशूर अधिकारी ने इस भगदड़ के हिस्से में तुरन्त छलांग लगा दी और अपनी तलवार घुमाते हुये अपने अनुयाईयों को 'चलो-चलो' का आह्वान करने लगा। इससे पूर्व ही एक गोली ने उसे नीचे गिरा दिया तब दूसरा आगे आया तथा वह भी वीरगति को प्राप्त हो गया। यह देखकर बाकी सिपाही दुबक कर पीछे हट गये।''

बार-बार होने वाले आक्रमण व विद्रोहियों की तोपों, बन्दूकों की अखण्ड मार के आगे अंग्रेजों को अपने राजनिष्ठ नेटिवों की भारी सहायता होते हुये भी टिके रहना असहनीय होता जा रहा है कि उन्हें हैवलॉक का एक और सन्देश मिला कि वह अगले २५ दिन तक उन्हें छुड़ाने नहीं आ सकता। ५ दिन में ही रेजीडेन्सी को मुक्त करने वाले हैवलॉक को अब २५ दिन क्यों लग रहे हैं यह जानने के लिये हम हैवलॉक के अभियान की चर्चा करते हैं।

हैवलॉक २५ जुलाई को गंगा पार तो कर गया पर वह नहीं जानता था कि उसकी डेढ़ हजार की गोरी सेना व १३ तोपों का सामना व जमकर पूरी ताकत से प्रतिरोध करने के लिये मार्ग के चप्पे-चप्पे पर विद्रोही नागरिक व जमींदार आदि खड़े थे तथा २५

जुलाई से १२ अगस्त के बीच जब उसे मजबूर होकर कानपुर वापिस आना पड़ा वह उन्नाव से आगे नहीं बढ़ पाया था। रास्ते में स्थान-स्थान पर जमींदार ताल्लुकेदार आदि अपने-अपने सैनिकों की टुकड़ियों द्वारा उस पर आक्रमण करते व भाग जाते। इसी प्रकार हैवलॉक भी तीन-चार बार उन्नाव तक बढ़ा तथा पुनः-पुनः मंगल वन (गंगा पार के पास का इलाका) तक वापिस आ गया। इस अभियान में उसके ६००-७०० सैनिक मारे जा चुके थे।

इसी बीच हैवलॉक के गंगा पार करते ही नाना साहब पुनः कानपुर के पास अपनी सेना सहित आ गया तथा धीरे-धीरे ११ अगस्त तक उसके पास सागर व ग्वालियर के विद्रोही व अन्य स्वयं सेवकों की टोलियाँ पहुँचकर उसका सैन्य बल बढ़ाती रही तथा नाना ने आक्रमण कर ब्रह्मवर्त को पुनः अपने अधिकार में ले लिया। जनरल नील के पास इतनी शक्ति न होने के कारण उसने हैवलॉक से सहायता के लिये सूचना भेजी। ऐसी विषम परिस्थिति में हैवलॉक १२ अगस्त को उल्टे पैर गंगा पार कर कानपुर बचाने वापिस आ गया। इस वापिसी का बहुत ही अनुकूल प्रभाव अवध-वासियों पर पड़ा। इन्नेस लिखता है—''इस पीछे लौटने का निश्चित परिणाम निकला'' अवध से फिरंगी शासन समाप्त होने की यह अंग्रेजों द्वारा दी गयी स्वीकृति है—ऐसा कहते हुये वहाँ के ताल्लुकेदारों ने लखनऊ दरबार की प्रस्थापित राज्य सत्ता का अधिकार मान लिया। उनके आवेदन माने जाने लगे। आज तक की निरंकुशता समाप्त होने लगी और लखनऊ की माँग के अनुसार भिन्न-भिन्न राजा अपनी सेनायें उधर युद्धभूमि की ओर भेजने लगे।

उधर हैवलॉक व नाना साहब की सेना के मध्य भीषण युद्ध हुआ, 'ब्रह्मवर्त के लिये' तथा अदम्य वीरता प्रदर्शित करने के बाद भी हैवलॉक जैसे कुशल युद्ध विशारद के आगे एक बार पुनः नाना साहब पराजित होकर गंगा पार कर फतेहपुर चले गये। इस प्रकार एक बार पुनः कानपुर व ब्रह्मवर्त को नाना साहब से मुक्त कराने पर भी विद्रोहियों के महासमुद्र के चारों ओर से घिरे यथा अवध, कालपी, कन्नौज आदि। कानपुर में स्थित हैवलॉक को अपनी असहाय अवस्था व दयनीयता का अच्छी तरह आभास हो चुका था। अतः उसने अधिक बल के लिये कलकत्ता को गुहार लगाई, वरना कानपुर भी हाथ से जाने का खतरा व अंग्रेजी सेना

को एक बार पुनः इलाहाबाद की ओर प्रस्थान करना अवश्यम्भावी था। उत्तर में लॉर्ड केनिंग ने सहायता तो भेजी पर लखनऊ अभियान से हैवलॉक को हटाकर एक अति अनुभवी जनरल आउट्रम को नियुक्त कर दिया जो १५ सितम्बर को कानपुर पहुँच गया। पर हैवलॉक के अनन्य योगदान का आदर करते हुये उसने लखनऊ अभियान की कमान हैवलॉक के पास ही रहने दी।

इस प्रकार नई ऊर्जा सैन्यबल व आउट्रम का आशीर्वाद प्राप्त कर जोश से भरा हैवलॉक एक बार पुनः २० सितम्बर को गंगा पार कर गया। उसके साथ ढ़ाई हजार से अधिक गोरी सेना तथा देशद्रोही सिक्खों की सेना सहित करीब साढ़े तीन हजार सैनिक चुने घुड़सवार, उत्तम तोपखाना, नील, आयर, आउट्रम जैसे वीर सैनिक भी थे। कानपुर से लखनऊ के बीच जो भी मिला उसे ध्वस्त करती व रास्ते के गाँवों को जलाते हुये व विद्रोहियों के प्रतिरोध को आगे धकेलते हुये यह सेना २३ सितम्बर को लखनऊ के आलम बाग जा पहुँची। दोनों ही ओर की सेनाओं में वहीं रात्रि बिताने का निश्चय किया। इसी बीच देहली के पतन की खबरे भी आउट्रम तक पहुँच गयी।

रात्रि में भी विद्रोहियों ने पुनः मारामारी शुरू कर दी तथा गोरे सैनिकों ने भी देहली विजय की खुशी में दुगने उत्साह से युद्ध किया। २४ सितम्बर को अपनी सेना को नये सिरे से सृजित कर हैवलॉक ने २५ सितम्बर को सेना को रेजीडेन्सी की ओर बढ़ने के लिये निर्देश दिये। विद्रोहियों के भीषण तोपों की मार को झेलते हुये वे गोरे सैनिक चार बाग के पास एक पुल पर आकर विद्रोहियों द्वारा पूरी तरह रोक दिये गये। सारे प्रयासों के असफल होने पर अन्त में हैवलॉक के पुत्र जूनियर हैवलॉक के नेतृत्व में घुड़सवारों द्वारा उस पुल पर भीषण आक्रमण कर सारे पुल को जीतकर गोरी सेना लखनऊ में घुस गयी। हैवलॉक व नील शीघ्र ही आगे बढ़े पर उनका तोपखाना पीछे रहने के कारण थोड़ी सी प्रतीक्षा के लिये रुके ही थे कि एक देश भक्त ने पास से आकर नील को गोली मार दी। तथा खुद भी वहाँ गोरों द्वारा मार डाला गया। जनरल नील की मृत्यु के साथ-साथ गोरी फौज का यह काफिला अन्ततः रेजीडेन्सी जा पहुँची जहाँ सारी सेना का स्वागत किया गया। ८७ दिन बाद पहुँची इस सहायता के दौरान इस अभियान में रेजीडेन्सी के करीब ७०० सैनिक मारे गये, ५०० घायल व

स्वस्थ गोरे तथा ४०० स्वस्थ नेटिव जीवित थे। हैवलॉक की सेना के करीब ७५० सैनिक मारे गये। इतने शूरों का रक्त देकर हैवलॉक रेजीडेन्सी के अन्दर पहुँच गया।

गोरे इस भ्रम में रहे कि उनके पहुँचते ही विद्रोही लखनऊ छोड़ देंगे पर ऐसा नहीं हुआ। उल्टे हैवलॉक के रेजीडेन्सी में पहुँचते ही विद्रोहियों ने सारी रेजीडेन्सी को एक बार पुनः घेर लिया तथा सारे ही गोरों की सेना रेजीडेन्सी में एक बार पुनः बन्द हो गयी। स्वतन्त्रता सेनानी आखिरी दिन तक लड़ेंगे नतीजा चाहे जो हो सिद्धान्त का अक्षरशः पालन कर रहे थे।

इस प्रकार अवध क्षेत्र व कानपुर आदि स्थानों पर अंग्रेजी सेना पर जबर्दस्त दबाव पड़ने लगा तथा यहाँ पर एक शून्य जैसी स्थिति पैदा हो गयी। अतः इस फँसे पेंच से अवध क्षेत्र को उबारने के लिये कमाण्डर इन चीफ सर कॉलिन कैम्पबैल ने करीब २ माह कलकत्ता में ही सैनिक तैयारी करके कानपुर जाने का निश्चय किया साथ ही उन्होंने नेवल ब्रिगेड नामक नौ सेना को कर्नल पॉवेल व कैप्टेन विलियम पील के नेतृत्व में जल मार्ग से कानपुर की ओर भेज दिया तथा स्वयं २७ अक्टूबर को कलकत्ता से कानपुर के लिये निकल पड़ा। कलकत्ता व कानपुर के बीच सारे बिहार का इलाका उन दिनों छापामार युद्ध पद्धति में राजा कुँवर सिंह के द्वारा ट्रेनिंग पाये गये अनगिनत दस्तों के आतंक व डर से परेशान था। अंग्रेजी पौज पर सुविधानुसार हमला कर यह तुरन्त भाग जाते थे। अतः रास्ता अंग्रेजों के लिये जोखिम भरा था। इसी मार्ग पर एक छापामार टुकड़ी ने काजवा नदी से गुजरते हुये नौ सेना के नायक कर्नल पॉवेल को मार डाला तथा एक अन्य टुकड़ी ने उस काफिले को पकड़ लिया जिसमें कॉलिन कैम्पवैल सफर कर रहा था। किसी भी प्रकार वह पीछे से जान बचाकर भागा व ३ नवम्बर को कानपुर पहुँच गया। इस बीच ब्रिगेडियर ग्रेट हैड के नेतृत्व में देहली युद्ध से निवृत्त हुई सेना सारे रास्ते गाँव के गांव जलाती व निरीह नागरिकों की हत्या करती हुयी कानपुर पहुँच गयी तथा वहाँ पहले पहुँची नौ सेना तथा ५००० गोरी सेना सैकड़ों ऊँट व अन्य शस्त्रास्त्र लेकर गंगा पार उतर गयी। व मारधाड़ करती हुयी आलम बाग पहुँच गयी तथा ९ नवम्बर को सर कॉलेन भी आलम बाग पहुँच गया। कानपुर में उसने जनरल विण्डहम के नेतृत्व में चुनी हुयी सिक्ख सेना व तोपों को छोड़ दिया। कोलेन

ने युद्ध क्षेत्र की आवश्यकतानुसार सेना का संयोजन कर १४ नवम्बर को आक्रमण का आदेश दिया तथा गुप्तचरों के माध्यम से रेजीडेन्सी खबर भेज दी कि रेजीडेन्सी के सैनिक शत्रु को बाहर की ओर से दबाकर निकलेंगे तथा बाहर की ओर से कॉलन विद्रोहियों पर दबाव डालेंगे। अंग्रेजी सेना के अधिकतर नामवर योद्धा तथा हैवलॉक, आउट्रम, पील, ग्रेट हैड, हडसन, होप ग्राण्ट, आयर व स्वयं सर कॉलिन। ताजादम यूरोपीयन हाईलैण्डर्स किसी भी साहस से गले मिलने को आतुर आउट्रम के यूरोपियन व राज्यनिष्ठ पंजाबी जवान व सिक्खों की इस चतुरंगिणी सेना ने १४ नवम्बर को लखनऊ की ओर विद्रोहियों के प्रतिरोध को दबाते हुये आगे बढ़ना प्रारम्भ किया तथा शाम तक दिलकुश बाग तक पहुँच गये।

१६ नवम्बर को आक्रमण का आदेश देते ही सेना सिकन्दर बाग पर टूट पड़ी। यहाँ इस स्थान पर करीब २००० मृत्यु के वरण को व्याकुल प्रखर राष्ट्रभक्त सैनिकों ने अपने जीते जी ऐसी वीरता से युद्ध किया कि वहाँ रक्त की नदियाँ बहने लगी व अंग्रेजी सैनिकों के अतिरिक्त उनके दो अफसर कूपर व लेफ्टीनेण्ट भी मारे गये। मैल्सन इस युद्ध के बारे में कहता है—भयानक रक्तपात व घमासान मारकाट चली। निराशा के अतुल शौर्य से विद्रोही लड़ते रहे। अंग्रेजी सेना ने उस स्थान के अन्दर का भाग भी कब्जा लिया। फिर भी लड़ाई का अन्त नहीं। हर कमरा, हर सीढ़ी हर बुर्ज, हर कोना, भारी जिद के साथ लड़ता रहा। शरण शब्द का उच्चारण किसी ने नहीं किया, किसी ने सुना नहीं। जब वह सारा स्थान अंग्रेजों ने जीत लिया तब ध्यान में आया कि इस बाग में करीब दो हजार शव विद्रोहियों के पड़े हैं।

ऐसी वीरतापूर्ण लड़ाई दिलकुश बाग, आलमबाग, शाहनजीफ आदि सारे स्थानों पर जब तक रक्त की नदियाँ नहीं बह जाती तब तक विद्रोही भीषण युद्ध करते रहे व निश्चय ही गोरों की उत्तम व्यवस्थित सेना के आगे उनकी वीरता उन्हें विजय प्राप्त नहीं करा पाई और १७, १८, १९ से २३ नवम्बर तक युद्ध करते-करते गोरों की दोनों सेनायें घेरा तोड़ते हुये एक दूसरे से मिल गई तथा सारा लखनऊ शहर रक्त के समुद्र में तैरने लगा। फिर भी यह बलिदानी सैनिक लखनऊ छोड़ने के लिये तैयार नहीं हुये व लखनऊ में ही डटे रहकर अपनी दृढ़ता का परिचय देते रहे। तथा लड़ाई कब पुनः

शुरू हो जाये यह पूरी तरह अनिश्चित था।

कॉलेन ने सेना को व्यवस्थित कर भीषण मारकाट में बची लगभग ४००० सेना व २५ तोपें आउट्रम के नेतृत्व दिलखुश बाग में रख दी इस बीच २४ नवम्बर को हैवलॉक अति मानसिक तनाव के कारण मर गया। लखनऊ में कॉलेन को पता लगा कि तांत्याटोपे कानपुर में कुछ गड़बड़ कर रहा है। अतः वह लखनऊ आउट्रम के हवाले कर शीघ्र ही अतिवेग से कानपुर की ओर पलटा क्योंकि तांत्या का मतलब वह अच्छी तरह जानता था।

तांत्या टोपे : कानपुर का अन्तिम युद्ध

नाना साहब हैवलॉक से कानपुर में पराजित होकर सपरिवार गंगा पार कर तांत्या आदि के साथ फतेहगढ़ अपने परम मित्र गोपाल सिंह के घर ठहरकर अपनी तितर-बितर हुई सेना को स्वयं संगठित करने में लग गये। उनके साथ उनके छोटे भाई बाला साहब व भतीजे राव साहब भी थे। इस बीच ४२वीं नेटिव रेजीमेण्ट विद्रोह कर नाना साहब के ध्वज तले शिवराज पुर तक आ गई तथा उसे फतेहगढ़ लाने के लिये तांत्याटोपे को भेजा गया। इस सेना के संगठित होते ही नाना साहब ने एक बार पुनः कानपुर पर हमला कर बिठूर को कब्जा लिया तथा हैवलॉक को जबरन अवध से कानपुर खींच लिया। पुनः हैवलॉक से पराजित होने पर वह फतेहगढ़ वापिस आ गये। क्रान्ति की आगे की प्रक्रिया में नाना साहब ने तांत्या को ग्वालियर में भेजा तथा वहाँ नेटिव सैनिकों से विद्रोह कराकर मुरार छावनी की पैदल व घुड़सवार सेना एवं तोपखाना आदि को नाना के ध्वज तले लेकर तांत्या टोपे पुनः कालपी वापिस आ गये। कालपी में सेना की व्यवस्था के लिये बाला साहब को भेज दिया गया तथा वहाँ उपयुक्त सेना रखकर तांत्या कानपुर में शेष सेना के साथ एक बार पुनः गोरों से टक्कर लेने की योजना बनाने लगे। कानपुर की रक्षा जनरल विण्डहम के आधीन कर सर कॉलिन अवध में ९ नवम्बर को प्रवेश कर चुका था। तांत्या टोपे ने अवध के समर के सम्बन्ध में आवश्यक जानकारी जुटाकर तथा यह अनुमान करके कि कॉलिन करीब एक माह अवध में उलझा रहेगा तांत्या ने यमुना पार कर जालौन में सारा खजाना आदि रख उसकी सुरक्षा के लिये तीन हजार सैनिक तथा बीस तोपें रखकर अपनी बाकी सेना के साथ १९ नवम्बर तक

शिवराजपुर तक आ गया तथा सारे क्षेत्र की सुरक्षा की समुचित व्यवस्था कर अंग्रेजों की रसद का मुख्य रास्ता बन्द कर दिया। तांत्या की सेना में हाल में विद्रोह करके आस-पास के बाजारू लोगों के साथ आये हुये असंगठित लश्करी सिपाही, संस्थापित विजयी आंग्ल सेना से लड़ने जा रहे थे। स्वतन्त्रता की चेतना, दूसरे सारे लाभ विपक्ष की ओर होने पर भी कैसे लड़ती है यही तांत्या के नेतृत्व का असाधारण पक्ष था।

जनरल विण्डहम से तांत्या के दावपेंच छिपे नहीं रहे। अतः उसने कर्थ्यू के नेतृत्व में एक सेना दस्ता कालपी भेजकर बाजू के पुल की नहर तक हमला कर दिया। विद्रोही सेना तुरन्त हरकत में आकर २५ नवम्बर को सुखण्डी पहुँचकर पाण्डी नदी तक आकर भिड़ गयी। विण्डहम भी २६ तारीख को प्रातः ही विद्रोहियों पर पिल पड़ा। परन्तु सीधे हमले के अनुभूत प्रयोग करने के बाद भी उसकी सेना तांत्या के घुड़सवारों के दस्ते के छापामार प्रकार की युद्ध पद्धति से विण्डहम को हर ओर से घेरते हुये पीछे धकेलने लगे तथा पीछे कानपुर के दरवाजे पर आ धमके। इतिहासकार मैल्सन लिखता है—परन्तु विद्रोहियों का नेता तांत्या टोपे कोई पागल आदमी नहीं था। जनरल विण्डहम ने जो आघात किया उससे डरने की बात तो दूर उल्टे अंग्रेजी सेना का मर्म उस चतुर मराठे की नजर में आ गया। विण्डहम की आन्तरिक स्थिति किसी खुली पुस्तक की तरह तांत्या टोपे ने पढ़ ली। और असल सेना की मूल चतुराई से उस स्थिति का पूरा लाभ लेने का निश्चय किया।

अगले दिन विण्डहम को जरा भी आराम न देते हुये तांत्या ने अपनी सेना को अर्धचन्द्राकार व्यूह रचकर गोरों पर तोपों से भयानक आक्रमण करा दिया। कर्थ्यू की तोपें व सेना तो हारने ही लगी पर अंग्रेजों की बाकी सेना को सामने व बाजू से घेरते हुये अपने भीषण प्रहार से विण्डहम को चकित करते हुये तांत्या उस दिन सारी गोरी सेना को धकेलता हुआ इतना हावी हुआ कि विण्डहम तक के पैर उखड़ गये व अंग्रेजी सेना पीछे हटने लगी तथा उनमें भगदड़ मच गयी। पूरी तरह हारी सेना का काफी शस्त्रास्त्र आदि सामग्री तम्बू आदि भी तांत्या के हाथ लगे। यह तांत्या की उस दिन पूर्ण जीत थी। इतिहासकार मानते हैं कि यदि इस सेनापति की सेना भी उस जैसी ही होती तो इस मराठे ने उसी दिन जनरल विण्डहम की सारी सेना काट डाली होती।

इन सफल आक्रमणों के बीच ही तांत्या को सर कॉलेन के कानपुर वापिस लौटने की सूचना मिल चुकी थी। तब भी एक ओर कोलिन व दूसरी ओर विण्डहम की सेना के मध्य में फँसा यह नर व्याघ्र अटल खड़ा था। २५ नवम्बर को विण्डहम ने एक बार तांत्या पर पुनः आक्रमण किया तथा जानी-पहचानी एशिया के सिपाहियों को हराने का अचूक नुस्खा अपनाकर तांत्या की सेना पर सीधा हमला कर दिया। पर इस बार भी सामने से होती विजय के मद में विण्डहम अपनी दायीं बाजू पर हो रही अप्रत्याशित मार का अन्दाजा ही नहीं लगा सका। तथा उसके शेष सिपाही व अफसर यथा कैप्टिन मर्फी, मेजर स्टार्लिंग, लेफ्टीनेण्ट केन, ब्रिगेडियर मिल्सन, कैप्टिन माकरी, लेफ्टिनेण्ट रिवन आदि सेना सहित काट डाले गये और शाम होते ही तांत्या ने तीसरी बार विण्डहम को परास्त करते हुये पीछे धकेल दिया। यह उसकी तीसरी जीत थी। इसी बीच सर कौलिन कैम्पवेल कानपुर पहुँच गया तथा ३० नवम्बर तक उसकी सेना कानपुर में आ गयी। १ से ५ दिसम्बर तक तांत्या की सेना छिटपुट हमले करती रही तथा सर कॉलिन अपनी सारी सेना को नये सिरे से संगठित व व्यूह बद्ध करता रहा तथा ६ दिसम्बर को उसने तांत्या पर प्रहार करने की योजना बनाई। तांत्या के पास कोई नौ-दस हजार सैनिक, उसके बायें बाजू में नाना साहब, दायीं ओर ग्वालियर की सेना व उन सब पर तांत्या टोपे सेनापति, चार्ल्स बाल के अनुसार कोलिन की सेना करीब पिचहत्तर हजार थी।

तांत्या के व्यूह में दायीं बाजू को असुरक्षित समझकर कॉलेन ने सामने व बायें बाजू पर झूठे हमले का दिखावा करते हुये उपयुक्त समय पर तांत्या के दायें बाजू पर पूरी तरह से प्रहार कर दिया। नतीजतन धीरे-धीरे विद्रोही सैनिकों के पैर उखड़ने लगे तथा वे भाग खड़े हुये। कॉलेन ने तांत्या को भी पकड़ना चाहा। इस हेतु मैन्सफील्ड के नेतृत्व में भारी सेना भेजकर उसे बंदी बनाना चाहा। पर अपने अनुपम युद्ध कौशल से तांत्या मैन्सफील्ड की सेना को चीरकर अपना रास्ता बनाते हुये अपनी सेना सहित निकल गये। हाँ उनकी युद्ध सामग्री तोपें आदि गोरों के हाथ लगी। पर १८५७ का यह नरपुंगव कोलिन द्वारा नहीं पकड़ा जा सका। इस प्रकार ९ दिसम्बर कोलिन ने कानपुर क्षेत्र पुनः अपने अधिकार में ले लिया तथा कानपुर को तीन बार युद्ध में खोकर ये मराठे युद्ध

के लिये अन्यत्र चले गये।

लखनऊ का पतन

लखनऊ क्षेत्र को पुनः अधिकार में लने के बाद कॉलिन ने गंगा व यमुना के मध्य के क्षेत्र को पुनः अंग्रेजों के अधिकार में करने का उपक्रम आरम्भ कर दिया। देहली विजय के बाद सेना नायक सीटन अलीगढ़ तक के क्षेत्र को विद्रोहियों से मुक्त करा चुका था। योजना के अनुसार बॉलपोल कानपुर से तथा सीटन अलीगढ़ से आगे बढ़ते हुये रास्ते में विद्रोहियों का सफाया करते हुये मैनपुरी में मिलें तथा दोनों साथ मिलकर यमुना तट के क्षेत्र को धीरे-धीरे मुक्त कराते जायें तथा कॉलिन स्वयं फतेहपुर से गंगा क्षेत्र को इसी प्रकार मुक्त करते हुये तीनों की सेनायें फतेहपुर में मिले।

१९ सितम्बर को बालपोल सेना लेकर कालपी के रास्ते बढ़ता हुआ इटावा पहुँच गया। परन्तु यमुना के उस पार करीब ३०-४० राष्ट्र भक्त दृढ़निश्चयी सैनिकों ने एक भवन से उपयुक्त युद्ध व्यवस्था कर मात्र मस्कट बन्दूकों से बालपोल का रास्ता रोक दिया। युद्ध में मात्र मृत्यु की अभिलाषा कर मैदान न छोड़ने को उद्यत इन राष्ट्रभक्तों की वीरगति पाने की कथा को ब्रिटिश लेखक मैल्शन इस प्रकार लिखता है—संख्या में मुट्ठी भर केवल मस्कट ही पास में परन्तु निराशा के अवसान से से अधिक युद्ध का उत्साह उनमें भरा हुआ था। बालपोल ने युद्ध टालने की पूरी कोशिश की पर सब व्यर्थ। चारा सुलगा कर उन्हें अन्दर ही भस्म करने की योजना बनी पर वह भी व्यर्थ। उन दीवारों के छेदों से उन पक्के योद्धाओं ने हमला करने वालों पर ऐसी अचूक निशानेबाजी की कि ३ घण्टे तक उस भवन को स्पर्श न कर सके। अन्त में वह स्थान सुरंग द्वारा उड़ाने का निर्णय किया गया। सुरंग के विस्फोट से वह पूरा भवन आकाश में उछला और फिर नीचे गिरा जिससे उन वीरों को शहादत का सम्मान मिल गया। वे सारे उसी स्थान पर मर गये।

इस प्रकार की घटना सारे अभियान में इक्का-दुक्का ही थी। अन्य स्थानों पर विद्रोही युद्ध प्रारम्भ ही भाग जाते। भीड़-भाड़ के अनियन्त्रित व अनुशासनहीन विद्रोही तथा राष्ट्र को अपना सर्वस्व समर्पित कर अन्तिम क्षण तक युद्ध करते रहने वाले वीरों में यही

अन्तर है। बालपोल व सीटन की सेनायें ३ जनवरी १८५८ को मिली तथा जमुना का तटवर्ती क्षेत्र दिल्ली, मेरठ से लेकर इलाहाबाद तक मुक्त करा लिया गया। कोलिन भी बाकी क्षेत्र को मुक्त कराता हुआ कानपुर से फतेहगढ़ की ओर बढ़ रहा था इस प्रकार दोनों ओर से दबाव झेलते विद्रोही फतेहगढ़ की ओर धकेल दिये गये तथा ४ जनवरी को फतेहगढ़ में प्रवेश के समय सारा दुआब क्षेत्र और बनारस से मेरठ तक का सारा क्षेत्र अंग्रेजों के अधिकार में आ गया तथा विद्रोहियों को गंगा पार रूहेल खण्ड में भगा दिया गया।

चाहे दिल्ली का पतन हुआ हो या मेरठ या अन्यत्र पर इन विद्रोहियों ने हार नहीं मानी। उनकी मन:स्थिति का वर्णन करते हुये लेखक कहता है कि—दिल्ली में रुका पड़ा सेना समूह उस शहर के गिरते ही उन्मत्त मेघ जैसा गरजते हुये चारों ओर फैल गया। बख्तरखान के आधीन रोहिला सेना वीर सिंह के नेतृत्व में नीमच की सेना और अपने-अपने सूबेदार के नेतृत्व में अन्य हारी हुयी सेना अंग्रेजों की शरण में जाना छोड़ दिल्ली गिरते ही अपमान के क्रोध में आग-बबूला होकर दिल्ली से चूक का बदला कहीं दूसरी ओर लेने निकल पड़े। चाहे कुछ भी हो अंग्रेजों से लड़ते रहने के सिवाय उन्होंने कोई दूसरा विचार अपने अन्दर नहीं आने दिया। यह सच है कि वे आपस में लड़ रहे थे उनमें से कुछ लोग अनियन्त्रित व्यवहार कर रहे थे। कोई-कोई मृत्यु के भय से भाग रहे थे पर अंग्रेजों से लड़ाई छोड़ने को उनमें से कोई तैयार नहीं था। दोआब की हार के बाद ये विद्रोही लखनऊ व रूहेलखण्ड की ओर निकल गये जहाँ अभी तक विद्रोहियों का कब्जा था।

दोआब क्षेत्र को पूरी तरह अपने अधिकार में लेने के बाद कोलिन ने एक बार पुन: लखनऊ को अपने अधिकार में लेने के लिये कानपुर से गंगा पार की। उसकी सेना का वर्णन अंग्रेजी ग्रन्थकार इस प्रकार करता है—उन्नाव बुन्नी के बीच विशाल रेतीले मैदान में उस समय जो अंग्रेजी सेना उतरी थी वैसी हिन्दुस्तान के इतिहास में पहले कदाचित ही जमा हुई होगी। इंजीनियर्स तोपखाना, घोड़े, पैदल, रसद की गाड़ियाँ, सेवक लोग यह अपूर्व अंग्रेजी सेना सर्वांग सज्जित इसमें १७ पैदल बटालियन जिनमें १५ गोरी थी। २८ स्क्वाड्रन घुड़सवार जिनमें ४ गोरों की थी। ५४ हल्की तोपें व ८० भरी तापें। २३ फरवरी को कानपुर छोड़ कोलिन एक बार फिर

गंगा पार उतरने लगा।

पश्चिम से तो कोलिन बढ़ रहा था तथा पूर्व से नेपाल के राजा जंगबहादुर की सेना भी गोरों की सहायता के लिये उद्यत थी तथा अगस्त १८५७ में उसके ३००० गोरखा सिपाही आजमगढ़ व जौनपुर में आकर रुके हुये थे। यह क्षेत्र गोरों के दौआब क्षेत्र में व्यस्त होने के कारण मो० हुसैन, बैनी माधव, राजा इरादत खान आदि योद्धाओं के अधिकार में था। कुछ दिन बाद जंगबहादुर को अंग्रेजों से निश्चित करार होने पर वह स्वयं २३ दिसम्बर को अपने अन्य सैनिकों सहित करीब ९ हजार गोरखा सैनिकों की सेना लेकर अंग्रेजों के कमाण्डर फ्रैंक रोक्राफ्ट से मिलकर, पूरा बनारस का प्रान्त जीतते-जीतते यह संयुक्त सेना अवध में २५ दिसम्बर को आ घुसी तथा अम्बरपुर पर आकर इसे एक बार पुनः अपनी प्राणों की आहुति देने को आतुर अम्बरपुर के किले में बन्द करीब ३४ क्रान्तिवीरों के भीषण प्रतिरोध का सामना करना पड़ा। इस संग्राम में गोरों के ७ योद्धा मारे गये तथा ४२ घायल हो गये तथा जब तक अन्तिम क्रान्तिकारी भूमि पर नहीं गिर पड़ा तब तक यह गोरी सेना आगे नहीं बढ़ सकी। २३ फरवरी तक सुल्तानपुर, बदायूँ आदि को अपने अधिकार में लेने के बाद ११ मार्च आते-आते कोलिन की सेना पश्चिम से व फ्रैंक की सेना पूर्व से लखनऊ को पूरी तरह घेर चुकी थी। क्रान्तिकारियों की उस समय की मनःस्थिति तथा इस स्वतन्त्रता संग्राम की जड़ में छुपी मानस भावनाओं को तत्कालीन गवर्नर जनरल लॉर्ड केनिंग इन शब्दों द्वारा अभिव्यक्ति देता है। अवध के राजा और जमींदार केवल अपनी लगान पद्धति से दुःखी हुये हैं ऐसा कदाचित आपको लगेगा। परन्तु यह पूरी तरह सही नहीं है। क्योंकि चन्दा, वैजा, गोण्डा व नौपारा के राजाओं को हमने सब प्रकार की रियायतें दी तथा उनका हमसे असन्तुष्ट होने का कोई कारण नहीं है। फिर भी बिल्कुल प्रारम्भ से ही उनकी सेनायें हमसे लखनऊ में लड़ रही हैं। दुरा के राजा का भी लगभग यही हाल है। ताल्लुकेदार असरफ खान जिसकी मालगुजारी का पूरा स्वामित्व हमने दे दिया वह भी हम से वैर भाव रखता है। अंग्रेजी इतिहासकार होम्स ईमानदारी से स्वीकार करता है कि जिन राजाओं और जमींदारों ने इस स्वतन्त्रता संग्राम का प्रारम्भ कर उसे लड़ा वे लोग व्यक्गित स्वार्थ्य की अपेक्षा उदात्त ध्येय से प्रेरित हो गये थे। ऐसे कितने ही राजा व जमींदार थे जिन्हें सचमुच बुरा

लगने के लिये कोई विशेष कारण नहीं था। पर वे भी हमारी राज्य सत्ता के कानून के विरुद्ध फड़फड़ा रहे थे। हमारी राज्य पद्धति ही उन्हें इस चुभने वाले सत्य की स्मृति दिलाती थी कि हम हारे हुये राष्ट्र हैं।

अब हम इस तथ्य की भी समीक्षा करेंगे कि आउट्रम के हवाले लखनऊ करके कोलिन ने कानपुर अभियान पर जाने तथा पुनः ११ मार्च तक लखनऊ पुनः चढ़ने आने के बीच के करीब ४ माह के अन्तराल में अवध ने अपनी रक्षा के लिये व अंग्रेजों को खदेड़ने के लिये क्या किया ? विभिन्न क्षेत्रों से हारे हुये क्रान्तिकारियों का जमघट अपने-अपने नेताओं व सूबेदारों के नेतृत्व में लखनऊ में इकट्ठा तो हो रहा था पर लखनऊ को किस प्रकार गोरों से मुक्त कराया जाये इस पर एक मत होता ही नहीं दिख रहा था। प्रत्येक गुट का नायक अपने को ही सयाना समझता था तथा इस प्रकार के युद्ध में जिस संगठित शक्ति की आवश्यकता थी व युद्ध संचालन में एकबद्धता अभीष्ट थी उसका दूर-दूर तक पता नहीं था। सारा लखनऊ इस अन्तराल में इसी प्रकार की दयनीयता का शिकार रहा तथा युद्ध का परिणाम युद्ध प्रारम्भ होने से पहले ही साफ दिख रहा था। इन सभी के मध्य स्वतन्त्रता का दीवाना प्रखर राष्ट्र भक्त व अनुपम वक्ता व योद्धा फैजाबाद का मौलवी अहमद शाह सारी सभा में बार-बार प्रयास करने के बाद भी कुछ हासिल नहीं हुआ तो वह स्वयं ही अपने सहयोगियों के साथ अंग्रेजों की सेना पर तीन-चार बार प्रहार करने के लिये गया। पर अपने अधिकतर सहयोगियों की भीरुता के कारण सफलता न मिल सकी, परन्तु उसकी वीरता के चर्चे हर जगह गोरों में भी होने लगे। उसे २२ दिसम्बर को अंग्रेजों की छावनी आलमबाग पर १५ जनवरी को उनकी रसद के काफिले पर ५ फरवरी को एक बार पुनः सीधे अंग्रेजों पर असफल हमला किया। इतिहासकार होम्स उसके बारे में लिखता है—यद्यपि बहुत संख्या में विद्रोही डरपोक व हिम्मत हारने वाले थे फिर भी उनका नेता अपनी निष्ठा से और कर्तृत्व से उद्धात्त ध्येह का पीछा करने वाला और सेना का नेतृत्व स्वीकार करने योग्य था। यह नेता अर्थात् अहमद उल्लाह फैजाबाद का मौलवी।

इस प्रकार इन चार माह के दरम्यान इसी तरह के छिटपुट हमले होते रहे तथा लखनऊ को दोनों ओर से पूरी तरह मार्च में

घेर लिया गया। अंग्रेजों के संगठित आक्रमण के सामने यह विद्रोहियों की सेना टिक नहीं सकी। तथा १५ मार्च तक अपने शत्रुओं से लखनऊ किसी प्रकार जूझता रहा। अन्त में कोलिन की सेना लखनऊ के राजमहल में घुस गयी पर इसी बीच वहाँ से हजारों विद्रोही व अपने युवा पुत्रों के साथ बेगम हजरत महल अंग्रेजों के प्रतिशोध को विफल बनाते हुये लड़ते-लड़ते शहर से बाहर निकल गयी तथा गोरों के हाथ नहीं लग सकी। इसी प्रकार अहमदशाह भी अन्त तक लड़ते-लड़ते जब लखनऊ का पूरी तरह पतन हो गया तो वीरतापूर्वक अंग्रेजों के बीच रास्ता बनाता हुआ रूहेलखण्ड की ओर निकल गया।

देहली गिरी लखनऊ गिरा दोआब क्षेत्र का पतन भी हुआ पर क्रान्तिकारी आग फिर भी ठण्डी नहीं हुई। विद्रोहियों ने हथियार फिर भी नहीं डाले। प्रचण्ड क्रान्ति के मुख्य कारणों की जड़ में जाते हुये इतिहासकार डफ इस प्रकार लिखता है—यदि यह केवल सिपाहियों का विद्रोह होता और बहुत संख्या जनता की सहानुभूति और सहायता उन्हें न होती तो उन पर हमने जो दो प्रचण्ड विजय प्राप्त हुयी उसी में हम उनका कचूमर निकाल दिये होते, परन्तु कचूमर निकालना तो दूर रहा उल्टे वे अधिक ही चैतन्य दिखायी देने लगे और विद्रोह का फैलाव पहले से अधिक होता गया और वह अधिक उग्र स्वरूप भी धारण कर रहा है। यह सीधा-साधा सिपाहियों का विद्रोह न होकर एक क्रान्तिकारी विद्रोह ही था यह दिखायी देता है। और इसलिये उसे पूरी तरह शान्त करने में हमें सफलता कम ही मिली और आगे भी यह शीघ्र शान्त होगा ऐसा नहीं लगता। इस तरह यह विद्रोह दीर्घकालिक और उद्देश्यपूर्ण क्रान्ति था। इसमें हिन्दू, मुसलमान नामक विसंगत जोड़ी कन्धे से कन्धा लगाये मित्रवत लड़ने के लिये खड़ी हो गयी थी। जिसके बढ़ाने और फैलाने में अवध की पूरी जनता लगी हुयी थी और जिसे प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से पड़ौस के सभी प्रदेशों से सक्रिय सहानुभूति मिली हुयी थी। यह विद्रोह सिपाहियों पर प्राप्त दो बार शुद्ध व अभूतपूर्वक विजयों से दबा देना सम्भव नहीं था। एकदम प्रारम्भ से इस विद्रोह को सेना के बाहर फैली विस्तृत जन शक्ति ने अंग्रेजी प्रभुत्व के विरुद्ध एवं उनकी राज्य सत्ता के विरुद्ध क्रान्तिकारी विद्रोह का स्वरूप ही प्राप्त हो गया था। हमारी वास्तविक लड़ाई पूरी तरह विद्रोही सिपाहियों के साथ ही थी यह पूरी तरह

झूठ है। हमारे शत्रु केवल सिपाही होते तो देश में शान्ति स्थापित करने में चुटकी बजाने से अधिक समय नहीं लगता।

शत्रु को पूरी तरह तितर-बितर कर उनकी तोपें अपने कब्जे में लिये बिना हमने उनको एक भी लड़ाई में नहीं छोड़ा पर बार-बार लगातार और कई बार पिटने के बाद भी ये लोग फिर ताजा होकर नई लड़ाई के लिये दिखायी देते थे। एक क्रान्ति पर कब्जा कर अंग्रेजी सेना वहाँ शान्ति व्यवस्था बनाती तो दूसरे प्रदेश में तभी विद्रोही आँधी चलती। महत्त्व के स्थानों को जोड़ने वाला कोई राजमार्ग खोला जाता तो तुरन्त उसकी नाकेबन्दी कर वहाँ का यातायात तोड़ दिया जाता। एक विभाग से विद्रोहियों को जैसे ही भगाया जाता वैसे ही दुगनी-तिगुनी संख्या में वे किसी दूसरे विभाग में खड़े दिखायी देते। हमारी सेना झपटकर उन पर आक्रमण करती हुयी आगे बढ़ती तो विद्रोहियों की टुकड़ियाँ पिछला सारा प्रदेश अपने कब्जे में ले लेती। इस प्रकार लखनऊ का पतन होते ही सारे विद्रोहियों ने रूहेलखण्ड की ओर रुख कर लिया तथा अगली लड़ाई के लिये तैयारी करने लगे।

कुँवर सिंह व अमर सिंह

जगदीशपुर के राजमहल से होअर द्वारा बेदखल किये जाने के बाद रण निपुण कुँवर सिंह ने अपने भाईयों अमर सिंह, निस्वार सिंह एवं जवान सिंह सहित जगदीशपुर के घने जंगलों में ही अपने करीब १५०० सैनिकों व नागरिकों सहित डेरा डाला तथा अंग्रेजों की अपार शक्ति के सामने हमला करने में निश्चय हार की संभावना होने के कारण उसने अंग्रेजों की कमजोर कड़ियों की खोजबीन जारी रखी व अपने सैनिकों को छापामार युद्ध पद्धति से घात लगाकर अंग्रेजों के मर्म स्थान पर त्वरित गति से हमला कर अधिक से अधिक हानि पहुँचाते हुये उस स्थान से गायब हो जाने की युद्ध दक्षता व निपुणता में पारंगत किया। अपने सैनिकों की उसने बहुत छोटी-छोटी टुकड़ियाँ बनाकर उन्हें युद्ध स्थल पर विभिन्न दिशाओं से हमला कर व आपतकाल में पुनः छोटी टुकड़ियों में युद्ध स्थल से तुरन्त गायब होकर निश्चित समय पर निश्चित स्थान पर पुनः प्रकट होने आदि की विधाओं का बहुत प्रभावशाली शिक्षण दिया। फिलहाल उसने जगदीशपुर को मुक्त कराने का विचार छोड़कर इस पद्धति से अंग्रेजों को अधिक से अधिक हानि पहुँचाने

की योजना बनाई। जगदीशपुर के जंगलों आदि से पूरी तरह परिचित होने के कारण अंग्रेज उसे ढूंढ़ पाने में असमर्थ रहे।

दोआब क्षेत्र व लखनऊ में अंग्रेजी सेना के बहुत अधिक मात्रा में होने के कारण पूर्वी अवध में अंग्रेजी सेना का जोर काफी कम था तथा लखनऊ के पतन के लिये आजमगढ़ की ओर से नेपाली व गोरी सेना अवध की ओर चल पड़ी थी। मौके का फायदा उठाते हुये कुँवर सिंह ने आजमगढ़ पर आक्रमण करने की योजना बनाई तथा १८ मार्च १८५८ को उसने अतरौलिया किले के पास अपना शिविर लगाया तथा इसी बीच बेतवा के विद्रोही भी उससे आकर मिल गये। २२ मार्च को आजमगढ़ से गोरों का सदर मिलमैन कोई ३०० पैदल व घुड़सवार तथा दो तोपें लेकर अतरौलिया की तरफ आक्रमण को निकला। युद्ध प्रारम्भ होते ही कुँवर सिंह की अलौकिक युद्ध पद्धति के सामने बेबस हुआ, मिलमैन पीछे हटते-हटते आजमगढ़ तक आ पहुँचा। इस प्रकार कुँवर सिंह ने पहली जीत दर्ज की। मिलमैन ने गाजीपुर से और सेना मँगवाई तथा कर्नल डेम्स के नेतृत्व में एक बार पुनः गोरी सेना २७ मार्च को कुँवर सिंह पर हमला करने निकली पर उसने एक बार फिर अपने युद्ध कौशल से डेम्स को ऐसा थप्पड़ लगाया कि वह पीछे हटता-हटता आजमगढ़ ही जाकर रुका तथा पुनः उसकी हिम्मत कुँवर सिंह पर हमला करने की नहीं हुई।

अब तक अन्य स्थानों से भी विद्रोहियों के आने के कारण कुँवर सिंह की सेना ने करीब ६००० से ७००० सैनिक हो गये थे। गुणदोषों के आधार पर मोटे रूप से उसने इन सैनिकों के दो ग्रुप बना रखे थे। एक वह जो भीरु प्रकृति व बैनट पर व परकोटे पर हमला करने से हिचकते थे पर अन्य किसी भी अभियान में चौकस रहते थे। दूसरा ग्रुप उन कर्त्तव्यनिष्ठ साहसी व अन्त तक मोर्चे पर डटे रहने वाले सैनिकों का था जो किसी भी कार्य को दिये जाने पर अन्त तक मृत्यु पर्यन्त उसे अंजाम देते थे तथा उनका पीछे हटने का कोई प्रश्न ही नहीं था। इन दोनों ही ग्रुपों का आवश्यकतानुसार युद्ध की परिस्थिति पर आधारित आंकलन कर प्रयोग करते थे।

कुँवर सिंह आजमगढ़ पर अपना कसाब व नियन्त्रण बढ़ाता जा रहा था तथा यह बात इलाहाबाद में बैठे गवर्नर जनरल केनिंग के सामने आये बिना नहीं रही कि आजमगढ़ पूरी तरह घेरकर कुँवर सिंह बनारस पहुँच, उसके व लखनऊ में बैठे कमाण्डर इन

चीफ कोलिन के बीच का सम्पर्क रसद व सहायता मार्ग काटकर एक निश्चित ही बहुत बड़ा खतरा उत्पन्न कर सकता है। अतः उसने क्रीमियन युद्ध में ख्याति प्राप्त लॉर्ड मार्ककेर को लगभग ४०० योद्धाओं व तोपों के साथ आजमगढ़ की ओर भेजा। ६ अप्रैल को उसका सामना कुंवर सिंह से हुआ तथा उसके दाहिने बाजू पर हमला करते ही कुंवर सिंह के बायें बाजू पर तैयार सैनिकों ने भी भीषण गोलाबारी करनी शुरू कर दी तथा साथ ही अपने सैनिकों को फैलाते-फैलाते वह उन्हें मार्ककेर की सेना के पिछवाड़े ले आया एवं पीछे के आयुधों व रसद लाइन को आग लगाते हुये पीछे से हमला कर मार्ककेर को भी आजमगढ़ में ढकेलकर बन्द कर दिया तथा अपना शिकंजा और कस दिया। कुँवर सिंह के बारे में प्रख्यात लेखक मेल्सन लिखता है कि उसकी मुहीम का नक्शा प्रशंसनीय था पर उस नक्शे के अनुसार उसने कई गल्तियाँ की थी...........वे सारे युद्ध विजय के अवसर उसके दिमाग में भी अवश्य आये होंगे पर जिस-जिस छोटे नायक ने अपने लोग उसके झण्डे तले लड़ने के लिये भेजे थे उन सब की बेलगाम बहसों के बाद जो भी निर्णय लिया जाता है वह मिश्रित ही होता है।

एक बार पुनः जनरल सर ल्यूगार्ड के नेतृत्व में गोरी सेना कुँवर से लोहा लेने आजमगढ़ की ओर बढ़ी। इस वृद्ध रणपुंगव ने एक ओर ल्यूगार्ड व दूसरी ओर आरा की गोरी सेना को चकमा देते हुये आजमगढ़ छोड़कर गंगा पार कर जगदीश पुर में पुनः प्रवेश करने की योजना बनाई। इस हेतु उसने आजमगढ़ में नदी के पाट पर बने नौका पुल पर अपने श्रेष्ठ सैनिकों की एक टुकड़ी लगाई इस आदेश के साथ कि जब तक वह अपने सारे सात-आठ हजार सैनिकों के साथ आजमगढ़ से गाजीपुर का रास्ता पकड़कर गंगा घाट की ओर नहीं बढ़ता तब तक ये सैनिक ल्यूगार्ड की सेना को पुल न पार करने दें। मैल्सन इन वीरों के बारे में लिखता है कि—रण में धैर्य रखने वाले वीरों के समान उन वीरों ने नावों के इस पुल की रक्षा बड़े उत्साह से की और उनके साथियों के सुरक्षित स्थान में पहुँचने के लम्बे समय तक का प्रतिकार कर हट गये।

इस प्रकार ल्यूगार्ड के आजमगढ़ तक पहुंचने तक कुँवर सारी सेना के साथ आजमगढ़ छोड़ चुका था तथा पीछा करने का खेल

प्रारम्भ हो गया तथा अघई ग्राम में उनकी मुठभेड़ हुई। कुँवर सिंह अपनी शूरतम् टुकड़ी को उनसे भिड़ने के लिये रख वह अपने गंगा पार करने के प्रयास में आगे बढ़ा। उन वीरों ने बिना एक इंच जमीन छोड़े अंग्रेजी सेना का मुकाबला किया। मैल्सन के अनुसार उनके साथी चटपट मरते रहे पर वे तिलभर भी नहीं डिगे न उनकी पंक्तियाँ ढ़ीली हुई न उनका अनुशासन बिगड़ा और नहीं युद्ध कौशल के रण में कोई चूक हुई।

इस प्रकार परिस्थिति अनुसार उनसे छापामार युद्ध करते अथवा चकमा देकर आगे बढ़ते-बढ़ते कुंवर सिंह मेयोघाट से अपने सारे सैनिकों सहित गंगा पार कर गया तथा ल्यूगार्ड व डगलस की गोरी सेना गंगा के इस छोर पर ताकती रह गयी। हाँ, कुँवर सिंह का एक हाथ इस अभियान में २३ अप्रैल को गंगा पार करते समय जख्मी हो गया जिसे उसने काटकर गंगा के अर्पित कर दिया। जगदीशपुर पहुँचकर ८ माह पश्चात् वह अपने राज भवन में जा पहुँचा तथा २६ तारीख को घाव के बहुत पक जाने के कारण राज महल में ही वह स्वर्ग सिधार गया। एक अभिमानी स्वतन्त्र राजा की मृत्यु प्राप्त करके। उसके बाद उसके भाई अमर सिंह ने राज्य संभाला तथा अक्टूबर तक अंग्रेजों से लड़ते-लड़ते आखिर उसने जगदीशपुर छोड़ दिया और वह जंगल को चला गया व उसे भी अंग्रेज पकड़ नहीं पाये।

रूहेलखण्ड का मोर्चा : मौलवी अहमदशाह का बलिदान

लखनऊ के पतन के बाद सारे विद्रोहियों के रूहेलखण्ड की ओर चले जाने के बाद भी कुछ दिन और लखनऊ में अंग्रेजों से दो-दो हाथ करने वाला यह प्रखर क्रान्तिकारी फैजाबाद का मौलवी अहमद शाह भी अन्ततः शाहजहाँपुर की ओर निकल गया। जहाँ पहले से ही नानासाहब मौजूद थे। हारी हुई विद्रोही सेना के विभिन्न क्षेत्रों से आये सैनिक भी अपने-अपने नायकों के नेतृत्व में बरेली क्षेत्र में जो अभी भी स्वतन्त्र था तथा खान बहादुर के आधीन था, अगले युद्ध के लिये एकत्रित हो रहे थे। गोरों के अत्यधिक बलशाली होने के कारण उनसे निपटने के लिये उन्होंने अब जाकर कूट युद्ध पद्धति अपनाई। यानि छापामार युद्ध। विद्रोही नेताओं ने रूहेलखण्ड से यह प्रख्यात आदेश जारी किया। फिरंगियों की संगठित सेना से आमने-सामने लड़ने का प्रयास न करें क्योंकि व्यवस्था अनुशासन

और कवायद में ये सेनायें हमसे काफी श्रेष्ठ हैं और उनके पास बड़ी-बड़ी तोपें हैं। इसलिये उनसे खुले मैदान में लड़ाई न कर, छापे मारकर उनके आवागमन को रोकते रहें, नदी के सारे घाट दबाये रहें, उनका आवागमन तोड़ दें उनकी रसद और डाक लूट लें, उनके यानों पर हमले करें और उनके शिविर के चारों ओर अखण्ड चक्कर लगाते रहें। फिरंगियों को विश्राम नहीं मिलना चाहिए।

जाहिर है कि एक ओर यह बहुत ही देर से लिया गया निर्णय था जिसमें क्रान्ति की अन्तिम परिणाति अर्थात् पराजय पर कोई असर पड़ने वाला नहीं था, तो दूसरी ओर यह निर्णय विद्रोहियों में भरी हुई अंग्रेजों के प्रति घृणा व क्रोध की पराकाष्ठा को दर्शाता है कि पराजय सन्निकट जानते हुये भी ये राष्ट्रप्रेमी असंगठित व काफी हद तक अनुशासनहीन भारतीय क्रान्तिकारी अन्त तक लड़ने के लिये कटिबद्ध थे तथा मैदान छोड़ने के लिये तैयार नहीं थे।

रूहेलखण्ड को विद्रोहियों से मुक्त कराने के लिये गोरों का कमाण्डर इन चीफ कोलिन कैम्पवैल क्या योजना बना रहा है इस पर भी विचार कर लें। जैसा उसने दोआब के क्षेत्र से अपनी सेना के तीन विभाग कर सब ओर से विद्रोहियों को ढ़केलते हुये अन्ततः फतेहगढ़ में इकट्ठा कर बाहर भगा देने की योजना बनाई। वैसी ही योजना उसने पूर्वी अवध रूहेलखण्ड आदि के लिये भी तैयार की। इसके अनुसार अवध के पूर्व भाग व बिहार प्रान्त में ल्यूगार्ड व डगलस को भेजा। बारी व बिरोली से सर होफग्राण्ट गंगा किनारे से होते हुये, बालपोल व स्वयं कोलिन शाहजहाँपुर होते हुये रूहेलखण्ड में सब ओर से घेरकर बरेली में उन पर अन्तिम हमला किया जाये। लखनऊ से सर्वांग सेना लेकर बालपोल गंगा किनारे को जीतता हुआ रूईया के किले तक पहुँचा। उधर होफग्राण्ट की सेना बारी व बिटावली होती हुई आगे बढ़ी थी बारी में तब अहमदशाह व बिटावली में बेगम हजरत महल अपने ६००० सैनिकों के साथ बैठी थी।

तभी गोरेल्ला युद्ध को प्रत्यक्ष में उतारने के लिये मौलवी ने अपनी सेना घुड़सवारों सहित एक पास के गांव को अपने अधिकार में लेकर वहाँ नदी के ऊपर वाले किनारे पर अपने सैनिकों को घात लगाकर मौका पड़ने पर अंग्रेजों पर हमला करने के लिये छिपाकर

बैठा दिया, तथा घुड़सवारों को लम्बे रास्ते से घूमकर होफग्राण्ट की सेना के पिछवाड़े पहुँचाकर उनकी प्रतीक्षा करने को भेज दिया। योजना थी कि जब गोरी सेना नदी किनारे वाले सैनिकों की मार में आ जायेगी तो पहले ये सैनिक उन पर घात लगाकर हमला कर देंगे तथा इस आवाज के इशारे पर घुड़सवार भी पीछे से उन पर टूट पड़ेंगे। इस अभियान की सफलता के लिये अन्त समय तक सारी कार्य योजना को अत्यन्त ही गोपनीय रखना आवश्यक था। मैल्सन कहता है कि—मौलवी की यह योजना बड़ी चतुरता पूर्ण थी। उसकी व्यूह रचना के ज्ञान का आभास इसी से हो जाता है। होफग्राण्ट की सेना निश्चितन्ता से इस फन्दे में प्रविष्ट होने से मात्र आधा घण्टा दूर थी कि मौलवी के घुड़सवारों ने गोरों की दो तोपों को असुरक्षित देखकर उन पर पहले ही हमला कर सारी योजना चौपट कर दी। होफग्राण्ट सारी बात समझ गया तथा मौलवी को वहाँ से तुरन्त हटना पड़ा। इस असफल अभियान के बाद वह शाहजहाँपुर जा पहुँचा जहाँ नानासाहब पहले से ही उपस्थित थे। होफग्राण्ट इस प्रकार बारी और बिटरौली से विद्रोहियों को धकियाता हुआ १५ अप्रैल तक रूईया किले जा पहुँचा।

इसके किले का मालिक नरपत सिंह एक छोटा जमींदार था जिसके पास करीब दो-ढाई सौ सैनिक थे। उसने निश्चय किया गोरों को एक कड़ी टक्कर देने से पूर्व वह किला नहीं छोड़ेगा। किले को दोनों ओर से बाल-पोल व होफग्राण्ट ने घेर रखा था। भयानक युद्ध प्रारम्भ हो गया। नरपत के सैनिक अति वीरता से लड़े। जिससे गोरों के अधिकारी काफे के १२० में ४० सैनिक मारे गये तथा दूसरा अधिकारी ग्रूप भी अपने सैनिकों सहित घिरा हुआ पड़ा था। अतः उसे पीछे हटना पड़ा। इसी युद्ध की भयंकरता से सरहोफग्राण्ट भी मारा गया। इस प्रकार इस वीर शिरोमणि नरपत ने अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर शीघ्र ही किला छोड़कर रूहेलखण्ड में अन्यत्र चला गया।

कोलिन के नेतृत्व में सेना का मुख्य भाग भी लखनऊ से रूहेलखण्ड की ओर चला तथा शाहजहाँपुर पर बड़ी सावधानी से चारों ओर घेरा डालकर इस प्रकार बढ़ा कि वहाँ पर फँसे अहमदशाह व नाना साहब उसकी पकड़ में आ गये। परन्तु उसके शाहजहाँपुर विजय करते-करते ये दोनों सेनानी भविष्य में पुनः यहाँ आक्रमण करने की इच्छा से बरेली खान बहादुर के पास चले गये। परन्तु

जाते-जाते शाहजहाँपुर के सारे ही पक्के भवन आदि भूमि साफ करवा गये जिससे अंग्रेज खुले में रहने पर बाध्य हों। ३० अप्रैल को सारा शाहजहाँपुर कोलिन के अधिकार में आ गया। मौलवी ने यह सोचकर शहर छोड़ा था कि विजय के कुछ समय बाद ही कोलिन कुछ सेना शाहजहाँपुर रखकर बाकी लावलश्कर सहित बरेली पर धावा बोलेगा तब वह पुनः शीघ्र शाहजहाँपुर पर पहुँचकर एक बार पुनः उसे अपने अधिकार में कर लेगा।

मौलवी के अनुमान के अनुसार ही थोड़ी सेना शाहजहाँपुर में रख कोलिन बरेली की ओर बड़ा तथा चार मई को बरेली से एक दिन के अन्तर पर पहुँच गया। बरेली में उन दिनों खान बहादुर की छत्रछाया में दिल्ली का राजपुत्र मिर्जा फिरोजशाह श्रीमन्त नाना साहब, मौलवी, राजा तेज सिंह आदि थे जिन्हें घेरने की कोलिन की बड़ी इच्छा थी। खान बहादुर व अन्य ने बरेली छोड़ने से पहले कोलिन को एक तगड़ी टक्कर देनी की सोची। अतः ४ मई को ही खान बहादुर रण क्षेत्र में उतर अंग्रेजों से भिड़ गये। जाहिर है कि उस दिन खान बहादुर की तोपों का अंग्रेजी सेना पर कोई असर नहीं हुआ। ५ तारीख को उन रण बांकुरों ने तलवारें म्यान से खींच ली और जितने भी थे वे अंग्रेजी सेना पर टूट पड़े। अंग्रेजी सेना पीछे हटी तो हाईलैण्डर्स आये वे भी पीछे धकेल दिये गये। जितने भी बलिदानी थे वे सब अपने स्थान से एक इंच भी नहीं हटे तथा जहाँ थे वहीं युद्ध करते हुये उन्होंने मृत्यु का वरण किया। इस प्रकार अपनी आहूति देकर माँ भारती को प्रणाम करने वाले इन सूपतों ने उस दिन कोलिन को रोके रखा तथा ७ मई को अंग्रेजों के इस जाल को तोड़कर खान बहादुर सेना सहित बरेली से बाहर निकले और यह शहर अंग्रेजों के अधिकार में आ गया।

पर तभी कोलिन को सूचना मिली कि मौलवी ने अपना अद्भुत पराक्रम दिखाकर शाहजहाँपुर पर पुनः अधिकार कर लिया है। २ मई को ही मौलवी बरेली से अपनी सेना सहित निकलकर शाहजहाँपुर पर धावा बोलने चला गया था तथा उसे अपने अधिकार में ले लिया था एक बार फिर कॉलिन शाहजहाँपुर की ओर मुड़ा तथा मौलवी को पकड़ने के लिये उसने अपनी सेना को उत्कृष्ट व्यूह में बद्ध कर आगे बढ़ने का निर्देश दिया। ११ मई को मौलवी का उससे युद्ध प्रारम्भ हुआ तथा मौलवी की सहायता के लिये नाना साहब अवध की बेगम, मइयन साहब, मौहम्मदी का राजा

मिर्जा फिरोजशाह आदि की सेनायें १४ मई को मौलवी के झण्डे तले आ गयी तथा इतने भयानक युद्ध में यद्यपि जीत कॉलिन की हुई फिर भी उसके सारे जाल को तोड़कर सारे विद्रोही एक बार फिर निकल गये। मौलवी अवध की ओर चला गया इस प्रकार अंग्रेजों को छकाता हुआ यह योद्धा अपनी शक्ति बढ़ाने हेतु रूहेलखण्ड व अवध के बीच पोवायां नामक रियासत के राजा जगन्नाथ से मिलकर युद्ध आगे बढ़ाने की योजना बना रहा था। पर उस राष्ट्रद्रोही जगन्नाथ ने धोखा देकर उसे मार डाला तथा उसका सिर शाहजहाँपुर में अंग्रेज साहब के हवाले कर दिया। इस प्रकार उस राष्ट्रद्रोही कृतघ्न जगन्नाथ की इस कायरता का शिकार हो गया। इतिहासकार मैल्सन उसको इस प्रकार श्रद्धाञ्जलि देता है—''उसके सैन्य नेतृत्व और युद्ध चातुर्य के विद्रोह में अनेक उदाहरण घटित हुये हैं। उसके अन्तिम समय के दाव-पेच तो अप्रतिम थे। सर कोलिन को दो बार भग्न चातुर्य कर बिखेर देने का सम्मान उसके सिवाय अन्य किसी को भी प्राप्त होना असम्भव था। इस प्रकार फैजाबाद का यह मौलवी अहमदशाह रण में चमका। अपने जन्म सिद्ध देश की अन्याय से छीनी गयी स्वतन्त्रता वापिस लेने के लिये जो पुरुष विद्रोही संगठन खड़ा कर युद्ध करता है तथा यदि देश भक्त कहलाता है तो मौलवी अहमदशाह ऐसा ही देश भक्त था। जिसने उसका स्वदेश छीना था उस गोरे विदेशी से वह लड़ा, वीरोचित लड़ा, दृढ़ता से लड़ा और इसलिये उस लोकोत्तर मौलवी की स्मृति सारे राष्ट्र के रणवीरों और सत्यप्रियों के अन्तर्मन में प्रतिष्ठित हो गई थी।''

रानी लक्ष्मीबाई : झाँसी और ग्वालियर का पतन

८ जून १८५७ को झाँसी को पूर्ण रूप से अपने अधिकार में करने के बाद रानी लक्ष्मीबाई ने आगामी युद्ध के लिये तैयारी प्रारम्भ कर दी। उनका उच्चारित कर्मभेदी वाक्य ''नहीं मैं अपनी झाँसी नहीं दूँगी हिम्मत हो तो आजमाले'' अभी भी अंग्रेजों के कानों में गूँज रहा था। विगत ८-१० महीने सारा विन्ध्याचल अंग्रेजी चंगुल से मुक्त हो स्वतन्त्रता की सांस ले रहा था। अब स्वराज्य का नगाड़ा गम्भीर घोष कर रहा था। ११ महीने से गूँजने वाले इस स्वातन्त्र्य घोष से सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड भर गया था। नगाड़े के नाद का साथ कालपी से तांत्या की तोपें दे रही थीं। विन्ध्य से

यमुना तक ब्रिटिश सत्ता का कोई चिह्न दिखाई नहीं देता था। कोई उसका यानी अंग्रेजी राज्य का नाम भी नहीं लेता था।

अंग्रेजों ने भी सन् १८५८ के प्रारम्भ में इस प्रदेश को जीतने की पुनः योजना बनाई। यमुना के दक्षिण में विन्ध्य प्रदेश तक का भाग जीतने के लिये सेना को दो भागों में विभक्त किया गया। एक भाग ब्रिगेडियर विटलॉक के आधीन जबलपुर से होते हुये उत्तर की ओर आगे बढ़ेगा तथा दूसरा भाग सर ह्यूरोज के आधीन मऊ से झाँसी फतह करता हुआ कालपी की ओर बढ़ेगा। ६ मार्च को अपना अभियान प्रारम्भ कर रोज 'राह में पड़ने वाले स्थान' यथा रायपुर, सागर, बानापुर, चन्देरी को जीतकर विद्रोहियों से मुक्त कराता हुआ २० मार्च को झाँसी से १४ मील दूर पहुँचकर रुक गया। महारानी लक्ष्मीबाई ने भी झाँसी के चारों ओर मीलों के क्षेत्र में सारे वन व खेत आदि उजड़वाकर अंग्रेजों को राह में आश्रय पाने के सारे रास्ते बन्द कर दिये। उनकी सहायता के लिये रोज से पराजित बानापुर के राजा मरदान सिंह, शाहगढ़ का राजा शूर ठाकुर तथा बुन्देलखण्ड के अन्य सरदार अपने सैन्य बल के साथ झाँसी में उपस्थित थे। रोज की सहायता शिंदे, टेहरी नरेश व ओरछा के राजा पूरी शक्ति से कर रहे थे तथा युद्ध से पहले ही हार दृष्टिगोचर हो रही थी। फिर भी उन रणबांकुरों ने पूरी शक्ति लगाकर गोरों से युद्ध की ठान ली।

रानी ने पुरुषवेश धारण किया हुआ था तथा वे अपने कुशल नेतृत्व व सबके प्रति अपनत्व व स्नेह का भाव एवं यौद्धिक दृष्टि से किले व शहर में सब प्रकार की तैयारी यथा आयुधों का निर्माण, बारूद आदि की तैयारी सैनिकों को यथा आवश्यकता विभाजित कर विभिन्न मोर्चों पर नियुक्त करना तोपों की कुर्सियाँ हर एक मोर्चे पर बन्धवाना आदि उपक्रमों में व्यस्त हो गई। किसी भी दिशा से सम्भावित आक्रमण होने पर अनुमान के अनुसार अपनी व्यूह रचना आदि प्रसंगों में वे इस निपुणता व तीव्र गति का प्रयोग करती थीं कि सभी सैनिकों को उनकी तेजोमय मूर्ति व कार्यकुशलता के दर्शन प्रचुर मात्रा में प्रतिदिन होते रहते थे तथा वे सारे सैनिक पूरे जोश के साथ अपने प्रदत्त कार्यों में जुटे रहते थे। रानी की सेना की एकजुटता व वीरता की सानी बहुत कम स्थानों पर ही देखने को मिलती है। २४ मार्च को युद्ध का प्रारम्भ हो गया।

२५ मार्च से ३१ मार्च तक अंग्रेजों की सेना शक्ति पूरी शक्ति झोंकने के बाद भी झाँसी की प्राचीरों के पास तक नहीं पहुँच पाई। दोनों ही ओर से तोपें दागी जा रही थीं तथा झाँसी के तोपची गुलाम गौस खान ने इस दरम्यिान बहुत अच्छा काम किया। जिधर भी अंग्रेजी तोपों के वेग को कम करने की आवश्यकता पड़ती थी वह उसी ओर अपनी तोप 'घन गर्ज' को घुमाकर इतनी प्रभावशाली मार करता था कि अंग्रेजों का वेग कम हो जाता था। एक बार अंग्रेजों के गोलों से मुडेर ढह जाने पर रातों-रात कम्बल लपेटकर राज मिस्त्री लाये गये व रातों-रात वह मुडेर जस की तस बना दी गयी। अंग्रेज भी यह व्यवस्था देखकर दाँतों तले उंगली दबाने लगे। रानी स्वयं सारे मोर्चों पर घूमती रहकर सबका उत्साह बढ़ाती रहती थीं। उन्हें तांत्या टोपे की सहायता का इन्तजार था। जिससे अंग्रेजों को पूरी तरह समाप्त किया जा सके।

तांत्या टोपे अपनी २२ हजार सैनिकों व काफी तोपों व बारूद के रसद के साथ झाँसी आकर अंग्रेजों के पिछवाड़े बैठ भी गया पर इस युद्ध में उसके सैनिकों द्वारा दिखाई गई कायरता ने सारी स्थिति उलटकर रख दी। ये सैनिक पहला गोला चलते ही डर के मारे एक भी गोली चलाये बिना युद्ध स्थल से भाग खड़े हुये तथा अंग्रेजों ने इन भागते हुये सैनिकों में से कोई डेढ़ हजार सैनिकों को मार डाला। उनके हाथ तांत्या की सारी युद्ध सामग्री व तोपों लगीं। १ अप्रैल को तांत्या की हार के कारण झाँसी की बाजी उलट गयी। हार अवश्यमभावी होने पर भी उस वीरांगना ने साहस नहीं छोड़ा तथा यथासम्भव अंग्रेजों से लोहा लेती रही।

३ अप्रैल को घमासान युद्ध प्रारम्भ हो गया। वीरता की पराकाष्ठता दिखाती रानी लक्ष्मी बाई शत्रु की अग्रिम पंक्ति को तोड़ने में लगी रही व साथ ही अपने सारे सैनिकों को उत्साहित करती रही। झाँसी में प्रवेश के लिये नसैनी इस्तेमाल करने वाले अंग्रेजों के लीडर लेफ्टीनेण्ट डिक व माईकल तथा लेफ्टीनेण्ट वीनस और फोक्स मारे गये। इस प्रकार उस दिन अंग्रेजों को वहाँ से पीछे हटना पड़ा। परन्तु दक्षिण बुर्ज पर किसी विश्वासघाती ने द्वार खोल दिये तथा अंग्रेजी सेना शहर में घुसने लगी और आखिर झांसी अंग्रेजों के हाथों चली गयी। रानी के तोपची गुलाम गौस व खुदाबख्श मारे गये।

अन्त में रानी ने अपने कुछ विश्वस्तों के साथ झांसी छोड़ने

का निश्चय किया तथा शत्रु के बीच रास्ता बनाती हुई अपने रक्षकों के साथ झाँसी से निकल गयीं। रास्ते में अंग्रेजों ने उनके पिता मोरोपन्त ताम्बे को पकड़ लिया और उन्हें फाँसी दे दी गयी। रानी का पीछा करते कैप्टिन बोकर को उन्होंने बुरी तरह घायल कर दिया तथा शाम होते-होते कालपी पहुँची गयी। वहाँ पहुँचते ही उनका प्यारा घोड़ा मर गया। शायद वह उन्हें कालपी सुरक्षित पहुँचाने के लिये जीवित था। दूसरे दिन सुबह रानी व राव साहब पेशवा का साक्षात्कार हुआ व उनके नेतृत्व में आगे का समर जारी रखने का निर्णय लिया गया। शुरू हुये युद्ध को अन्त तक निभाने के लिये दोनों ने प्रण किया तथा पुनः लक्ष्मीबाई व तांत्याटोपे ने घनघोर संग्राम की सिद्धता के लिये युद्ध शुरू किया।

सर ह्यूरोज का साथी ब्रिगेडियर विटलॉक भी १७ फरवरी को जबलपुर से चलकर सागर ओरछा बांदा के नबाव को पराजित कर किरवी के नाबांलिग नरेश माधवराव को अपने वश में करके अप्रैल के अन्तिम सप्ताह तक बुन्देलखण्ड का पूर्वी भाग जीत कर महोबा में छावनी डालकर रुक गया।

महारानी लक्ष्मीबाई, पेशवा राव साहब, बांकापुर का राजा, बांदा का नबाब शाहगढ़ नरेश आदि तो कालपी में थे पर तांत्या एक विशेष कार्य सिद्धि के लिये कालपी छोड़ चुका था। उसका लक्ष्य था कालपी के पतन के पश्चात् एक ऐसा श्रेष्ठ व यौद्धिक दृष्टि से अजेय स्थान ढूँढ़ना जहाँ पर ठहर कर लम्बे समय तक स्वतन्त्रता का युद्ध जारी रखा जा सके। इसके लिये ग्वालियर की रियासत से अधिक उपयुक्त स्थान कोई हो ही नहीं सकता था। अतः वह गुप्त रूप से ग्वालियर पहुँच वहाँ के सैनिकों, औहदेदारों, प्रशासकों व अन्य सम्भ्रान्त नागरिकों से मिलकर, वहाँ के प्रमुख जियाजीराव के विरुद्ध खड़ा करने में समर्थ हुआ। पहले भी मुरार-छावनी से अपने प्रभाव व कूट चातुर्य द्वारा वह पूरी की पूरी पलटन ही फतेहगढ़ ले जा चुका था। इस प्रकार ग्वालियर से सभी वर्गों से पूरा आश्वासन पाकर तांत्या पुनः कालपी की ओर चला।

इधर रानी साहब ने पेशवा की सेना के साथ कालपी से ४२ मील दूर कौंच गाँव में सर ह्यूरोज से टक्कर का निश्चय किया। व्यूह रचना कुछ अधिक प्रभावशाली न होने के कारण प्रबल युद्ध होने पर भी रानी को पीछे कालपी की ओर हटना पड़ा। पर जिस सराहनीय व संगठित तरीके से उसकी सेना पीछे हटी उसकी

तारीफ शत्रु ने भी की।

कौंच में पराजित होने के बाद भी कालपी में अंग्रेजों को एक और जोरदार टक्कर देने की तैयारी होने लगी। तथा राव साहब के नेतृत्व में कालपी युद्ध की व्यूह रचना होने लगी। 'रोज' की २५वीं पलटन को जोरदार टक्कर देती हुई रानी लक्ष्मीबाई ने इतना पराक्रम व रण कौशल दिखाया कि अंग्रेजी सेना पीछे हटने लगी। उनके तोपची एक-एक कर मारे गये। घोड़ों पर चलने वाला तोपखाना तितर-बितर हो गया तथा क्रान्तिवीर चारों ओर से आगे बढ़ने लगे। सबसे आगे लक्ष्मीबाई। इस भीषण प्रहार को कुन्द करने के लिये ह्यूरोज ने इमदादी १५० ऊँटों की सहायता से अपनी सेना को बचाया तथा इन्हीं ऊँटों के दस्ते के चलते पेशवा की सेना पीछे हटते-हटते कालपी तक वापिस पहुँच गयी। २२ मई को यह हार हुई तथा २४ मई तक छोटी-मोटी मुठभेड़ों के बाद ह्यूरोज कालपी में घुस गया पर रानी पेशवा व अन्य क्रान्तिकारी वहाँ से पहले ही जा चुके थे, तथा सभी गोपालपुर में एकत्रित हुये जहाँ पर तांत्या भी अपना ग्वालियर अभियान सफल करके सबसे मिला। विजय की तो कोई आशा नहीं थी पर अन्तिम सांस तक युद्ध करते रहने के लिये कटिबद्ध यह क्रान्तिकारी अपनी सेना लेकर ग्वालियर की ओर चल पड़े। जहाँ पर सभी ने उनका स्वागत किया पर सिन्धिया रियासत छोड़कर आगरा भाग गया। इस प्रकार ग्वालियर में क्रान्तिकारियों व ग्वालियर की सेना ने मिलकर एक बार पुनः युद्ध का बीड़ा उठाया। राव साहब पेशवा को नाना का प्रतिनिधि मानकर उनका राज्याभिषेक किया गया। दरबार पूरी आन-बान-शान के साथ सजाया गया तथा तोपों की सलामी इतनी जोर-शोर के साथ की गयी कि उसकी आवाज ह्यूरोज के कानों तक पहुँच गयी। यह सब ३० जून को सम्पन्न हुआ। इस राज्यारोहण का अंग्रेजों के लिये क्या अर्थ है इसे इतिहासकार मैल्सन इस प्रकार उद्धृत करता है। ''असम्भव सम्भव कैसे बन गया यह बताया गया है'' ह्यूरोज को यह भी मालूम हुआ कि अब और देर करने का क्या परिणाम होगा। क्रान्तिकारियों के हाथ से यदि ग्वालियर शीघ्र ही न छीना गया तो इसके क्या भयंकर परिणाम होंगे। इसकी कल्पना करना भी कठिन था। समय मिले, तो ग्वालियर पर दखल करने से जो असीम राजनैतिक व सैनिक शक्ति तांत्या ने प्राप्त की थी, मानव शक्ति धन युद्ध सामग्री के साधन उसे जो

मिले थे उसके बल पर कालपी की सेना को एकत्रित कर फिर से नई सेना खड़ी करेगा और भारतभर में मराठों का उत्थान होगा। अपने स्वाभाविक जीवट के बलबूते पर व दक्षिणी महाराष्ट्र में फिर से पेशवा का झण्डा फहराने में समर्थ होगा। उस प्रदेश से हमारी अर्थात् अंग्रेजी सेना निकाली गयी थी और यदि मध्य भारत में तांत्या को विशेष विजय मिल जाये तो वहाँ के लोग पुनः उस साधना में लग जायेंगे। इसी साधना को पूरा करने में उसके पूर्वजों ने अपनी शक्ति लगा दी थी, अपना खून बहाया था।

इस विचार से जहाँ ह्यूरोज ग्वालियर पर यथासंभव शीघ्र भारी आक्रमण करने की तैयारी कर रहा था वहीं राव साहब के क्रान्तिकारी, युद्ध की तैयारी करना छोड़ रास रंग, विलास शराब के नशे में समय बर्बाद करते रहे। उस वीरांगना की बातों पर ध्यान देने का समय किसी के पास नहीं था। रानी अपनी ओर से अपनी सैनिक टुकड़ी को पूरी तरह तैयार करती रही और इसी बीच ह्यूरोज ने ग्वालियर पर आक्रमण कर दिया। तांत्या क्रान्तिकारियों को संगठित कर मुकाबला करने आगे बढ़ा। पर मुरार छावनी उसके हाथ से निकल गयी। क्रान्तिकारियों में सन-सनी फैल गयी पर रानी ने आशा-निराशा, जय-पराजय का विचार छोड़कर युद्धभूमि में उतरने का निश्चय किया। कोटा की सराय का क्षेत्र उसकी रक्षा के आधीन था। अपने सैनिकों के साथ वह अंग्रेजों पर टूट पड़ी जहाँ भी उसे अपना पक्ष कमजोर नजर आता था वहीं पर पहुँचकर विद्युत गति से आक्रमण करती उस वीरांगना को देख अंग्रेज भी दाँतों तले उंगली दबाते थे। अपनी रक्षा पंक्ति को अभेध्य रखकर अंग्रेजों पर हमला करते व भारी पड़ी व कमाण्डर स्मिथ को उस दिन पीछे हटना पड़ा।

१८ जून को अंग्रेजों ने सभी दिशाओं से किले पर धावा बोल दिया। उस दिन नया घोड़ा रानी के लिये लाया गया। अपनी सहेली मुन्दर व काशी के साथ वह एक बार फिर अन्तिम युद्ध के लिये उतरी। राह में उनकी सहेली मुन्दर मारी गयी तथा युद्ध करते-करते वे आगे बढ़ी तभी उनके सिर के दाहिनी ओर एक गोरे ने आक्रमण किया। जिससे उनका दाहिना हिस्सा घायल हो गया तथा आँख बाहर निकल आयीं। एक और वार उनकी छाती पर भी पड़ा पर गिरने से पहले उन्होंने उस सैनिक को मार दिया तथा भूमि पर गिर पड़ी। उनके साथी रामचन्द्रराव देशमुख ने उन्हें उठाकर पास ही

बाबा गंगा दास की झौंपड़ी में ले जाकर घास पर लिटा दिया। बाबा गंगादास ने उन्हें पानी पिलाया। रानी की मृत्यु हो गयी। अंग्रेजों के आने से पहले ही बाबा ने अपनी झौंपड़ी को ही आग लगाकर उनका दाह संस्कार कर दिया। इस प्रकार वीर शिरोमणि झाँसी की रानी ने इस क्रान्ति के महायज्ञ में अपने प्राणोत्सर्ग कर दिये।

स्वातन्त्र्य समर के विविध आयाम : सुषुप्त व भीरु रियासतें

यदि हम अब तक हुये समर पर दृष्टिपात करें तो यह तथ्य निश्चय ही उजागर होगा कि जहाँ सारा उत्तर भारत यथा देहली मेरठ से लेकर अवध बिहार तक इस संग्राम में पूरी ताकत से अंग्रेजों के विरुद्ध उठ खड़ा हुआ था वही देश के बाकी हिस्सों में यथा दक्षिण भारत महाराष्ट्र आदि में यह हल्की सुगबुगाहट व कशमसाहट के आगे नहीं बढ़ सका। इसका कारण भी स्पष्ट है कि जिन दिनों उत्तरी भारत में क्रान्ति की योजना प्रगति पथ पर थी उन्हीं दिनों दक्षिण में भी क्रान्ति का प्रचार करने के लिये दूत भेजे गये थे। वे प्रत्येक नगर व संस्थान में जा रहे थे। वहाँ भी यह प्रतिज्ञा दौहराई जा चुकी थी कि जब उत्तर उठेगा तो दक्षिण भी उठकर खड़ा हो जायेगा। दक्षिण भारत ने विद्रोह करना तो याद रखा पर वह उत्तरी भारत के साथ उठना स्मरण न रख सका। क्रान्ति की सफलता का मूल मन्त्र है कि जब एक बार क्रान्ति का विस्फोट हो जाये तो क्षणमात्र के लिये भी असमंजस में न रहते हुये तुरन्त ही उस युद्ध में कूद पड़ना चाहिए। तब जीवन मृत्यु यश अपयश की चिन्ता किये बगैर युद्ध में कूद पड़ना ही श्रेयस्कर है।

दुर्भाग्य से दक्षिण भारत ने इस तत्त्व को विस्मृत कर दिया और जब उत्तर में क्रान्ति की ज्वाला पूरे वेग से धधक रही थी तो उसके साथ ही न उठकर वे धीरे-धीरे सक्रिय रहे किन्तु असमंजस ग्रस्त भी रहे। सफलता के प्रति अत्यधिक चिन्ता और उसके फलस्वरूप जोश में आकर अनुपम विद्रोह न करने के कारण उन्हें अपयश ही अपयश प्राप्त हुआ। अतः कोल्हापुर या धारवाड़ जहाँ १० अगस्त को क्रान्ति शुरू हुई तथा कोल्हापुर नरेश के छोटे भाई चीमाजी ने नेतृत्व किया उस विद्रोह को पूरी तरह कुचल दिया गया तथा उन्हें फाँसी दे दी गयी। इसी प्रकार बेलगाँव वाले ठाकुर सिंह

सतारा के रंगोजी बाबू का भी यहीं अन्त हुआ। बम्बई उन दिनों आलसियों प्रमादियों व देशद्रोहियों का जमावड़ा थी। अतः ऐसे स्थान पर प्रारम्भ हुये विद्रोह को भी पूरी ताकत से कुचल दिया गया। नागपुर जबलपुर की ज्वालायें भी शान्त कर दी गयी तथा जबलपुर में गौड़ जाति के राजा शंकर सिंह के अपूर्व शौर्य प्रदर्शन करने पर भी उन्हें पकड़कर पुत्र समेत फाँसी दे दी गयी। ब्रिटिश सत्ता का मर्म स्थान हैदराबाद उन दिनों अफजल-उद्दौला निजाम के हाथ में था तथा उनका दीवान सर सलाराजंग नाम का व्यक्ति था। ये दोनों ही पराकाष्ठा तक अंग्रेजों के भक्त थे इन्होंने अंग्रेजों का साथ ही नहीं दिया अपितु अपने क्षेत्र में हो रही क्रान्ति को दबाने में पूरी ताकत झौंक दी। हैदराबाद का सारे दक्षिण पर इतना प्रभाव था कि यदि निजाम व दीवान एक साथ राष्ट्र सेवा के लिये उठ खड़े होते तो सारा दक्षिण भारत ही क्रान्ति की चपेट में आ जाता। अस्तु।

हैदराबाद के पास ही एक राज्य जौहरापुर के तरुण राजा ने क्रान्ति का बिगुल बजाया और फाँसी चढ़ गया। इसी प्रकार असमंजस ग्रस्त राज्यों के नायक यथा नरगुंद, कोमलदुर्ग के भीमराव सावंतवाणी के अधिपति आदि भी विद्रोह का ठीक समय निर्धारण की चतुरता के अभाव, संगठन की अपूर्णता व एकाकी और असंगठित धन-बल के आधार पर दक्षिण में हुई क्रान्तियों से कोई भी प्रभावी बात सिद्ध नहीं हुई।

पंजाब प्रान्त में क्या हुआ और वहाँ क्रान्ति कैसे असफल हुई यह हम पहले ही बता चुके हैं। राजपूताना में जन साधारण की सहानुभूति क्रान्तिकारियों के साथ थी। पर वहाँ के नरेश किसी भी विशेष स्थिति के उत्पन्न होने से पूर्व किसी भी एक पक्ष को प्रकट रूप से सहायता देने को तैयार नहीं होते थे। पर यह भी सच है कि जब-जब इन नरेशों ने गोरों के दबाव में आकर अपनी सेना अंग्रेजों के साथ भेज दी। तब-तब उन्हीं राष्ट्र भक्त सैनिकों ने अपने ही देश भाईयों के विरुद्ध संग्राम करने से साफ इन्कार कर दिया। ऐसे उदाहरण प्रचुर मात्रा में भरे पड़े हैं।

निष्कर्ष यह निकलता है कि उत्तरी भारत ने इस स्वातन्त्र्य युद्ध में जैसी एकता साहस व दृढ़निश्चय व्यक्त किये वैसा ही यदि दक्षिण में भी उत्पन्न हो जाती तो यह सुनिश्चित था कि सारे ब्रिटेन की सेना भी युद्ध में उतर पड़ती तो भी उसकी भयानक पराजय

निश्चित थी। अस्तु।

अवध का अन्तिम रण व क्रान्ति का पटाक्षेप

दक्षिण में चल रही इन सुषुप्त क्रान्ति की गतिविधियों पर दृष्टिपात कर हम एक बार पुनः अवध की ओर चलते हैं। जहाँ करीब दो वर्ष से शक्तिशाली गोरी सत्ता से पूरे मनोयोग से जूझता-जूझता थका हुआ निराशा से ग्रसित यह प्रान्त एक बार फिर आशा-निराशा, जय-पराजय, जीवन-मृत्यु की परवाह किये बिना पूरी ताकत के साथ ब्रिटिश सत्ता से टक्कर लेने को तैयार था। लॉर्ड केनिंग के घोषणा पत्र जिसमें क्रान्तिकारियों के क्रान्ति समाप्त करने की अपील थी व साथ में उन्हें क्षमा करने का भी आश्वासन तथा ऐसा न करने पर कठोर कार्यवाही की धमकी आदि का लॉलीपॉप देने का प्रयास किया गया था। इसकी परवाह न करते हुये क्रान्तिकारी अपने निश्चय पर अडिग थे कि उसी समय सबके पूज्यनीय व लाडले मौलवी अहमदशाह की हत्या का समाचार उन्हें मिला। मन्द होती हुई अग्नि पुनः पूरे वेग के साथ दहक उठी। और मौलवी की हत्या पर प्रतिशोध-प्रतिशोध की गर्जना करता हुआ, सारा ही अवध एक बार पुनः उठ खड़ा हुआ।

सारे ही क्रान्ति के नायकों की सेना अवध में सब ओर से एकत्र होकर सारे ही क्षेत्र में अंग्रेजों से भिड़ते हुये ताण्डव मंचाने लगी। यथा रूहेलखण्ड के खान बहादुर अपने चार हजार सैनिकों, फर्रुक्खाबाद के नेता के साथ ५ हजार, विलायत शाह के साथ ३ हजार, नाना साहब के साथ ३ हजार, अली खाँ मेवाती, पीलीभीत से निजाम अली खाँ शत्रुओं के साथ घमासान करने पर उतारू थे तो दूसरी ओर घाघरा नदी के तट पर बेगम हजरत महल और हेमू खाँ राजा राम बहुनाथ सिंह, चाँद सिंह, हनुमंत सिंह एवं अन्य बड़े-बड़े जमींदार अपनी सम्पूर्ण सेना लेकर अवध की स्वतन्त्रता के एक और प्रयास में लगे थे। इसी भाँति शहजादा फिरोजशाह, कोया के दुर्ग के निरपत सिंह तथा देश प्रेम की प्रेरणा के लिये दृढ़ता व उत्साह से बढ़ता राजा वेणी माधव, अर्थात् उस समय क्रान्ति युद्ध के जो भी क्रान्तिकारी जीवित बचे थे वे सब के सब अपने सैन्य बल के साथ अवध की हर एक दिशा से प्रवेश करके सारे ही क्षेत्र में उन शक्तिशाली और अब तक अजेय बन चुके अंग्रेजों से लोहा लेने के लिये पूरी ताकत से जूझने लगे। उनकी

वीरता, शौर्य व राष्ट्र प्रेम तथा बलिदान की एक झलक आंग्लवीर जनरल होपग्राण्ट अपनी पुस्तक में इस प्रकार देता है—''इतने पर भी उनके आक्रमण बड़े प्रचण्ड होते थे, और उन्हें विफल बनाने के लिये हमें कठोर परिश्रम करना पड़ा, सुदृढ़ साहसी जमींदारों ने दो तोपों सहित हमारी सेना के पिछले भाग पर आक्रमण कर दिया। मैंने हिन्दुस्तान में अनेक संग्राम देखें है, और विजय अथवा मृत्यु वरण करने के लिये कृतसंकल्प सुभट वीरों को भी देखा है। किन्तु जिस असाधारण वीरता का प्रदर्शन इन जमींदारों ने किया वैसी वीरता शायद ही कहीं देखी होगी। सर्वप्रथम उन्होंने हडसन के अश्वारोही दल पर हमला किया और उसे तितर-वितर कर दिया और उसकी दो तोपें भी विचलित सी हो गयी। उस समय मैंने सातवीं हुजार पलटन के दस्तों को आगे बढ़ने का आदेश दिया व उनके साथ चार तोपें भी दीं। ये तोपें विद्रोहियों पर केवल ५०० गज के फासले से ही अग्नि वर्षा कर रही थीं। विद्रोही हँसिया से कटे हुये भुट्टों की तरह गिरते जा रहे थे। उनके प्रमुख ने जो काफी मोटा था निर्भय होकर दो पताकायें अपनी तोपों के समक्ष गाड़ दी। वस्तुतः वह वहीं डटे हुये रहने का संकेत था पर हमारी तोपों से इतने प्रचण्ड प्रहार हो रहे थे कि जो भी समीप आता धराशाही हो गया। हमारी सहायता के लिये दो और दस्ते आ पहुँचे। अतः बचे हुये विद्रोहियों को हटना पड़ा। फिर भी वे हम पर भाले व तलवारें चमकाते हुये चुनौती देते रहे, केवल उन दो तोपों के समीप ही १२५ शव पड़े थे। तीन घण्टे के संग्राम के बाद विजय श्री हमारे हाथ रही।''

होफग्राण्ट द्वारा वर्णित इसी प्रकार के मंजर सारे अवध में हो रहे थे तथा पूर्वी अवध मध्य अवध, उत्तरी अवध तथा सम्पूर्ण अवध में इसी प्रकार का घमासान मचा था। व अवधवासी भयंकर ताण्डव करने में संलग्न थे। अंग्रेजों को सभी दिशाओं से प्रतिदिन सैनिकों की पूर्ति व बढ़ोतरी हो रही थी।

इस प्रकार जून से दिसम्बर पर्यन्त अवध रण में जूझता रहा तथा इसी बीच ईस्ट इण्डिया कम्पनी से शासन की सारी डोर इंग्लैण्ड की महारानी विक्टोरिया ने ले ली। रानी विक्टोरिया ने भी एक विस्तृत घोषणा पत्र के द्वारा माफीनामा आदि निकाला पर स्वतन्त्रता के लौ में पूरी तरह प्रदीप्त अवधवासियों ने अपने लक्ष्य से टस से मस नहीं होते हुए लड़ाई जारी रखी।

इस प्रकार अप्रैल १९५९ आते-आते क्रान्तिकारियों के पास शंकरपुर, टुण्डिया खेड़ा, रायबरेली, सीतापुर, आदि प्रदेश अभी भी बचे थे पर इन स्थानों पर हुई पराजय के बाद वे नेपाल की सीमा तक पहुँचे तथा अंग्रेजों के दबाव के कारण उन्हें नेपाल की ओर अन्दर प्रवेश करना पड़ा। इस आशा से कि शायद जंगबहादुर उनकी सहायता करे।

नाना साहब, बाला साहब व बेगम हजरत महल अपने पुत्र तथा ६० हजार क्रान्तिकारियों सहित नेपाल पहुँचे। बाकी सभी क्रान्तिकारी वीरगति प्राप्त कर चुके थे। नेपाल के राजा जंगबहादुर से कई दौर पर चली वार्ता पूरी तरह निष्फल रही। जंगबहादुर ने साफ कह दिया कि यदि उसे क्रान्तिकारियों की सहायता ही करनी होती तो वह क्रान्तिकारियों की हत्या करने के लिये अपने हजारों सैनिक भारत क्यों भेजता?

हर तरफ से निराश क्रान्तिकारियों ने आगे युद्ध चालू रखने का कोई जरिया न देख अन्त में अपने शस्त्र छोड़ घरों को वापिस जाने का निर्णय लिया तथा जो घर नहीं जाना चाहते थे उन्होंने वहीं वनों में रहकर उपवास करते हुये प्राणोत्सर्ग कर दिये। कालान्तर में बाबा साहब पेशवा ने स्वेच्छा से धारण की हुई दरिद्रता में वनों में अपने प्राण गँवाये। बेगम को अपने पुत्र सहित नेपाल में ही रहने की अनुमति मिल गयी।

नाना साहब के बारे में कुछ भी पता नहीं चल सका। समय-समय पर पत्र-पत्रिकाओं में उनके सम्बन्धित प्रकाशित लेखों के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि वे कुछ समय तक महर्षि स्वामी दयानन्द के संरक्षण रहे तथा वहाँ से साधु वेश धारण कर छुपते-छुपाते सौराष्ट्र के एक छोटे गाँव के मन्दिर में रहने लगे। ग्रामवासी उनके तेजोमयी व्यक्तित्व से प्रभावित थे। वह उन पर अपार श्रद्धा रखते थे। १८५७ की चर्चा होने पर ग्रामवासियों के अनुसार उनकी आँखों में एक अजीब सा तेज आ जाता था। नाना साहब की दो पत्नियाँ पूना में रहती थीं तथा कभी-कभी वे उनसे मिलने जाते रहते थे। किसी भी प्रकार छिपे हुये जीवन व्यतीत करते-करते सन् १९०५-१९०६ के आस-पास उनका स्वर्गवास हो गया।

अवध के महासंग्राम के बारे में ब्रिटिश लेखक मैल्सन इस प्रकार लिखता है—''सिपाहियों ने स्वतन्त्रता के लिये जिस क्रान्ति

युद्ध का श्रीगणेश किया था उसमें अवध की प्रजा ने बढ़-चढ़कर भाग लिया। वे स्वदेश की स्वतन्त्रता के लिये जूझ पड़े। वे कितनी वीरता सहित संग्राम कर रहे थे इसका विवरण हम प्रस्तुत कर चुके हैं। परन्तु जितने दीर्घ काल तक अवध की जनता संग्राम करती रही उतनी वीरता से हिन्दुस्तान के किसी भी अंचल में संग्राम नहीं हुआ था। सन् १८५६ के मध्य से ही उन पर जो अत्याचार व अन्याय हुये थे उससे उनका अन्त:करण इस्पात की तरह कठोर हो गया था और उन्होंने सुदृढ़ संकल्प भी ग्रहण कर लिया था। यदा-कदा उन्हें मारकर पलायन भी करना पड़ जाता था। इस आशा से कि वे ऐसा करते थे कि किसी अन्य दिन वे विजय के लिये संघर्ष करेंगे। अन्ततः लॉर्ड केनिंग ने अवध पर एक प्रचण्ड बवण्डर के समान अन्तिम आक्रमण किया। शेष बचे सैनिकों को नेपाल के वनों में आश्रय ढूँढ़ने पर विवश होना पड़ा। वहाँ भी जो वीर बचे रह गये थे उन्होंने आत्मसमर्पण करने के स्थान पर अथवा अपना जीवन समर्पण करना वरेण्य माना। दीर्घ काल तक चले इस संघर्ष में जब उन्हें विजय की कोई आशा नहीं रही तो अवध के श्रमिकों, कृषकों और ताल्लुकेदारों तथा व्यापारियों ने पराजय स्वीकार कर लिया।''

तांत्या टोपे, राव साहब व शहजादा फिरोजशाह का बलिदान

लगे हाथों इस प्रकरण का पटाक्षेप करते हुये हम यह जानने का प्रयास करते हैं कि क्रान्ति के बाकी तीन नायक यथा तांत्या टोपे, राव साहब पेशवा व शहजादा फिरोजशाह का क्या हुया? २० जून १८५८ को महारानी लक्ष्मी के बलिदान के साथ ही ग्वालियर का पतन होने पर तांत्या टोपे व राव साहब अपनी बची-खुची सेना सहित ग्वालियर से निकलकर जाबरा तथा अलीपुर नामक स्थान पर भी अंग्रेजों को टक्कर देकर हारते हुये सरमथुरा नामक ग्राम में चले गये। बदली हुयी परिस्थिति में उन्होंने अब सीधे युद्ध न करके छापामार पद्धति से अंग्रेजों से लोहा लेने का निर्णय लिया।

साथ ही सैनिकों के लिये धन, रसद, अस्त्र-शस्त्र आदि की व्यवस्था करने के लिये मध्य भारत की देशीय रियासतों से या तो उनकी इच्छा से या कठोरता से उपरलिखित सामान लिया जायेगा

तथा इस युद्ध को आगे चलाया जायेगा। उत्तर और मध्य भारत में तो पग-पग पर देशी रियासतें विद्यमान थीं तथा उनमें वर्ष भर के लिये सैनिकों के लिये रसद व आवश्यक शस्त्रास्त्र जमा कर लिये जाते थे। पास-पास रियासतों के होने से रसद को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने की आवश्यक भी नहीं थी।

उधर अंग्रेज भी यह सोचकर कि ग्वालियर आदि की पराजय के बाद तांत्या को चारों ओर से घेरकर बन्दी अधिक से अधिक एक डेढ़ माह में बना लिया जायेगा, बड़ी प्रसन्नता का अनुभव कर रहे थे और तांत्या व राव साहब की सेना को जहाँ-जहाँ ये क्रान्तिकारी गये वहाँ-वहाँ चारों ओर से घेरकर वश में करने में उन अंग्रेजों ने कोई कमी नहीं उठा रखी, फिर भी उस छापामार युद्ध में श्रेष्ठ निपुणता प्राप्त युद्ध कौशल में दक्ष व विपरीत से विपरीत परिस्थिति में भी अपनी चारों ओर से घिरी सेना को अंग्रेजों के व्यूह से सफलतापूर्वक बाहर निकालकर ले जाने की अद्वितीय योग्यता रखने वाले इस नरव्याघ्र मराठा श्रेष्ठ को करीब दस माह तक भी ये गोरे पकड़ नहीं सके। इस अवधि में हुये युद्धों के इस चूहा-बिल्ली के खेल को स्थानाभाव के कारण विस्तार से लिखना तो सम्भव नहीं है फिर भी इसके थोड़े से अंश को यहाँ प्रस्तुत किया जाता है।

पूरे उत्तर भारत में क्रान्ति अपने उतार पर थी तथा अंग्रेज सत्ता अपने अजेय होने का दम्भ भर रही थी। तभी तांत्या व राव साहब ने एक योजना के अन्तर्गत विचार किया कि किसी प्रकार यदि नर्मदा पार कर दक्षिण में पहुँचकर क्रान्ति का एक बार पुनः प्रारम्भ किया जा सके तो उत्तम रहेगा तथा स्वतन्त्रता संग्राम को आगे चलाया जा सकेगा। इस उद्देश्य से अपने चारों ओर उसका शिकार करने को बेचैन अंग्रेजी सेना की आँखों में धूल झोंकते हुये कहीं हारते हुये कहीं जीतते हुये तांत्या पहले सारे ही राजस्थान में यथा भरतपुर, जयपुर, उदयपुर, भीलवाड़ा, झालड़ापाटन, इन्दौर आदि स्थानों पर अंग्रेजों को अपनी गति से भ्रमित करता हुआ नर्मदा पार करने का उपाय करने लगा साथ ही अंग्रेज उसकी इस अनोखी चाल को देखकर दुविधा में थे कि अन्त में तांत्या व राव साहब ने त्वरित गति से वेतवा नदी पार कर कजूरी व रामगढ़ में अंग्रेजों को अपने हाथ दिखाते हुये दक्षिण की ओर आगे बढ़ते रहे। अपनी विचित्र गति से शत्रु को चकमा देते हुये उन्होंने विद्युत वेग से

घाटियाँ लाँघी, सरितायें पार कीं, वन प्रान्तरों को चीरा और दक्षिण की ओर बढ़ना जारी रखा। अन्ततः नर्मदा के तट पर पहुँचकर होशंगाबाद के पास उन्होंने नर्मदा पार की तथा शीघ्रता से बढ़ते हुये जनवरी १८५९ में नागपुर जा पहुँचे।

मैल्सन लिखता है कि तांत्या ने जिस जीवट और हट सहित अपनी योजना कार्यान्वित की उसकी प्रशंसा न करना असम्भव है। उनकी तोपें छीन ली गयी थीं किन्तु तांत्या के सैनिकों ने नितान्त शीघ्रता सहित मार्ग तय करने का अनोखा उदाहरण पेश किया। इस कला में इन देशी सिपाहियों का कोई भी मुकाबला नहीं कर सकेगा। मैं तो यहाँ तक भी कहूँगा कि विश्व की कोई भी सेना उनका सामना नहीं कर पायेगी। इस स्थिति में भी तांत्या ने अपने बड़ौदा जाने का लक्ष्य नहीं छोड़ा। बड़ौदा दरबार में नाना साहब के पक्ष के काफी लोग थे। अतः वे तो तांत्या के आगमन की वाट जोह रहे थे..........। अस्तु।

तांत्या के नागपुर पहुँचते ही हैदराबाद का निजाम व मद्रास का गर्वनर लॉर्ड हैरिस, बम्बई का लॉर्ड एलफिस्टन व कलकत्ता के लॉर्ड केनिंग थर्रा उठे। परन्तु समय तांत्या व क्रान्तिकारियों के हाथ से निकल चुका था। कारण यत्र-तत्र दक्षिण में उठी क्रान्ति की ज्वाला पर पानी पड़ चुका था अब तो सम्पूर्ण राष्ट्र भयंकर रक्त स्त्राव के उपरान्त शिथिलगात्र व संज्ञा विमूढ़ होकर रह गया था। तथा दक्षिण के लोग यहाँ तक कि स्वयं मराठे भी तांत्या की सहायता करने में भय खा रहे थे। वहाँ की यह अवस्था देख तांत्या व राव साहब ने एक बार पुनः नर्मदा पार कर बड़ौदा जाने का प्रयास किया पर अंग्रेजों के चक्रव्यूह के कारण वह वहाँ नहीं पहुँच सका।

इस बीच क्रान्तिकारी नेताओं में भी यह चर्चा चल रही थी कि अब इस संघर्ष को समाप्त कर देना चाहिए इसी मंथन के दरम्यान तांत्या व राव साहब २५ दिसम्बर को बांसवाड़ा होते हुये इन्दुगढ़ पहुँचे। इसी स्थान पर शाहजादा फिरोजशाह भी अपनी अदम्य वीरता का परिचय देकर गंगा व यमुना पार करता हुआ इन्दुगढ़ पहुँचकर इन क्रान्तिकारियों से आ मिला। २१ जनवरी को इन तीनों ने ही क्रान्ति को समाप्त करने का निश्चय किया तथा अपनी-अपनी सेनाओं से वापिस जाने को कह दिया। तब तांत्या अपने दो-तीन सेवकों के साथ ग्वालियर अपने मित्र मानसिंह के

पास पहुँच गया तथा उस विश्वासघाती ने कुछ समय बाद तांत्या टोपे को ७ अप्रैल १८५९ को अंग्रेजों के हवाले कर दिया। जाहिर है मुकद्दमे का दिखावा कर उस अमर सेनानी को फाँसी दे दी गयी। तथा पेशवा का यह राज्यनिष्ठ सेवक १८५७ के स्वातन्त्र्य समर का महानायक, हिन्दुस्तान का निर्भीक वीर, धर्मरक्षक, देशाभिमानी, कुशल सेनापति तांत्या टोपे का इस प्रकार संसार से विदा लेने पर १८५७ की क्रान्ति का पटाक्षेप हो गया।

कालान्तर में वीर राव साहब को भी तीन वर्ष बाद बन्दी बना दिया गया तथा २० अगस्त १८६२ को उन्हें फाँसी दे दी गयी। शहजादा फिरोजशाह भाग्यशाली रहा। जो वह छुपता-छिपाता भारत से निकलकर करबला पहुँच गया तथा वहीं उसकी मृत्यु हो गयी।

हमारे सामने अगला प्रश्न उठता है कि यह क्रान्ति सफल हुई या असफल तथा क्या इसकी असफलता का कारण अपरिपक्व अवस्था में ही इसका फूट पड़ना तो नहीं है। अपरिपक्व अवस्था में क्रान्ति होने के सम्बन्ध में हमें कहना है कि यह असफलता का कारण नहीं है। अपितु इस क्रान्ति के प्रारम्भ होते ही सारा उत्तर भारत अंग्रेजी सत्ता से काफी समय तक मुक्त रहा था। अतः क्रान्ति कराने की तैयारी तो पूरी थी पर उसके बाद उत्पन्न स्थिति से निपटने के लिये हमारे क्रान्ति नायकों के पास कोई कार्यक्रम नहीं था। अतः तीन-चार मास के लिये उत्पन्न उस 'शून्य स्थिति' को हम अपने हित में प्रयोग नहीं कर सके।

इस दृष्टि से यह क्रान्ति असफल रही कि हम १८५७ में भारत को स्वतन्त्र नहीं करा सके। पर यदि दूसरी प्रकार से सोचें तो यह क्रान्ति बहुत ही सफल रही क्योंकि इससे उत्पन्न चिंगारियों व स्फुलिंगों की तीव्रता व आलोक इतना विशाल था कि इनके प्रकाश में भविष्य के क्रान्तिकारियों का मार्ग प्रशस्त हुआ और उन्होंने १९४७ आते-आते एक और सशस्त्र आक्रमण अमर सेनानी सुभाषचन्द्र बोस की आजाद हिन्द सेना द्वारा अंग्रेजों पर करके भारत को अंग्रेजों से मुक्त कराने में अपना अपूर्व योगदान दिया।

अगले खण्ड में हम १८५७ पश्चात् की कुछ ऐसी क्रान्ति-विभूतियों का संक्षिप्त परिचय देते हैं जिन्हें राष्ट्र उनकी अपूर्व सेवा के लिये सदा याद रखेगा।

खण्ड-२

सन् १८५७ पश्चात् की कुछ क्रान्तिकारी विभूतियों का संक्षिप्त परिचय

राम सिंह कूका

प्रभावशाली व्यक्तित्व के धनी रामसिंह कूका का जन्म लुधियाना के भैणी स्थान में १८वीं सदी के अन्त में हुआ। उन दिनों महाराजा रंजीत सिंह का शासन समाप्त प्राय: हो चुका था तथा शीघ्र ही पंजाब में अंग्रेजों का अधिपत्य व अत्याचार चलने लगे। मातृभूमि को अंग्रेजों से छुड़ाने को व्यग्र राम सिंह को कोई रास्ता नहीं सूझा तो साधु वेश धारण कर विचरण करने लगे तथा लोगों की अपने में भक्ति देख उन्होंने एक 'नामधारी सम्प्रदाय का कूका सम्प्रदाय' नामक एक धार्मिक संगठन इस उद्देश्य से बनाया कि इसके लवादे के अन्दर देश को अंग्रेजों से मुक्त कराने का प्रयास किया जाये। उस समय तक क्रान्तिकारियों के समक्ष कोई भी निभ्रम रूप-रेखा राष्ट्र को स्वतन्त्र कराने के लिये नहीं थी। अत: Trial & Error और Hit & Run जैसे ही तरीके अपनाये जा सकते थे। अत: राम सिंह कूका ने भी अपनी इस क्रान्ति का (जो बाद में असफल हुई) सूत्रपात गोवध निषेध अथवा गौरक्षा से किया। और भक्तों से कहा कि गौरक्षा की राह में अड़चन डालने वालों का वध करने में कोई हानि नहीं है। उनका उद्देश्य तो अंग्रेजों के विरुद्ध उत्तेजना भरना तथा पर गोवध में तो भारतीय मुसलमान भी आते थे। अत: यह निशाना ठीक नहीं बैठा। शिष्यों में बात फैल गयी और उन्होंने अपनी उत्तेजना में हर एक गोवध करने वाले को अपना शत्रु समझा। जिसमें कि मुस्लिम भी थे।

साथ ही कूका ने असहयोग व बायकाट वाला विचार भी अपने शिष्यों के समक्ष रखा तथा स्वदेशी प्रयोग व अपने ही स्कूलों में शिक्षा प्राप्त करने आदि बातें पर भी बल दिया। इस प्रकार हम देखते हैं कि बाद में असहयोग आन्दोलन व स्वदेशी के जो विचार गाँधी जी ने दिये उसके बीज बहुत पहले ही कूका ने डाल दिये थे। अंग्रेज सरकार को कूका सम्प्रदाय में खतरा दिखने लगा तो उसने उस पर हल्की रोक लगा दी। कूका ने भी अपने संगठन को गुप्त संस्था का रूप दे दिया। तथा पंजाब को २२ हिस्सों में बाँटकर वहाँ एक-एक अधिकारी की नियुक्ति कर दी तथा उनके द्वारा अपने-अपने क्षेत्र में प्रभाव बढ़ाने के वहाँ के लोगों को अपने

अनुरूप कर तथा सरकारी अफसरों को भी अपनी ओर मिलाकर शस्त्रास्त्रों को इकट्ठा करके किसी निश्चित दिन सशस्त्र क्रान्ति करा दी जाये, ऐसा विचार बनाया।

५ वर्ष तक कार्य अन्दर ही अन्दर चलता रहा। अतः अंग्रेज सरकार ने सन् १८६९ में उनके ऊपर पड़ी रोक हटा दी। संस्था एक बार फिर खुल के सामने आयी। उन्हीं दिनों कुछ कूका भक्त अमृतसर जा रहे थे। रास्ते में कुछ बूचड़ गायों को ले जाते दिखाई दिये वे सब मुस्लिम थे। उन शिष्यों ने तैश में आकर उन सभी बूचड़ों को मार डाला। जाहिर है कि गौरक्षा का निशाना गलत बैठा। मारना तो अंग्रेजों को था पर हमला अपने ही देशवासियों पर कर दिया गया। अंग्रेजी सरकार हरकत में आ गयी तथा इसी बहाने लोगों पर अत्याचार करने शुरू कर दिये।

पुनः सन् १८७२ की १३ जनवरी को कुछ नामधारी जा रहे थे राह में मालेरकोटला राज्य से गुजरते समय कुछ मुसलमानों के साथ उनकी लड़ाई हो गयी तथा अच्छाखासा दंगा हो गया। एक नामधारी पकड़ लिया गया व उसकी खूब पिटाई हुई और उस पर गाय का खून छिड़क दिया गया। किसी प्रकार वह बचकर भाग निकला और भैणी पहुँचकर उसने राम सिंह कूका से कहा "गुरु तू तो कहता है कि रुके रहो, धर्म राज्य आयेगा तो क्या धर्म राज्य चुप रहने से आ जायेगा?" अब तो हमें विद्रोह करने की आज्ञा दे दो।

गुरु तो कुछ कह नहीं पाये पर शिष्यों ने विद्रोह करने की ठान ली और मालेरकोटला राज्य पर हमला कर दिया। बेचारे राम सिंह का सपना चूर-चूर हो गया। हमले में साहसी ८६ आदमी पकड़े गये और तोप से उड़ा दिये गये सरकार ने समझ लिया कि यद्यपि राम सिंह कूका के विरुद्ध कोई मुकद्दमा नहीं बनता तब भी उसे छोड़ना खतरे से खाली नहीं है। अतः सन् १८१८ के एक नियम के अन्तर्गत उन्हें गिरफ्तार कर भारत से बाहर बर्मा भेज दिया गया। जहाँ उनकी मृत्यु हो गयी।

इसमें सन्देह नहीं कि नामधारियों ने देश के सामने एक उदाहरण प्रस्तुत किया। कूका लोगों की वीरता व्यर्थ नहीं गयी। पंजाब के सैकड़ों लोक गीतों में उनकी वीरगाथा गाई गई है। १८५७ के मात्र १५ वर्ष बाद ही एक अन्य असफल सशस्त्र क्रान्ति का होना उन दिनों के क्रान्तिकारियों के अन्तर्मन में धधकती

ज्वाला को इंगित करता है जो सदैव ही असफलता मिलने पर प्रखर से प्रखर तक होती गयी तथा अन्त में राष्ट्र को स्वतन्त्र कराकर ही छोड़ा।

लोकमान्य बालगंगाधर तिलक

२३ जुलाई १८५६ को गंगाधर पंत के घर में जन्मे इस युग पुरुष को आम भारतीय एक लोकप्रिय काँग्रेसी नेता के रूप में जानते हैं, जो इस व्यक्तित्व का मात्र २० प्रतिशत परिचय है। राष्ट्रमुक्ति के आन्दोलन में प्रारम्भ में ये एक प्रखर क्रान्तिकारी के रूप में ही प्रविष्ट हुये तथा वर्षों तक उसी मार्ग पर चलते रहे। जिसका कुछ प्रमाण निम्नलिखित है—

(क) ब्रिटिश सरकार ने प्रथम महायुद्ध के बाद रौलट एक्ट कमेटी बनाई थी जिसमें तिलक को क्रान्तिकारियों के सरगना के रूप में चित्रित किया गया है तथा श्री बालशास्त्री हरिदास ने अपनी अंग्रेजी पुस्तक में भी लोकमान्य तिलक के क्रान्तिकारी कार्यकलापों पर पूरा एक अध्याय लिखा है।

(ख) उनके क्रान्तिकारी विचारों का परिचय हमें उनके द्वारा सम्पादित व प्रकाशित 'केसरी' के लेखों में मिलता है। गणपति उत्सव का सूत्रपात तिलक ने ही इस उद्देश्य से किया था कि इस उत्सव के बहाने लोगों में राजनैतिक चेतना का संचार किया जाये। एक गणपति श्लोक का उद्धरण ही यहाँ यथेष्ट होगा। हाय, गुलामी में रहकर भी तुमको लाज नहीं आती, इससे अच्छा यह है कि आत्महत्या कर डालो। उफ! दुष्ट हत्यारे कंस की तरह गोवध करते हैं। गौमाता को इस दयनीय दशा से छुड़ा लो, मर जाओ पर पहले अंग्रेजों को मारो तो सही। चुप मत बैठे रहो, बेकार पृथ्वी पर बोझ मत बढ़ाओ। हमारे देश का नाम तो हिन्दुस्तान है। फिर यहाँ अंग्रेज क्यों राज करते हैं।

एक साधारण सामान्य बुद्धि वाला व्यक्ति भी इस वक्तव्य में छुपी क्रान्ति की भावना व राजनैतिक सन्देश को भली-भाँति समझ सकता है। रौलट एक्ट की समिति की रिपोर्ट में यह श्लोक उद्धृत है।

(ग) गणपति उत्सव की लोकप्रियता से उत्साहित होकर तिलक ने अपने आन्दोलन को और राजनैतिक रूप देने के लिये 'शिवाजी उत्सव' चालू किया। रौलट कमेटी में उद्धृत श्लोक इस

प्रकार है—''केवल बैठे-बैठे शिवाजी की गाथा की आवृत्ति करने से किसी को आजादी नहीं मिल सकती। हमें तो शिवाजी और बाजीराव की तरह भयंकर कृत्यों में जुट जाना पड़ेगा। दोस्तों आपको आजादी के निमित्त तलवार उठानी पड़ेगी। अब हमें शत्रुओं के सैकड़ों मुण्डों को काटना पड़ेगा। सुनो, हमें राष्ट्रीय युद्ध के मैदान में अपने जीवन को बलिदान कर देना है और आज उन लोगों के रक्तपात से जो हमारे धर्म को नष्ट कर रहे हैं या हानि पहुँचा रहे हैं, पृथ्वी को खून से रंग देना है। हम मारकर ही मरेंगे और तुम लोग घर बैठे औरतों की तरह हमारे किस्से सुनोगे।''

(घ) तिलक को दो बार सजा हुई और दोनों ही बार अंग्रेजों द्वारा उन्हें सजा देने का कारण उनका क्रान्तिकारी गतिविधियों में संलिप्त होना तथा अपने 'केसरी पत्र' में भड़काऊ लेखों का दिखाया जाना बताया गया। यथा—

१. जब तिलक पर चापेकर बन्धुओं द्वारा अंग्रेजी अफसर रैण्ड की हत्या के लिये भड़काने के सम्बन्ध में मुकद्दमा चला तो उनके विरुद्ध दिये गये प्रमाणों में से एक यह था कि १८९७ के १५ जून के 'केसरी' के अंक में भवानी तलवार का चिह्न नाम की एक कविता छपी थी। इसमें शिवाजी के विचार कहे गये थे। इसके कुछ अंशों का अनुवाद इस प्रकार है—''जब मैं आराम कर रहा हूँ तो कौन मुझे पुकार रहा है, मैंने दुष्टों का नाश कर बहुत साल पहले खोई स्वतन्त्रता प्राप्ति और अपने धर्म का उद्धार किया। अब मैं सिर्फ तुम्हारी वाणी सुन रहा हूँ। हे देशवासियों तुम पर क्या विपत्ति आन पड़ी है कि तुम फिर हमें पुकार रहे हो। हे मेरे देशवासियों युद्ध क्षेत्र में देशभक्ति, सहनशीलता, साहसिकता और जीतने की अदम्य इच्छा ही सारे प्रधान गुण हैं। क्या मेरे द्वारा रोपित इन बीजों में कोई फल नहीं आया? जो तुम मुझे नाम लेकर पुकार रहे हो।''

जब एक अंग्रेज किसी भारतीय को मारता है तो उसको किसी भी मूर्खतापूर्ण बहाने पर सजा नहीं मिलती और इसे एक दुर्घटना मात्र कह दिया जाता है और यह भी बहाना दिया जाता है कि उसने शायद किसी भालू के धोखे से गोली चला दी। देखो अंग्रेजों ने हमारे देशी राजाओं को किस तरह खत्म किया। किसी राजा को तो पागल करार कर दिया और तीर्थ यात्रा पर भेज दिया। किसी को बेहद दुःख दिया, किसी के अधिकारों का हनन किया।

इस प्रकार सैकड़ों बुरे उपायों से अंग्रेजों ने हमारे देशी राजाओं को लूटा है।

रौलट कमेटी की रिपोर्ट में यह साफ लिखा है कि १५ जून १८९७ में केसरी में जो लेख छपा था उसमें लेखक ने स्पष्ट रूप से राजनैतिक हत्या का घुमा फिराकर समर्थन किया था। इसके अलावा इस बात का भी प्रमाण है कि रैण्ड की हत्या के मात्र दस मिनट बाद ही तिलक को यह छोटा सा सन्देश दिया गया था कि 'कामझाले' यानि काम हो गया। जाहिर है कि तिलक को जेल हो गयी।

२. दूसरी बार उन्हें ६ वर्ष की सजा इस कारण हुई थी कि उन्होंने अमर क्रान्तिकारी खुदीराम बोस के समर्थन में केसरी में लेख लिखा था।

ऊपर लिखित सन्दर्भों से तिलक एक विप्लव वृत्ति के क्रान्तिकारी सिद्ध होते हैं। हाँ, यह सच है कि समय के थपेड़ों व परिस्थितियों में आये बदलाव के कारण वे काँग्रेस में चले गये थे पर वहाँ भी उन्होंने अपना क्रान्तिकारी चरित्र नहीं छोड़ा तथा गरम दल के नेता के रूप में जाने-जाने लगे।

स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है का शंखनाद करने वाले इस नरसिंह की मृत्यु पर महात्मा गाँधी विलख कर कह उठे थे—आज मैं विधवा हो गया, यह मात्र एक वाक्य ही तिलक के कार्यकलापों के बारे में सब कुछ कह देता है।

श्यामजी कृष्ण वर्मा

यह कौन जानता था कि ४ अक्टूबर १८५७ को कच्छ रियासत के माण्डवी ग्राम के भंसाली परिवार में जन्मे श्यामजी कृष्ण वर्मा, १८५७ के संग्राम के बाद के पहले ऐसे क्रान्तिकारी बनेंगे जो बाद की पीढ़ी के लिये प्रेरणा के स्त्रोत तो होंगे ही साथ ही साथ विदेशों में रहकर वहाँ अपने संस्कृत पाण्डित्य के ज्ञान को अंग्रेजी भाषा के माध्यम से प्रस्फुटित कर वहाँ की जनता में अपना प्रभाव बढ़ाते हुये भारत में कार्यरत क्रान्तिकारियों के लिये एक उच्च कोटि के आदर्श सिद्ध होंगे।

उनकी प्राथमिक शिक्षा भुज व कच्छ में हुयी। घर की स्थिति खराब होने के बावजूद अपनी प्रखर मेधा व कुशाग्र बुद्धि से उच्च व सम्पन्न वर्ग को प्रभावित करते हुये तथा उनसे आर्थिक सहायता

पाकर प्रारम्भ में बम्बई के विल्सन स्कूल तथा बाद में 'गोकुलदास काहनदास पारीक' छात्रवृत्ति पाकर एलफिंस्टन स्कूल में भर्ती हो गये। साथ ही एक धनी सेठ मथुरादास के प्रयासों से उन्हें पुरोहित वंश के श्री विश्वनाथ शास्त्री की संस्कृत पाठशाला में दाखिला मिल गया।

अपनी मेधा का पूर्ण उपयोग कर कालान्तर में वे धारा प्रवाह संस्कृत व अंग्रेजी बोलने लगे तथा भारतीय संस्कृत शास्त्रों का अध्ययन कर उन दोनों ही भाषाओं में जनमानस में प्रचार कार्य करते रहे। उन्हीं दिनों यूरोपियन देशों में संस्कृति के प्रति कौतुहल व प्रेम बढ़ता ही जा रहा था तथा वे एक ऐसे व्यक्ति की खोज में थे जो संस्कृत में निहित ज्ञान गंगा को अंग्रेजी माध्यम से उन्हें समझा सके।

अपनी ख्याति की बदौलत ही वे उन दिनों बम्बई के प्रसिद्ध धनी सेठ छबीलदासदास के सम्पर्क में आये तथा सेठ साहब उनसे इतने प्रभावित हुये कि सन् १८७५ में अपनी १६ वर्ष की कन्या भानुमती का विवाह उन्होंने १८ वर्षीय श्यामजी कृष्ण वर्मा से कर दिया। भारतवर्ष में उन दिनों विधवा विवाह को लेकर एक बहस छिड़ी थी कि विधवा विवाह शास्त्र संगत है या नहीं। जाहिर है कि प्रगतिशील विचारों के होने के कारण उन्होंने शास्त्रों से सन्दर्भ पर सन्दर्भ दे-देकर जनता व पण्डित वर्ग के बीच यह सिद्ध कर दिया कि विधवा विवाह तर्क संगत है तथा इसी विचार को वे अपने संस्कृत व अंग्रेजी के व्याख्यानों में सर्वत्र फैलाते रहे। इससे उनकी प्रसिद्धि प्रगतिशील विचारों के धनी एक ऐसे युवक के रूप में चहुँओर फैल गयी जो धारा प्रवाह संस्कृत व अंग्रेजी बोल सकता है।

सन् १८७५ की १० अप्रैल को उनकी भेंट समाज सुधारक व वेदों आदि के ज्ञाता स्वामी दयानन्द सरस्वती से हुई। जिनसे मिलकर वे बहुत प्रभावित हुये व उनसे काफी प्रेरणा मिली और कहीं उनके अन्तर में ब्रिटिश राज से मुक्ति पाने की इच्छा करवटें लेने लगीं।

उन्हीं दिनों ऑक्सफोर्ड के प्रसिद्ध संस्कृत मनीषी मोनियर विलियम्स भारत आये तथा श्याम जी कृष्ण वर्मा को धारा प्रवाह अंग्रेजी में, संस्कृत के ग्रन्थों की व्याख्या करते जब उन्होंने सुना तो उनसे प्रभावित होकर सन् १८७९ के मार्च में एस० एस०

इण्डिया नामक जहाज से उन्हें इंग्लैण्ड रवाना कर दिया तथा १८८५ में ऑक्सफोर्ड से वे पहले भारतीय स्नातक हो गये। १८७९-१८८३ के बीच चार वर्षों में स्नातक बनने के साथ-साथ वे श्री मोनियर विलियम्स द्वारा भारतीय संस्था एवं पुस्तकालय नामक संस्था की स्थापना में भी सहायक बने, कच्छ राज्य से उन्हें १०० पाउण्ड प्रतिवर्ष की छात्रवृत्ति मिलती थी तथा श्री मोनियर विलियम्स से व्यक्तिगत छात्रवृत्ति भी पाते रहे। वहाँ रहने वाले ब्रिटिश व अन्य नागरिकों को संस्कृत का ज्ञान देते रहे तथा अंग्रेजों द्वारा संचालित संस्कृत चर्चा के लिये बने समूह (गुट) में भी वे व्याख्यान देते रहे। १८८१ में बर्लिन में व १८८३ में हॉलैण्ड में होने वाले प्राच्य काँग्रेस के अधिवेशन में भारत के प्रतिनिधि होकर वहाँ गये तथा अपने ओजस्वी वक्तव्यों से उपस्थित विद्वत जगत् में अपनी धाक जमाई तथा उनकी लोकप्रियता भी इंग्लैण्ड व अन्य देशों में बढ़ने लगी। कहना न होगा कि एक भावी क्रान्तिकारी के निर्माण की भूमिका व पृष्ठभूमि तैयार हो रही थी।

श्यामजी कृष्ण वर्मा अच्छी तरह समझ चुके थे कि भले ही हमारा देश प्राचीन काल में एक अति सुसंस्कृत व समृद्ध देश था पर आज के हालात में पूरी तरह जीर्ण-शीर्ण अवस्था में है, और इस अवस्था से उबारने का अति आवश्यक प्रथम कदम है भारत की स्वतन्त्रता।

इस प्रकार स्नातक बनकर १८८३ के अन्त में वे भारत आये तथा कुछ काल रहकर सपत्नीक पुनः इंग्लैण्ड जाकर बैरिस्टर बन गये तथा एक बार पुनः १९ जनवरी १८८५ को भारत में आकर बॉम्बे हाईकोर्ट में प्रैक्टिस करने लगे। उनकी ख्याति चारों ओर फैल गयी पर वह अपनी लक्ष्य सिद्धि के लिये कुछ इस प्रकार के सोपान तलाशते रहे जहाँ वे राष्ट्र की स्वतन्त्रता के लिये अधिक से अधिक कार्य कर सकें।

इस अभीष्ट को सिद्ध करने के लिये उन्होंने कई रियासतों यथा—उदयपुर, जूनागढ़, आदि में दीवान की नौकरी की पर उन रियासतों के मुखियाओं को राष्ट्र की स्वतन्त्रता के प्रति पूरी तरह उदासीन देखकर वे आगे की राह सोचने लगे। इसी बीच समाज में वे अपने क्रान्तिकारी विचारों को भी रखने लगे थे इस कारण ब्रिटिश शासन उन्हें सन्देह की दृष्टि से देखने लगा। १८९७ में नाटू बन्धुओं तथा चाफेकर बन्धुओं की तरफ से जो ब्रिटिश साम्राज्य

के विरुद्ध कार्य हुये उनमें श्यामजी का कोई सम्बन्ध न होने पर भी वे समझ गये कि उन्हें किसी भी समय गिरफ्तार किया जा सकता है। अतः वे एक बार पुनः सन् १८९७ में इंग्लैण्ड चले गये तथा घटनाचक्र कुछ ऐसा हुआ कि वे पुनः वापिस भारत न आ सके।

बाद को श्यामजी ने अपने संस्मरण में स्पष्ट किया कि १८९७ में नाटू बन्धु गिरफ्तार हो गये व तिलक पर जो मुकद्दमा चला उससे मुझे यह विश्वास हो गया कि ब्रिटिश भारत में वैयक्तिक स्वतन्त्रता का कोई मूल्य नहीं है। इस कारण मैं अपना देश छोड़कर इंग्लैण्ड जा रहा हूँ।

इंग्लैण्ड प्रवास के दौरान तथा पश्चात् पेरिस व बाद में जिनेवा में रहकर राष्ट्र की सेवा इस ओजस्वी क्रान्तिकारी ने किस प्रकार की। उसके कुछ प्रसन्त्र व सन्दर्भ अति संक्षेप में यहाँ प्रस्तुत हैं।

अपने बहुआयामी व्यक्तित्व के डैनों पर सवार विचारों के स्फुलिंगों को व्यावहारिक रूप देने के लिये प्रथम तो उन्होंने इंग्लैण्ड में पनप रहे व कार्यरत समान विचारधारा वाले संगठनों, यथा ब्रिटिश समाजवाद, अन्तरराष्ट्रीय समाजवाद, आयरिश समाजवाद संगठन, आदि से अपने सम्पर्क सूत्र व घनिष्ठता बनाये रखी तथा दूसरी ओर भारत से आने वाले छात्रों को अपने प्रभाव क्षेत्र में लेकर उन्हें क्रान्तिकारी विचारों से लैस कर भारत जाकर क्रान्ति के प्रयासों के लिये प्रेरित करते रहे। यथा—

१. लन्दन में वे इनरटैम्पलटन रेजीडेन्शीयल चैम्बर में रहने लगे तथा भारतीय छात्रों आदि को क्रान्ति का पाठ पढ़ाने के लिये एक अध्ययन केन्द्र स्थापित किया। कालान्तर में सन् १९०६ के करीब उन्होंने इस केन्द्र को एक वृहत्ताकार रूप देकर भारत से फैलोशिप लेकर आये हुये लोगों में तथा छात्रों के खेल-कूद भोजन आदि के लिये इण्डिया हाउस नामक एक बोर्डिंग हाउस की स्थापना की। जिसका उद्घाटन १ जुलाई को ब्रिटिश समाजवादी दल के नेता श्री हैण्डमैन के कर कमलों द्वारा कराया गया। इस अवसर पर बहुत से आयरिश स्वतन्त्रता योद्धा व अंग्रेज भी उपस्थित थे तथा भारतीयों में दादाभाई नौरोजी, लाजपतराय, मादामकामा, लाला हंसराज, दोस्त मुहम्मद, अन्य भारतीय छात्र थे।

२. अपने विचारों व कार्यकलापों को यूरोप व विशेषकर

भारत के अधिक से अधिक क्रान्तिकारियों तक पहुँचाने के लिये उन्होंने जनवरी सन् १९०५ में 'इण्डियन सोशियोलॉजिस्ट' नामक पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ किया। जिसकी प्रतियाँ किसी भी प्रकार भारत भी भेजी जाती थी तथा उन्हें बड़े ही चाव से पढ़ाया जाता था। इस पत्रिका के मुख्य पृष्ठ पर लिखा रहता था कि यह "स्वतन्त्र और राजनैतिक सामाजिक व धार्मिक सुधार का मुख पत्र है" इस पत्र की व्यापक रूप से धूम मची तथा प्रशंसा हुयी। इस पत्र में किस प्रकार की सामग्री प्रकाशित की जाती थी इसकी कुछ बानगी यहाँ प्रस्तुत है।

(क) डॉ० अविनाश भट्टाचार्य लिखते हैं कि हम लोग १९०५ में क्रान्तिकारी बने तो इण्डियन सोशियोलॉजिस्ट की प्रतियाँ पढ़ने लगे इन निबन्धों में स्पष्ट रूप से निरंकुश शासन के विरुद्ध लिखा था और मार्गदर्शन दिया गया था कि इससे निपटने का एक मात्र उपाय है—"पैसिव रजिस्टैंस यानी निष्क्रिय प्रतिरोध। १९०५ की दिसम्बर वाली प्रति में समानान्तर सरकार की स्थापना के पक्ष में भी तर्क दिया गया था।"

(ख) १८९९ के लगभग दक्षिण अफ्रीका में ट्रान्सवेल लोकतन्त्र के जोहन्सवर्ग के पास एक सोने की खान की पता लगा। तब ब्रिटेन के व्यापारियों ने इसे हड़पने के प्रयास में सहायता के लिये ब्रिटिश सरकार को भी उकसाया। इनके कुटिल प्रयासों को निष्फल करते हुये ट्रान्सवेल के शासक सेनापति कुनर ने अंग्रेजों के विरुद्ध लड़ाई की घोषणा कर दी तथा उनकी जीत होने लगी। तभी नाटाल में रहकर गाँधी जी बैरिस्टरी कर रहे थे। वे लोकप्रिय भी थे। उन्होंने एक स्वयंसेवी सेना का गठन किया व अंग्रेजों का युद्ध में साथ दिया। श्यामजी ने अपने पत्र में लिखा कि जिस जाति ने अन्यायपूर्वक भारत पर अधिकार कर रखा है और निर्लज्ज शोषण से भारत को गरीब बना दिया है, ऐसे राष्ट्र की सहायता कर गाँधी जी ने जो काम शुरू किया है वह बिल्कुल नाजायज, औचित्यहीन व न्याय विरुद्ध है।

इस प्रकार वे उग्र विचारों की ओर जाने लगे। अमेरिका के आयरिस्ट प्रजातन्त्रीय मुख पत्र 'गेलिक अमेरिकन' ने लिखा कि नाटाल के भारतीयों का आचरण इतना निन्दनीय है कि उसका भाषा में वर्णन सम्भव नहीं।

(ग) उन्हीं दिनों काँग्रेस में १९०५ वाले अधिवेशन की

अध्यक्षता कौन करे इस पर बाद-विवाद चल रहा था। प्रश्न था 'गोखले तथा बालगंगाधर तिलक' के बीच। अपने पत्र में गोखले व तिलक की तुलना करते हुये श्यामजी ने लिखा कि एक ओर तो गोखले ने १८९७ में ताउन के बहाने भारतीयों पर अत्याचार के बारे में लिखा पर बाद में माफी माँगकर अंग्रेजों के कृपापात्र बन गये, पर तिलक माफी न माँगने के कारण जेल चले गये। गोखले पर कालान्तर में सरकारी कृपा होती रही पर तिलक अपने उग्र विचारों के कारण या तो आर्थिक कष्ट उठाते रहे या जेल जाते रहे। अन्त में गोखले को अध्यक्ष के लिये चुने जाने पर श्यामजी ने लिखा कि ''देखिये किस प्रकार एक पेशेवर राजनीतिज्ञ (गोखले) तरक्की करता है तथा एक सच्चा देश भक्त (तिलक) मुसीबत में फँसता है।''

(घ) प्रसिद्ध क्रान्तिकारी खुदीरामबोस व प्रफुल्लचाकी ने बिहार के मुजफ्फरपुर में एक कुख्यात न्यायाधीश किंग्स फोर्ड को मारने की चेष्टा की पर धोखे से दूसरे गोरे मारे गये। खुदीरामबोस को १७ वर्ष की उम्र में ही फाँसी हो गयी तथा उसे व उन्हीं जैसे कार्य करने वाले क्रान्तिकारियों को 'आतंकवादी कहा जाने लगा'। श्यामजी इससे बहुत उत्तेजित हुये वे आतंकवाद को भारतीय परिस्थितियों में न्याय संगत ठहराने के सम्बन्ध में कई लेख प्रकाशित किये। लीरायस्कर नामक एक प्रसिद्ध अमेरिकी पत्रकार ने ''आतंकवाद की मनोवृत्ति के बारे में एक निबन्ध प्रकाशित किया उसी को श्यामजी ने अपने पत्र में प्रकाशित किया।'' उसमें एक रूसी आतंकवादी का हवाला था। वह युवक रसायन शास्त्र विशारद था। उस युवक ने अपने बयान में यह कहा था कि मैं क्यों आतंकवादी हूँ क्यों आतंकवाद को उचित मानता हूँ यह आपके लिये समझ पाना कठिन है। आपके देश में आतंकवाद के लिये कोई उचित कारण नहीं है पर हमारे देश जारशाही रूस में यही एक मात्र सही तरीका है। कितने सालों व पुश्तों से हम सरकार से कुछ स्वतन्त्रता की माँग कर रहे हैं पर हमें कुछ भी नहीं मिला। हम राजनैतिक रूप से बहुत कष्ट भोग रहे हैं। आप जानते हैं कि खुलकर क्रान्तिकारी कार्य करना असम्भव है। कैसे गुप्तचर पहरा देते हैं, किस तरह से हमारे नेताओं को फाँसी पर चढ़ाया जाता है, कैसे घर-घर अस्त्र-शस्त्र के लिये तलाशी ली जाती है इसलिये सरकार ने स्वयं ही ऐसी परिस्थिति का स्त्रजन किया है कि हम

आतंकवाद की ओर बढ़ने को मजबूर हैं.........।

(च) सन् १९०८ में सितम्बर अन्त में एक लेख इस शीर्षक के साथ प्रकाशित हुआ-डाइनमाइट का नीति शास्त्र व भारत में ब्रिटिश तानाशाही इसमें श्यामजी ने कहा कि यदि ब्रिटिश शासक व उसके बूढ़े सैनिक भारतीय स्वतन्त्रता व राष्ट्रीय सम्मान को जबर्दस्ती हरण करके करोड़ों लोगों को डेढ़ सौ वर्षों से मृत्यु के द्वार तक पहुँचाते रहे हैं तो क्या देश के लोग नीतिशास्त्र के अनुसार आत्मरक्षा के लिये शत्रु के आक्रमण को रोकने के लिये कोई रास्ता अख्तियार न करें। क्या यह उनका एक मात्र कर्त्तव्य नहीं है।

इसी प्रकार उन्होंने आयरलैण्ड व रूस के क्रान्तिकारियों के उदाहरण दे-देकर बहुत से लेख व वक्तव्य प्रकाशित कर भारतीय क्रान्तिकारियों के लिये मार्गदर्शन व प्रेरणा देने का कार्य किया। इस प्रकार बहुमुखी प्रतिभा के धनी श्यामजी एक तरफ तो संस्कृत के विद्वान् थे, दूसरे समाज सुधारक थे, तीसरे उनके द्वारा भारत की सभ्यता व संस्कृति का ज्ञान फैल रहा था तथा सर्वोपरि व क्रान्तिकारी विचारों के थे।

लंदन में उसे कार्यकलापों में पूर्ण सहयोग देने वाले एक सज्जन श्री सरदार सिंह राणा थे तथा एक अन्य भारतीय श्री वीरेन्द्र गाँधी, शिकागो की प्रसिद्ध धर्म संसद से लौटते समय श्यामजी से मिले थे। लंदन में ही वह उस समय के प्रसिद्ध दार्शनिक हरबर्ट स्पेंसर के सम्पर्क में आ चुके थे तथा १४ दिसम्बर १९०७ को उनकी मृत्यु के समय एक ओजस्वी भाषण देते हुये स्पेन्सर लैक्चरार-शिप के लिये एक हजार पॉण्ड देने की घोषणा की। साथ ही १९०४ में काँग्रेस के अधिवेशन के समय उन्होंने १९०५, १९०६, १९०७ के लिये प्रतिवर्ष दो हजार पाउण्ड की छात्रवृत्ति के हिसाब से दो-दो छात्रवृत्तियों की घोषणा की जो हरबर्ट स्पेंसर के नाम पर हुयी। इसके अलावा स्वामी दयानन्द सरस्वती के नाम से भी एक फैलोशिप की घोषणा की गयी। इन सारी फलोशिप का अन्तरंगतम कारण मात्र यह था कि इन फैलोशिप के जरिये भारत से योग्य समर्थ व होनहार नौ जवानों को भारत से लंदन बुलाकर उन्हें क्रान्ति व देश प्रेम का पाठ पढ़ाकर भारत वापिस भेजा जाये।

अपने कार्य को वृहद रूप देने के लिये उन्होंने सन् १९०५ में फरवरी के मास में लन्दन के हाईगेट इलाके में खरीदे हुये एक

भवन में इण्डियन होम रूल सोसायटी नामक संस्था की स्थापना की। जिसके उद्देश्य इस प्रकार थे—

१. भारत में होम रूल की स्थापना।

२. इस लक्ष्य की पूर्ति के लिये इंग्लैण्ड में सब तरह के व्यावहारिक कार्य करना।

३. भारत की जनता में स्वतन्त्रता व राष्ट्रीय एकता के सम्बन्ध में ज्ञान व प्रचार करना।

इस संस्था के अध्यक्ष श्यामजी हुये, और उसके उपाध्यक्षों में सरदार सिंह राणा जे०एम० पारीक, अब्दुल्लाह, सोहरावर्दी और गोदरेज हुये। जे०सी० मुखर्जी इसके मंत्री हुये। संस्थापकों की ओर से कहा गया कि हमारा उद्देश्य भारतीयों के लिये भारतीयों की सरकार की स्थापना करना है। जाहिर है कि यह उद्देश्य सन् १९०५ में कितना क्रान्तिकारी रहा होगा, विशेषकर तब जब काँग्रेस अपनी स्थापना के लगभग २० वर्ष बाद भी भारत के सम्बन्ध में अपना कोई निश्चित उद्देश्य नहीं बना पाई थी, तथा भारत की स्वतन्त्रता का विचार तो उनकी कल्पना से भी कोसों दूर था। फैलोशिप के लिये आये हुये लोगों के ठहरने व मनोरंजन की व्यवस्था तो इण्डिया हाउस में पहले ही हो चुकी थी।

भारतवर्ष में अंग्रेजों द्वारा किये जाने वाले अत्याचारों व अन्याय के विरुद्ध वे लन्दन में सशक्त आवाज उठाते थे। यथा—

१. सुरेन्द्रनाथ बनर्जी जब बंगाल में स्वाधीनता आन्दोलन में गिरफ्तार हुये तो श्यामजी ने ४ मई १९०६ को इण्डिया हाउस में एक सभा करके उसका खुलकर विरोध जताया था। इस सभा में विट्ठल भाई पटेल, भाई परमानन्द तथा कई दूसरे भारतीय मौजूद थे।

२. इसी प्रकार ब्रिटिश शासन द्वारा भारत में १८५७ की क्रान्ति की हीरक जयन्ती को एक उपहास व भौंड़े रूप में प्रदर्शित करने के लिये आयोजन किया गया तो श्यामजी ने वीर सावरकर की सहायता से इण्डिया हाउस में १८५७ का उत्सव मनाने का निश्चय किया। वीर सावरकर उन दिनों १८५७ के सम्बन्ध में शोध कर रहे थे तथा इस कारण उन्हें किन-किन जघन्यतम् कष्टों से गुजरना पड़ा यह अपने-आप में एक अलग विषय है।

३. इसी प्रकार लाला लाजपत राय व भगत सिंह के चाचा

सरदार अजीत सिंह को देश निकाला दिया गया तो इसका भी मुखर विरोध करते हुये श्यामजी ने लन्दन में एक सभा की, मदाम भीकाजीकामा, सरदार सिंह राणा व गोदरेज आदि उपस्थित थे तथा मदाम कामा का संक्षिप्त भाषण इण्डियन सोशियाँ लॉजिस्ट पत्रिका में प्रकाशित भी किया गया। इसी प्रकार १९०९ में मदनलाल धींगड़ा ने जब भारत सचिव के ए०डी०सी० कर्जन वाइली व डॉ० कवासलाला पर गोली चलाी तो उन्होंने धींगरा के कार्य को उचित व उसके बयान को देशभक्ति पूर्ण बताया। उन्होंने आगे कहा कि मैं उसके कार्यों का समर्थन करता हूँ और उन्हें मैं भारत के लिये त्याग करने वाले महान् शहीदों में मानता हूँ।

इसी प्रकार न जाने कितने अवसरों पर इस प्रकार के देश भक्ति पूर्ण क्रान्तिकारी विचार व साथ ही यथासम्भव भारत से आये छात्रों व देश भक्तों की रगों में क्रान्ति का प्रभाव भरने में श्यामजी संलिप्त रहे। जाहिर है कि उनके उग्र विचारों के कारण इंग्लैण्ड की सरकार उन्हें सन्देह से देखने लगी। अतः वे करीब १९०८ में लन्दन से पेरिस आ गये तथा बाद में करीब १९१४-१५ में पेरिस छोड़कर जिनेवा चले गये। जिनेवा की सरकार ने उनके राजनैतिक कार्यकलापों पर प्रतिबन्ध लगा दिया तथा वहीं रहते हुये ३० मार्च १९३० में उनका देहान्त हो गया तथा करीब ३ वर्ष बाद उनकी पत्नी श्रीमती भानुमती भी २३ अगस्त १९३३ को वहीं पर स्वर्ग सिधार गई।

भारत में १८५७ के बाद के इस प्रथम मनीषी चिन्तक व क्रान्तिकारी का सारा जीवन ही राष्ट्र की सेवा में अर्पित रहा तथा इनके कार्यकलापों से न जाने कितने क्रान्तिकारियों ने प्रेरणा लेकर अपना सर्वस्व मातृभूमि की बलिवेदी पर न्यौछावर कर दिया।

मदाम भीकाजी कामा

भारत वर्ष के राष्ट्रध्वज की प्रथम परिकल्पना प्रस्तुत करने वाली तथा श्यामजी कृष्ण वर्मा की अनन्य सहयोगी तथा भारत में चल रही क्रान्तिकारियों की गतिविधियों का खुल्लम-खुल्ला समर्थन करने वाली इस तेजस्वी व कर्मठ महिला का जन्म सन् १८६१ में एक सम्पन्न पारसी श्री सोराब फ्रेमजी पटेल के घर हुआ था। प्रारम्भ से ही स्वतन्त्र विचार व जुझारू प्रकृति की इस महिला का विवाह सन् १८८५ में हुआ पर अति गहरे वैचारिक मतभेद होने

के कारण उनका अपने पति से अधिक दिन साथ न चल सका।

उन्हीं दिनों बम्बई में प्लेग फैला जिसमें उन्होंने रोगियों की पूरी श्रद्धा के साथ सेवा की व उनके घावों की पट्टी आदि भी करती रही। सन् १९०१ में अप्रैल माह में वे यूरोप आयी तथा दादा भाई नौरोजी के जरिये सरदार सिंह राणा, श्यामजी कृष्ण वर्मा व अन्य क्रान्तिकारियों के सम्पर्क में आयी तथा कालान्तर में श्यामजी के अन्तरंग सहयोगियों में शामिल रही व उनके द्वारा प्रकाशित 'इण्डियन सोशियोलॉजिस्ट' पत्रिका की प्रधान लेखिका भी थीं। सन् १८५७ की हीरक जयन्ती यूरोप में मनाने के लिये १० मई १९०५ को इण्डिया हाउस में क्रान्तिकारियों की सभा हुयी, जिसकी अध्यक्षता उन्होंने की व एक ओजस्वी भाषण भी दिया जिसकी प्रशंसा हर किसी ने की। पश्चात् श्यामजी के साथ ही वे पेरिस चली गयीं।

१९०७ के १८ अगस्त को जर्मनी के स्टुआर्ड नामक शहर में अन्तरराष्ट्रीय समाजवादी सम्मेलन हुआ। जिसमें वे भारतीय प्रतिनिधि के रूप में स्टुअर्ड पहुँची। इसी सम्मेलन में उन्होंने अपने द्वारा परिकल्पित भारतीय राष्ट्रीय ध्वज फहराया तथा प्रस्ताव भी रखा कि ब्रिटिश शासन का भारत में जारी रहना निश्चित रूप से विपत्ति कारक है। अत: सारी दुनिया के स्वतन्त्रता प्रेमियों को चाहिये कि वे भारत को स्वतन्त्र कराने के लिये सहयोग दें। सब लोगों ने, मात्र ब्रिटिश अधिकारियों को छोड़कर इस प्रस्ताव का समर्थन किया।

इस प्रकार हम पाते हैं कि भारत की स्वतन्त्रता की माँग को अन्तरराष्ट्रीय मंच पर उठाने वाले सर्वप्रथम भारतीय क्रान्तिकारी ही थे। क्योंकि उन दिनों (१९०७: में काँग्रेस व उसके नेता एक दिशाहीन पथ पर सही राह तलाशने में लगे थे। इसी प्रकार सन् १८९७ में श्यामजी कृष्ण वर्मा ने दक्षिण अफ्रीका के बुअर युद्ध में गाँधीजी के ब्रिटिश समर्थन का घोर विरोध किया था तथा बुअरों का समर्थन किया था।

१९०७ में ही उन दिनों काँग्रेस में गर्म व नर्म दल के बीच खींच-तान चल रही थी तथा १९०८ में कभी उसका अधिवेशन होना था। उस समय मदाम कामा व अन्य क्रान्तिकारियों ने लंदन के टैक्सटाइल हॉल में एक सम्मेलन किया जिसमें स्वनाम धन्य व प्रसिद्ध विभूतियाँ यथा पंजाब के लाला लाजपत राय बंगाल के विपिनचन्द्र पाल, महाराष्ट्र के खापर्दे, गोकुलचन्द नारंग और आगा

खाँ ने भाग लिया। उन बड़े-बड़े नेताओं के वक्तव्यों के बीच मदाम कामा का ओजस्वी भाषण सबने पसन्द किया तथा प्रसिद्ध कलापारखी श्री अनन्त कुमार स्वामी ने प्रस्ताव रख दिया कि भारत को स्वराज्य मिलना चाहिए। सावरकर ने इस प्रस्ताव का समर्थन किया तथा स्पष्ट किया कि स्वराज्य से उनका मतलब है कि भारत में ब्रिटिश या किसी भी अन्य विदेशी शासन का नियन्त्रण न रहे।

उन्हीं दिनों भारत में नासिक षड्यन्त्र के क्रान्तिकारियों पर मुकद्दमा चल रहा था। अतः उन्होंने पेरिस में ही बैठे-बैठे बम्बई में अभियुक्तों की ओर से वैरिस्टर नियुक्त किये वह हर सम्भव प्रकार से क्रान्तिकारियों की सहायता की। १७ जून १९११ को भारत में टिनेवैली रेलवे जंक्शन पर 'वाशी अय्यर' नामक क्रान्तिकारी ने वहाँ के मजिस्ट्रेट मिस्टर ऐशे की हत्या की। समाचार यूरोप पहुँचने पर वहाँ क्रान्तिकारियों ने इस घटना की प्रशंसा की तथा मदाम कामा ने इण्डियन सोशियोलॉजिस्ट में लिखा कि जब एक ओर दिल्ली दरबार लग रहा हो, तो दूसरी ओर हमारे क्रान्तिकारियों द्वारा टिनेवेली व मेमनसिंह में ऐसी घटनायें हो रही हैं जिससे लगता है कि भारत बिल्कुल सोया हुआ नहीं है बरन् जाग चुका है। इसी घटना की आगे तहकीकात में 'अय्यर' के पास वन्देमातरम् नामक क्रान्तिकारी पत्रिका की प्रति व एक लिखित पत्र पाया गया। जिसमें मालूम होता था कि क्रान्तिकारियों की योजना के अनुसार जब ब्रिटिश राजा का अभिषेक हो रहा था तभी भारत के विभिन्न हिस्सों में एक साथ अधिक से अधिक संख्या में इन आताताई अंग्रेजों की व उनके परिवारों की हत्या की जाये, जिससे विश्व को पता लगे कि भारत सो नहीं रहा है। यह योजना सफल न हो सकी। पुलिस द्वारा आगे की जाने वाली खोज में पता चला कि मिस्टर ऐशे की हत्या ब्राउनिंग पिस्तौल से की गयी थी। इससे एक अन्य तथ्य स्पष्ट हुआ कि यूरोप से क्रान्तिकारियों को हथियार सप्लाई करने का एक जाल बन चुका था तथा उसी के एक हिस्से सरदार सिंह राणा व वीर सावरकर थे जिन्होंने इसी प्रकार बीस ब्राउनिंग पिस्तौलें कुछ आवश्यक कारतूसों के साथ इण्डिया हाउस के रसोईये छत्रभुज अमीन के हाथों फरवरी की १९०९ में भारत में भेजी थीं।

मदाम कामा को जब यह पता चला तो उन्होंने क्रान्तिकारियों

को बचाने के लिये हथियार सप्लाई से सम्बन्धित कार्यकलापों का सारा जिम्मा अपने ऊपर लेते हुये ब्रिटिश कौंसल जनरल के दफ्तर में जाकर एक दस्तावेज पेश कर दिया। अपने बयान की एक प्रतिलिपि उन्होंने बम्बई में मिस्टर बैप्टिस्टा के पास भेजी। परन्तु सम्बन्धित सरकारों ने उन पर कोई कार्यवाही नहीं की। मदाम कामा उन दिनों बराबर आयरलैण्ड, मोरक्को, रूस, मिश्र, तुर्की आदि देशों के क्रान्तिकारियों के सम्पर्क में भी रहती थीं तथा उनसे पत्र व्यवहार करती रहती थीं।

१९१४ में जब प्रथम विश्वयुद्ध छिड़ा तब उन्हें करीब ४-५ वर्ष के लिये शत्रु पक्ष की एजेण्ट मानकर उन्हें नजरबन्द कर दिया। सरकार के पास रिपोर्ट थी कि मेडम कामा सेना के भारतीय जवानों को युद्ध में न जाने के लिये भड़काती रहती थीं। यह कहकर कि यह युद्ध ब्रिटिश व जर्मनी का है तथा इससे भारत का कोई लाभ नहीं है। अस्तु।

जब वह छूटी तो बहुत कमजोर हो चुकी थीं तथा पेरिस की एक अति गरीब बस्ती में रहती थीं। मित्रों ने चेष्टा की व उन्हें किसी प्रकार मनाकर भारत भेज दिया जहाँ वे दादा भाई नौरोजी के रिश्तेदारों के यहाँ रहीं तथा १३ अगस्त १९३५ को उनका स्वर्गवास हो गया। किसी भारतीय ने नहीं जाना कि इस प्रकार एक तेजस्वी देशभक्त महिला का अन्त हो गया।

सोहनलाल पाठक

भाईयों अंग्रेजों के लिये फिजूल में क्यों जान देते हो। यदि तुम्हें मरना ही है तो देश के लिये मरो। तुम्हारी भुजाओं के बल से देश को आजादी मिले यह अच्छा है या तुम अंग्रेजों के लिये जान दे दो यह अच्छा है।

कौन जानता था कि प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान बर्मा स्थित ब्रिटिश फौजों के भारतीय सैनिकों की छावनी में उत्साह से घूम-घूम कर उनमें राष्ट्र प्रेम व विद्रोह की ज्वाला जगाने के प्रयास में रत, अमृतसर के अति गरीब श्री चन्दाराम के घर ७ जनवरी १८८३ को जन्मा अत्यन्त कृश, दुर्बल काया वाला यह मात्र २८-३० वर्ष का युवक अपने अभियान की राह में ब्रिटिश द्वारा अपनी मातृभूमि से दूर बर्मा में फाँसी पर चढ़ा दिया जायेगा। राष्ट्र प्रेम को अपराध की श्रेणी में रखकर सजा देने वाली ऐसी निकृष्ट सरकार से इससे

अधिक और क्या अपेक्षा की जा सकती है।

ब्रिटिश द्वारा माँफी माँगने की शर्त पर फाँसी की सजा निरस्त किये जाने की सलाह को लात मारते हुये हँसते-हँसते मृत्यु का आह्वान करने वाले इस बलिदानी वीर का नाम बहुत कम लोग जानते हैं। जिज्ञासु पाठकों के लिये उनका जीवनवृत्त संक्षेप में इस प्रकार है—अति गरीब कुल में उत्पन्न सोहनलाल ने येन-केन-प्रकारेण फीस माफी या बजीफे आदि के सम्बल से मिडिल पास कर लिया तथा इसके आगे 'नार्मल' के लिये प्रयासरत रहे। बीच में नौकरी व शादी भी सन् १९०१ में हो गयी तथा १९०४ में नार्मल पास हो गये। उनके चरित्र निर्माण व उग्र विचारों के लिये आर्यसमाज द्वारा समय-समय पर चलाये जाने वाले अभियान, लाला लाजपत राय की विलायत यात्रा, बंग-भंग, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी की गिरफ्तारी, खुदीराम बोस का मुकद्दमा, वीर सावरकर, मदनलाल धींगड़ा तथा लाला हरदयाल की रचनायें व कार्यक्रम थे।

१९०७ में लाहौर के एक स्कूल में २१ रुपये प्रतिमाह वेतन पर नौकर हो गये। साथ ही लाला लाजपत राय के द्वारा संचालित दयानन्द ब्रह्मचारी आश्रम में भी काम करने लगे। लालाजी का वन्देमातरम् अखवार उन दिनों काफी लोकप्रिय था इसी बीच उनकी पत्नी की मृत्यु हो गयी तथा मन में दृढ़ संकल्प लिये कुछ कर गुजरने की चाहत से वे कुछ मित्रों की सहायता से भारत छोड़कर श्याम देश चले गये, जहाँ कुछ समय नौकरी कर वे एक अन्य बलिदानी श्री ईश्वर दास की सहायता से किसी प्रकार अमेरिका पहुँचे। जहाँ भाई परमानन्द व अन्य भारतीय क्रान्तिकारियों द्वारा संचालित गदर पार्टी के सदस्य हो गये, तथा कालान्तर में उन्हें बर्मा में भारतीय छावनियों में सैनिकों में देश-प्रेम व अंग्रेजों के खिलाफ विद्रोह भड़काने के उद्देश्य से भेजा गया। वे जापान व बैंकाक के रास्ते से हांगकांग पहुँचे तथा वहाँ से पैदल ही बर्मा पहुँच गये।

बर्मा में वे एक छावनी से दूसरी छावनी में जा जाकर सैनिकों में प्रचार करते-करते घूमते रहे तभी एक जमादार द्वारा उन्हें पकड़वा दिया गया। ब्रिटिश सैनिकों को उनके पास से ३ स्वचालित पिस्टल लगभग १०० से अधिक कारतूस, जहाने इस्लाम की एक प्रति, जिसमें प्रसिद्ध क्रान्तिकारी लाल हरदयाल का लेख छपा था। इसके अलावा मौलवियों के दिये कुछ 'फतवे' जिनमें कहा गया

था कि अंग्रेजों के विरुद्ध लड़ना उचित है तथा उनके पक्ष में लड़ना हराम है। ये सारे प्रकरण उन्हें फाँसी देने के लिये काफी थे।

जाहिर है उन्हें फाँसी की सजा हुई तथा ब्रिटिश से माफी माँगने की बिना पर छूटने की शर्त को ठुकराते हुये इस राष्ट्र भक्त बलिदानी को मात्र २८ वर्ष की अवस्था में बर्मा में फाँसी पर लटका दिया गया।

कर्तार सिंह सराभा

''मेरी एक मात्र उच्चाकांक्षा यह है कि मैं अपनी मातृभूमि को स्वतन्त्र देखूँ। जो कुछ भी मैंने किया वह इसी उद्देश्य से किया है। जहाँ तक मुझे याद है मैंने कोई भी काम किसी व्यक्ति, जाति, धर्म या नस्ल के प्रति घृणा के कारण नहीं किया, या अपना व्यक्तिगत हित सिद्ध करने के लिये भी नहीं किया है। बस मुझे एक ही चाहत है स्वतन्त्रता और यही मेरा एक मात्र स्वप्न है।''

यह उस बयान का एक हिस्सा मात्र है जो इस अमर स्वतन्त्रता सैनानी कर्तार सिंह सराभा ने ब्रिटिश कोर्ट में फाँसी की सजा सुनाये जाने के समय दिया था। अपराध वही जो शहीद सोहनलाल पाठक का था अर्थात् भारतीय सैनिकों में राष्ट्र प्रेम जागृत कर ब्रिटिश के खिलाफ करना। मात्र इनके कार्यक्षेत्र अलग-अलग थे। सोहनलाल को बर्मा में तथा कर्तार सिंह को भारत में ऐसा जागरण करने पर मृत्युदण्ड दिया गया।

सन् १८९६ में लुधियाना के सराभा नामक स्थान में जन्मे कर्तार सिंह में नेतृत्व क्षमता के गुण बचपन से ही विद्यमान थे। अपने साथियों में अगुवा वही रहते थे। सन् १९१०-११ में मैट्रीकुलेशन पास करने के बाद, वे १९१२ में सैनफ्रांसिस्को पहुँच गये तथा वहाँ रहने वाले अन्य भारतीयों की तरह उन्होंने भी अनुभव किया कि भारतीयों को वहाँ अत्यन्त हीन दृष्टि से देखा जाता था तथा उनको अपमानजनक सम्बोधनों से बुलाया जाता था।

इसी सम्बन्ध में १९१२ के मई मास में वहाँ के भारतीयों की छोटी सी सभा हुई जिसमें सबने देश सेवा करने की प्रतिज्ञा की। डॉ० खान खोजे जो पहले से ही अमेरिका में इस दिशा में काम कर रहे थे उन्होंने 'इण्डेपेण्डेन्स लीग' नामक संस्था बनाई जब

लाला हरदयाल वहाँ पहुँचे तो यह आन्दोलन और तेज हो गया। ३० सितम्बर १९१३ को एक सभा पुनः हुयी जिसमें भारतीयों के साथ-साथ जर्मन कौंसल व अन्य लोगों ने भाग लिया। वहाँ वक्ताओं ने राष्ट्र प्रेम से ओत-प्रोत तेजस्वी वक्तव्य दे-देकर तथा हमारे अतीत में हुये पृथ्वीराज, तेगबहादुर, शिवाजी, गोविन्द सिंह, बन्दा वैरागी आदि महापुरुषों के राष्ट्र प्रेम व गौरव गाथा के उद्धरण दे-देकर वहाँ पर उपस्थित समूह को प्रभावित किया। साथ ही १८५७ के वीरों का भी हवाला दिया। तथा स्वनाम धन्य शहीदों को श्रद्धाञ्जलि भी अर्पित की गयी। कर्तार सिंह भी जोश में आकर गाने लगे जिससे वहाँ उपस्थित जन समूह प्रभावित हुआ। तब उन्होंने निर्णय कर लिया कि अब सारा जीवन देश पर न्यौछाबर करना है।

गदर पार्टी की ओर से 'गदर' नामक अखबार निकाला गया जिसका प्रकाशन कई भाषाओं में होता था तथा जिसका प्रकाशन, वितरण आदि की व्यवस्था सर्व श्री खेमचन्द्र, गोपाल सिंह, गोदाराम, विष्णु गणेश पिंगले, डॉ० खान खोजे व कर्तार सिंह मिलकर करते थे।

जब प्रथम विश्वयुद्ध प्रारम्भ हुआ तो गदर पार्टी ने यह नारा दिया कि देश के लिये लड़ें और गदर कर दें। इस प्रकार कर्तार सिंह अन्य भारतीयों के साथ १५ सितम्बर १९१४ को कोलम्बो होते हुये भारत में प्रविष्ट हुये तथा यहाँ के अन्य क्रान्तिकारियों से मिलकर आगे की योजना तैयार करने लगे। अमेरिका से कई दल भारत आ चुके थे और कर्तार सिंह ने क्रान्ति की पृष्ठभूमि तैयार करने में काफी परिश्रम किया। वह रोज साईकिल पर ४०-५० मील की यात्रा कर गाँव-गाँव जाकर क्रान्ति का सन्देश ग्रामीणों को देते थे तथा छावनियों में जाकर भारतीय सैनिकों को राष्ट्र प्रेम का हवाला देकर ब्रिटिश के विरुद्ध क्रान्ति बिगुल फूँकने को प्रेरित करते थे।

अपने कार्य को पूरी शक्ति से अंजाम देते कर्तार सिंह को एक राष्ट्रद्रोही, बेईमान भूला सिंह द्वारा अंग्रेजी हुकूमत को पकड़वा दिया गया। धीरे-धीरे गदर पार्टी के काफी सदस्य पकड़ लिये गये। एक बहुत बड़े षड्यन्त्र के तहत ६१ अभियुक्तों पर मुकद्दमा चला तथा इसके नेता कर्तार सिंह, विष्णु गणेश पिंगले, भाई परमानन्द, जगत सिंह व हरनाम सिंह करार दिये गये। ४०४ गवाहों

की पेशी हुई तथा २२८ बचाव पक्ष के गवाह भी पेश हुये। १९१६ के १३ सितम्बर को मुकद्दमा समाप्त हुआ। २४ आदमियों को फाँसी सजा हुई जिसमें कर्तार सिंह, जगत सिंह, पिंगले, परमानन्द आदि शामिल थे। कालान्तर में १७ आदमियों की फाँसी माफ हो गयी जो सात बचे उनमें कर्तार सिंह व पिंगले की फाँसी बहाल रही।

इस प्रकार मात्र २१ वर्ष की अवस्था में सन् १९१७ में इस क्रान्तिकारी ने मातृभूमि की बलिवेदी पर अपने आपको उत्सर्ग कर दिया।

चिदम्बरम् पिल्लै

दक्षिण भारत में अंग्रेजों के विरुद्ध क्रान्ति की मशाल प्रज्वलित करने वाले मद्रास के एक प्रसिद्ध वकील श्री चिदम्बरम् पिल्लै थे। उन्होंने उन दिनों दक्षिण भारत के समुद्र तट की सारी जहाज रानी पर एकछत्र साम्राज्य करने वाली इंग्लैण्ड की ब्रिटिश इण्डिया नेवीगेशनल कम्पनी को ही चुनौती देते हुये उसी के समानान्तर भारतीय जहाज रानी 'स्वदेशी स्टीम नेवीगेशन कम्पनी' खड़ी कर दी, तथा ट्यूटीकोरेन के व तिरुनवैली के सभी व्यापारी व जनता उनके साथ हो लिये। नतीजा यह निकला कि अभी तक मोटा मुनाफा कमाने वाली ब्रिटिश कम्पनी को जब घाटा होने लगा तो पहले तो उसने भाड़ा कम करके इस भारतीय कम्पनी को पछाड़ना चाहा पर ऐसा न होने पर वहाँ उपलब्ध अंग्रेजों के प्रशासन तन्त्र की सहायता से हर तरह का नुकसान पहुँचाने का प्रयास शुरू हो गया। नतीजा, जिले के सारे अंग्रेज इस भारतीय कम्पनी के पीछे पड़ गये। भारतीय जहाज रानी के पहले ही, देशी कपड़ों की मिल भी कायम हो चुकी थी तथा बम्बई की शाह लाइन्स नामक एक कम्पनी भी इसी प्रकार सामने आयी। ब्रिटिश के इस कुचक्र व षड्यन्त्र से घबराना तो दूर पिल्लै ने इस स्वदेशी आन्दोलन के साथ-साथ स्थानीय अंग्रेजों की 'कोरलमिल्स' के मजदूरों की दुर्दशा दूर करने के लिये एक और आन्दोलन चला दिया कि ६० प्रतिशत मुनाफा कमाने वाली कम्पनी को मजदूरों को यथोचित वेतन आदि सुविधायें देनी चाहिए। जाहिर है आन्दोलन धीरे-धीरे उग्र होता गया तथा अंग्रेजों व कोरल कम्पनी के दमनकारी कदमों के बावजूद चिदम्बरम् व उनके अन्य सहयोगी श्री सुब्रमणयम् शिव व पद्मनाभ आयंगर के जीवट से आखिरकार मिल वालों को

झुकना पड़ा व मजदूरों की माँगे मान ली गयी। सारे जिले में इस आन्दोलन के कारण काफी जागृति आ चुकी थी।

अंग्रेज तथा मिल वाले अब चिदम्बरम् को येन-केन प्रकारेण अपने मार्ग से हटाना चाहते थे तथा उन्हें किसी प्रकार गिरफ्तार कर जेल भेजने की योजना बना रहे थे। इसी बीच श्री विपिनचन्द्र पाल रिहा हुये एवं सारे भारत के साथ ट्यूटीकोरेन व तिरुनेवैली में भी खुशियाँ मनायी गयी व नि:शुल्क पाठागार व चिकित्सा केन्द्र खोले गये व उत्सव मनाने की तैयारी चलने लगी। तभी पिल्लै को एक अंग्रेज अफसर मिस्टर एशे का पत्र मिला कि पिल्लै उत्सव न करें। किसी भी राजनैतिक कार्यकलाप में भाग न लें व ट्यूटीकोरिन छोड़कर चले जायें। टकराव की स्थिति पैदा हो गयी तथा जिला मजिस्ट्रेट ने चिदम्बरम् पिल्लै को उनके दोनों अनन्य सहयोगियों के साथ गिरफ्तार कर लिया गया। उन्हें भारी जय-जयकार के बीच जेल भेज दिया गया।

नतीजा तिरुनलवैली की जनता ने दंगे शुरू कर दिये। दुकानें बन्द, मजदूर हड़ताल पर तथा सारे लोग सड़कों पर उतर आये, पुलिस ने काबू करने के लिये गोलियाँ चलाई जिसमें चार लोग वीरगति को प्राप्त हुये पर अंग्रेजों में इतना डर समा गया कि वे रात्रि में जहाजों पर जाकर सोये।

सरकार की दमन नीति प्रारम्भ हो गयी। भयंकर आतंक फैल गया और सारा दोष पिल्लै पर डाल दिया गया। सौभाग्य से 'हिन्दू' नामक एक अखवार ने जनता का पक्ष लिया तथा इसी कारण वह सारे दक्षिण भारत में लोकप्रिय हो गया। षड्यन्त्र का झूठा मुकद्दमा चलाकर चिदम्बरम् को ४० वर्ष व सुब्रमण्यम् शिव को १० वर्ष के काले पानी की सजा हुई। परन्तु जनता के जबर्दस्त विरोध व आन्दोलन से घबराकर उन दोनों की सजा ६-६ वर्ष कर दी गयी। स्पष्ट रूप से ये दंगे क्रान्तिकारी आन्दोलन के ही समरूप थे जिसके प्रणेता श्री चिदम्बरम् पिल्लै व उनके क्रान्तिकारी थे। चिदम्बरम् भारत में मशहूर हुये यहाँ तक कि हिन्दी में उन पर गीत बने। काकोरी षड्यन्त्र के लोग उन गीतों को गाते रहते थे।

बाघा जतीन

बंगाल में जन्मे उच्च कोटि के शरीर सोष्ठव के स्वामी, साहस व जोखिम उठाने में अग्रणी, संगठन क्षमता में अनुपम तथा अंग्रेजों द्वारा छिन्न-भिन्न कर दिये बंगाल क्रान्तिकारी दल को पुर्नजीवित

कर उसे बंगाल में सक्रिय करने वाले इस अनुकरणीय वीर यतीन्द्रनाथ मुखर्जी का नाम बाघा जतीन भी ऐसे ही नहीं पड़ गया था वरन् अपने गाँव 'कया' में उत्पात मचाने वाले एक बाघ को मात्र नेपाली भुझाली से प्रहार करते-करते उसे मार डालकर ग्राम को मुक्त कराने में अपार साहस व शौर्य का परिचय देकर उन्होंने यह सम्मान प्राप्त किया था। यह बात दीगर है कि बाघ से लड़ते-लड़ते खुद उनके शरीर पर करीब ३०० घाव थे जिनसे उबरते-उबरते उन्हें एक वर्ष का समय लग गया। अपने क्रान्तिकारी दल की दुस्साहसिक गतिविधियों द्वारा वे अंग्रेजों को एहसास दिलाते रहे कि भारत में सशस्त्र क्रान्ति व क्रान्तिकारी अभी भी जीवित हैं तथा मात्र ४० वर्ष की अल्प आयु में अंग्रेजों से संघर्ष करते-करते वे वीरगति को प्राप्त हुये।

बंगाल प्रान्त के कृष्ण नगर के कया गाँव में श्री उमेशचन्द्र व श्रीमती सरस्वती देवी के घर में ६ दिसम्बर १८७९ को यतीन्द्रनाथ मुखर्जी का जन्म हुआ तथा उनका लालन-पालन उनके मामा के पास हुआ जो नादिया के महाराज के एजेण्ट व सरकारी अनुवादक थे। बचपन से ही उन्होंने तैरने, घुड़सवार व बन्दूक चलाने में महारथ हासिल कर ली थी उनकी पढ़ाई गाँव में तथा बाद में कृष्ण नगर में चलती रही।

जैसा कि कहावत है कि पूत के पैर पालने में ही दिखाई दे जाते हैं उसी मुहावरे को चरितार्थ करते हुये जतीन ने अपने बाल्यकाल से साहस दया सत्यवादिता व नेतृत्व क्षमता का परिचय देना शुरू कर दिया। कृष्ण नगर के एक वकील श्री बाराशासी राय के बिगड़ैल घोड़े को जो रस्सा तोड़कर बाजार में उत्पात मचा रहा था जतीन ने कन्धे के बालों को पकड़कर इतनी जोर से खींचा कि वह बेबस हो गया। घोड़े का साईस धन्यवाद देता हुआ घोड़े को ले गया। इसी प्रकार एक बार रास्ते में घास के बड़े गट्ठे को सर पर रखने के लिये सहायता की गुहार लगाती एक वृद्धा को वह गट्ठर उठाकर ही नहीं दिया पर यह अनुभव करके कि इतने भारी वजन को वह सहन नहीं कर पायेगी। यतीन स्वयं वह बोझा अपने सर पर रखकर उसके घर छोड़ आये। सजा से न घबराते हुये अपने स्कूल की खिड़की का शीशा तोड़ने की बात उन्होंने अपने टीचर के सन्मुख पूरी ईमानदारी से स्वीकार कर ली।

बाघ को मार डालने का विवरण पहले ही दिया जा चुका है। हाँ अपनी चोटों से उबरने के बाद उन्होंने एफ०ए० (आजकल का

क्लास १२) पास कर लिया तथा शार्ट हैण्ड व टाइपिंग सीखने लगे। कालान्तर में प्रारम्भ में उन्होंने एक गोरी कम्पनी में ५० रुपये माहवार पर, फिर मुजफ्फरपुर में ८० रुपये पर नौकरी की। अपनी प्रथम तनख्वाह पूरी की पूरी उन्होंने अपने एक जरूरतमन्द मित्र को दे दी। जिसकी माँ को इलाज के लिये रुपये की आवश्यकता थी।

सन् १९०० में एक प्रतियोगिता में उत्तीर्ण हो गये, तथा बंगाल सरकार में शार्ट हैण्ड टाइपिस्ट बनकर उन्हें १२० रुपये प्रतिमाह तनख्वाह मिलने लगी। वे एक आई०सी०एस० श्री बिलर के आधीन सचिवालय में कार्य करने लगे। विलर साहब राजस्व विभाग के सदस्य थे तथा उन्हीं के कारण यतीन को राजाओं, महाराजाओं आदि के जीवन की झाँकिया प्राप्त हुयी व उन्हें पता लगा कि किस तरह एक मामूली आई०सी०एस० अफसर के सामने ये लोग केंचुए बने रहते हैं। अप्रैल सन् १९०० में उनका विवाह इन्दुबाला नामक कन्या से हो गया। अभी तक उनमें राजनैतिक चेतना नहीं पहुँची थी पर उनका निडर स्वभाव यथावत था। एक बार दार्जिलिंग जाते समय गाड़ी में कुछ अंग्रेजों की मनमानी व अभद्रता को स्वीकार न करते हुये वे उनसे भी भिड़ गये तथा बाद में पुलिस द्वारा गिरफ्तार कर लिये गये। पर सरकारी मुलाजिम होने के कारण जमानत पर छूट गये। कालान्तर में अंग्रेजों ने उन पर मुकद्दमा न चलाना ही श्रेयस्कर समझा क्योंकि इस मुकद्दमे को लेकर अशान्ति फैलने की आशंका थी।

धीरे-धीरे अब उनमें राजनैतिक चेतना व देश की दुर्दशा के दृश्य भी आने लगे थे तथा खुदीराम बोस व प्रफुल्ल चाकी के बलिदान की कहानी भी उन तक पहुँच रही थी व उनमें अपने देश के लिये कुछ करने की इच्छा अंगड़ाई लेने लगी। उन्हें लगा कि मात्र नौकरी करने से देश का भला नहीं होने वाला। १९०३ आते-आते उनके जीवन ने पूरी करवट ले ली थी, जब प्रसिद्ध देशभक्त श्री विद्याभूषण के घर पर वे क्रान्तिकारी अरविन्द घोष से मिले। जिन्हें उन्होंने आश्वासन दिया कि उनकी बंगाल क्रान्तिकारी दल में सक्रिय रूप से सहयोग करेंगे। कालान्तर में अरविन्द के भाई श्री वारीन्द्र घोष जो क्रान्तिकारी दल को चला रहे थे गिरफ्तार कर लिये गये व उन्हें सजा हो गयी तथा बाकी कई साथी भी पकड़ लिये गये। अरविन्द घोष को छोड़ दिया गया और वे पुलिस से बचने के लिये पाण्डेचेरी जाकर आश्रम खोल आध्यात्मवाद की ओर अग्रसर हुये। इस कठिन परिस्थिति में यतीन बाघा ने बंगाल

क्रान्तिकारी दल की बागडोर संभाली व अपनी नेतृत्व क्षमता से उसे प्रभावशाली बनाना प्रारम्भ कर दिया।

ब्रिटिश राजतन्त्र को चुनौती देने के निमित्त बनाये गये उद्देश्यों में से मुख्य थे, शस्त्रास्त्र इकट्ठा करना व विदेशों से उन्हें मँगवाने की व्यवस्था करना, बंगाल में विद्रोह फैलाने के लिये दस हजार राष्ट्र भक्त क्रान्तिकारी तैयार करना, सरकारी तन्त्र को हर प्रकार से नुकसान पहुँचाना, धन की पूर्ति के लिये डकैती आदि डालना, तथा सरकारी मुखबिरों या वकीलों आदि जो क्रान्तिकारियों के मुकद्दमों से सम्बन्धित हों उनकी हत्या करना तथा सेना पुलिस आदि प्रतिष्ठानों में ब्रिटिश के विरुद्ध विद्रोह की भावना पैदा करना आदि। उनके मन में एक और बात विशेष थी कि सतत् क्रान्ति में लिप्त दूर तक चलने वाले क्रान्तिकारी तैयार करना, बहुत समय साध्य व कष्ठसाध्य है, पर कुछ दिनों के लिये कुछ घटना विशेष क अंजाम देने के लिये कुछ दिनों के क्रान्तिकारी तैयार करना अधिक सुलभ होगा। इस बिन्दु पर भी यतीन ने विशेष ध्यान रखा।

यतीन बाघा अलीपुर षड्यन्त्र से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित थे पर पुलिस को उनके विरुद्ध कोई सबूत नहीं मिला। २३ अप्रैल १९०९ को डायमण्ड हारबर के निकट नेत्रा गांव में रामतारक मित्र के घर डाका पड़ा। जिसमें श्री भट्टाचार्य जो बाद में एम०एन० राय नाम से प्रसिद्ध हुये सबद्ध थे। इस केस में पुलिस के हाथ कई सूत्र लगे तथा कुछ और क्रान्तिकारियों के नाम भी उन्हें पता लगे। १७ फरवरी १९०९ को आशुतोष विश्वास जो अलीपुर केस में सरकारी वकील थे उन्हें मार डाला गया तथा ९ जनवरी १९१० को एक अन्य व्यक्ति शमभुल हक की इसी वजह से हत्या कर दी गयी। वीरेन्द्रनाथ गुप्त को एक १८ वर्षीय युवक ने उसे गोली मारी थी। उसके पास से कई महत्त्वपूर्ण कागजात मिले तथा एक सघन क्रान्ति होने के कुछ सूत्र भी पुलिस को मिले। जिनमें शक की सुई निश्चित रूप से यतीन की ओर जाती थी। वीरेन्द्र को तो सजा हो गयी तथा यतीन २० जनवरी १९१० को गिरफ्तार कर लिये गये। उन्हें बहुत यातनायें देने पर भी जब कुछ नहीं निकला उन पर जो मुकद्दमा चला वह 'हावड़ा षड्यन्त्र' मुकद्दमा कहलाया पर उनके विरुद्ध कोई प्रमाण न होने पर अन्ततः अप्रैल १९११ में उन्हें छोड़ दिया गया।

कुछ क्रान्तिकारी सेना में जाकर सैनिक छावनी में विद्रोह की

भावना बढ़ाने के लिये भेजे गये। जिसका प्रभाव भी देखने को मिला तथा इस कारण से सेना की दस जाट रेजीमेण्ट को समाप्त कर दिया गया मुकद्दमे से छूटने के बाद यतीन जसौर चले गये तथा कुछ समय के लिये परिवार के साथ रहने के लिये चले गये तथा वहीं से घटना चक्र को देखते रहे। १९१५-१६ में प्रथम विश्वयुद्ध प्रारम्भ हो गया तथा यतीन अपने दल को पुनः सक्रिय करने लग गये। क्रान्तिकारियों की एक महत्त्वपूर्ण सभा हुई जिसमें अन्य के अतिरिक्त श्री मित्र, नरेन्द्रनाथ भट्टाचार्य (एम०एन० राय), अमरेन्दु चट्टोपाध्याय, नरेन्द्र सेन, मतिलाल राय आदि क्रान्तिकारी उपस्थित थे तथा अपने पूर्व निर्दिष्ट लक्ष्यों को ध्यान में रखकर कार्यप्रणाली तैयार की गयी। तय हुआ कि एक हजार बम चन्दन नगर में तैयार किये जायें तथा हथियार, धन आदि की व्यवस्था करते हुये अंग्रेजी शासन को अधिक से अधिक क्षति पहुँचाई जाये।

क्रान्तिकारी दल का एक सदस्य शिरशिचन्द्र एक अस्त्र-शस्त्र का व्यवसाय करने वाली कम्पनी में नौकर था। उसने एक जहाज से कम्पनी का माल उतारकर सात-आठ बैलगाड़ियों पर लादकर सीधे क्रान्तिकारियों के हवाले कर दिया व खुद फरार हो गया। इस लूट में पचास माउजर पिस्तौलें व करीब ४० हजार गोलियाँ क्रान्तिकारियों के हाथ लगी। प्रसिद्ध क्रान्तिकारी श्री एम०एन० राय (नरेन्द्र भट्टाचार्य) पहले से ही जर्मनी से अस्त्र-शस्त्रों को मँगवाने की व्यवस्था में लगे थे। जो बाद में हिन्द-जर्मन षड्यन्त्र नाम के रूप में प्रसिद्ध हुआ।

१२ फरवरी १९१५ में गार्डन रीच की वर्ल्ड कम्पनी के १८००० रुपये व २२ फरवरी को वेलिया घाट के एक व्यवसायी (चावल पट्टी रोड पर) की दुकान पर डकैती डालकर बाईस हजार रुपये यानि कुल मिलाकर चालीस हजार रुपये क्रान्तिकारियों के हाथ लगे। दोनों ही घटनाओं में टैक्सी ड्राईवरों ने सहयोग नहीं किया। अतः एक को टैक्सी से उतार दिया गया व दूसरे को गोली मार दी गयी। दोनों ही अवसरों पर कार को पतितपावन घोष ने चलाया। उस सम्बन्ध में कुछ क्रान्तिकारी पकड़ लिये गये।

२४ फरवरी १९१५ को यतीन व चित्तप्रिय मकान में बैठे पिस्तौलें साफ कर रहे थे कि एक पुलिस वाला नीरज हवलदार घर में आ गया तथा उसने इन दोनों को देख लिया। हवलदार को गोली मार दी गयी तथा ये दोनों घर से भाग गये पर हवलादार मरने

से पहले पुलिस को यतीन व चित्तप्रिय के बारे में सब बता गया। पुलिस द्वारा इनकी गिरफ्तारी की तैयारियाँ शुरू हो गयी व इनका हुलिया व बड़ा इनाम अखवारों में निकाल लिया गया। एम०एन० राय पतितपावन घोष आदि पहले ही गिरफ्तार हो चुके थे। यतीन ने एम०एन० राय को छुड़ाने की दो बार नाकाम कोशिस की। इसी बीच राय को जमानत पर छोड़ दिया गया। तथा जमानत की पूरी रकम देकर एम०एन० राय को भारत के बाहर भेज दिया गया। उन्होंने जर्मनों के साथ षड्यन्त्र करके कई बार अस्त्र भेजने का प्रयास किया पर हर बार असफल रहे क्योंकि अस्त्र ले जाने वाले जहाज को कोई न कोई सरकार जब्त कर लेती थी। पुलिस तो यतीन के पीछे लगी ही थी। उन्होंने कलकत्ता छोड़ दिया तथा अपने पाँच साथियों के साथ बालेश्वर पहुँचकर कोफ्तापोदा नामक गाँव में रहने लगे। यतीन नरेन्द्र व मनोरंजन के पास में तथा इससे १२ मील दूर एक गांव में चित्त प्रिय व ज्योतिष रहते थे। पुलिस का घेरा भी धीरे-धीरे बढ़ता जा रहा था तथा बार-बार यतीन को पकड़ पाने में असफल होने के कारण वह बड़ी सावधानी व पूरी तैयारी के साथ आगे बढ़ रही थी.

यतीन अपने सभी साथियों के साथ निकल पड़े व गोविन्दपुर में बूंदी बालम नदी के किनारे पहुँचे। नदी वर्षा के पानी के कारण उफान पर थी। किसी प्रकार एक मछवारे ने उन्हें नदी तो पार करा दी पर पुलिस को व गाँव वालों को सूचना दे दी कि पाँच जर्मन जंगल में घुस गये हैं। अखबारों में निकले पुरुस्कार का लालच तो था ही। गाँव के लोग पीछे पड़ गये तथा पुलिस भी हर एक थाने से मदद लेकर घेरा कसने में लगी रही। इस घेराबन्दी का अन्त वही हुआ जो होना चाहिए था। एक ओर पाँच क्रान्तिकारी सीमित हथियारों के साथ तथा दूसरी ओर ब्रिटिश राज्य का सारा दल-बल। घमासान लड़ाई हुई इसमें चित्तप्रिय तो घटना स्थल पर ही शहीद हो गये। यतीन के गम्भीर घाव लगे तब उन्होंने अपने साथी से सफेद चादर उठाकर शान्ति की घोषणा करवा दी। पुलिस भी इस बीच आ गयी।

तीन खाटों पर चित्तोप्रिय, यतीन व यतीश को लिटाया गया तथा मनोरंजन व नरेन्द्र पैदल ही चले। राह में यतीन ने पुलिस से कहा कि देखिये इन दोनों बालकों के साथ कोई अन्याय न हो। सारी जिम्मेदारी मैं अपने ऊपर लेता हूँ। अगले दिन यतीन अस्पताल में शहीद हो गये। मुकद्दमा चला जिसमें नरेन्द्र व मनोरंजन को

फाँसी तथा यतीश का आजन्म काले पानी की सजा हुई।

यतीन इस प्रकार अज्ञात रूप से बलिदान हो गये। उनकी धर्मपरायणा पत्नी को भी शक रहा कि शायद वह जीवित हैं पर १२ वर्ष बाद शास्त्रों के अनुसार उनके पुतले का दाह संस्कार कर उन्होंने विधवा का रूप धारण कर लिया। यतीन बाघा के इस साहस व त्याग पर बंगाल में साहित्य भरा पड़ा है तथा उनका नाम आज भी बड़े गर्व के साथ लिया जाता है।

सूर्यसेन

जिन दिनों यतीन बाघा अपने आत्मबलिदान की अन्तिम बेला के निकट थे उन्हीं दिनों क्रान्ति की क्षितिज पर बंगाल के चटगाँव क्षेत्र में सूर्यसेन नामक एक अन्य तेजस्वी नक्षत्र का उदय हो रहा था। संगठन क्षमता में अद्वितीय, चटगाँव व उसके चारों ओर फैले ग्रामों भी अतिलोकप्रिय व स्नेह के पात्र इस युवक में व्यूह रचना व अपने कार्य सम्पादन में असाधारण कौशल व तेजी का समावेश इसे अन्य बलिदानी क्रान्तिकारियों से थोड़ा सा अलग कर देता है। इसका एक ही स्वप्न था कि भले ही एक दिन के लिये ही सही चारे चटगाँव क्षेत्र को ब्रिटिश तन्त्र के प्रभाव से मुक्त कर सारे राष्ट्र को एक सन्देश दिया जाये। इस कार्य हेतु उन्होंने अपने क्रान्ति के उत्तर काल में एक छोटी सी सैनिक टुकड़ी 'इण्डियन रिपब्लिकन आर्मी' का कठन किया। जिसे पूरी तरह से सैनिक शिक्षा-दीक्षा में पारंगत करते रहे तथा स्वयं को व अपने क्रान्तिकारी साथियों को सैनिक कहलाने लगे। उनका यह अभियान चटगाँव शस्त्रागार काण्ड नाम से मशहूर है।

यह वह समय था जब राष्ट्र एक दोराहे पर खड़ा था सन् १९२१ में महात्मा गाँधी ने असहयोग आन्दोलन शुरू किया पर कुछ ही समय बाद इस तथाकथित अहिंसात्मक आन्दोलन ने उग्र रूप ले लिया तथा चौरी-चौरा का काण्ड हो गया। जिससे बापू ने घबराकर आन्दोलन को वापिस ले लिया। यह आम तौर पर सभी क्रान्तिकारी जानते थे कि अहिंसात्मक असहयोग आन्दोलन थोड़ा-बहुत दबाव मूलक तो हो सकता है पर इससे स्वतन्त्रता नहीं मिल सकती। फिर भी क्योंकि यह एक नया प्रयोग होने के कारण कुछ समय तक क्रान्तिकारी चुप बैठ गये पर कोई अभीप्सित फल न मिलते देखकर पुनः अपनी क्रान्तिकारी गतिविधियों में संलिप्त हो गये।

१९२१ के बाद पुनः गाँधी जी ने १९३० में असहयोग का आन्दोलन किया तथा यही वह समय था जब सूर्यसेन अपनी छोटी सी सेना को बलिदानी हौसलों के जरिये राष्ट्र को सन्देश देना चाहते थे कि बिना सीधी टक्कर लिये इन ब्रिटिशों को देश से निकालना सम्भव नहीं है तथा जनता को असहयोग आन्दोलन या सशस्त्र क्रान्ति में से किसी एक को ही चुनना होगा। उनका यह बलिदान रंग लाया तथा अपने सारे प्रयासों के बावजूद जब बापू का असहयोग आन्दोलन निष्फल हो गया तो उन्होंने भी १९४२ के 'भारत छोड़ो' तथा 'करो या मरो' का संकल्प लिया। इतिहास गवाह है कि १९४२ का आन्दोलन अहिंसात्मक न होकर पूरी तरह से क्रान्ति का तुमुलनाद करता हुआ आगे बढ़ रहा था। तथा स्वतन्त्रता प्राप्ति के अनेक आधारभूत हेतुओं में से एक यह भी होने का गौरव, इस आन्दोलन ने प्राप्त किया। अस्तु।

राष्ट्र के इस वीर सपूत ने अपना जीवन सन् १९१८ में चटगाँव के एक विद्यालय में शिक्षक के तौर पर प्रारम्भ किया। परन्तु उनका उद्देश्य विद्यार्थियों में से उनको ढूँढ़ना था जो देश प्रेम से ओत-प्रोत होकर क्रान्ति करने का मादा रखते हों। इसी बीच जलियाँ बाला बाग काण्ड ने उनकी आग को और भड़का दिया तथा चटगांव में हुई छात्र सभा में उन्होंने अपने ओजस्वी विचार रखे। सौभाग्य से उन्हें दो ऐसे शिष्य मिल गये जो पूर्णरूपेण उनकी विचारधारा के पोषक थे तथा आगे चटगाँव शस्त्रागार काण्ड में उन्होंने पूरे जोश के साथ हिस्सा लिया। उनके नाम हैं गणेश घोष (जो बाद में संसद सदस्य बने) और अनन्त सिंह।

एक गुप्त समिति 'साम्याश्रम' नाम से बनायी गयी जिसमें समान विचारधारा वाले युवकों को ढूँढ़कर शामिल किया जाने लगा तथा इनकी बैठकें व भविष्य की कार्य योजना पर विचार विमर्श आदि चटगाँव की पहाड़ियों पर होता रहा। कालान्तर में इस समूह में 'देवेनडे' नामक कलकत्ता के दुर्घर्ष क्रान्तिकारी का भी समावेश हुआ। दल के सुचारू संचालन के लिये जब धन की आवश्यकता महसूस हुई तो चटगाँव के रेल कर्मचारियों को वेतन बाँटने वाले खजाने को देवेनडे के नेतृत्व में लूट लिया गया। तथा उससे मिले १७ हजार रुपये से दल का काम चलने लगा। परन्तु चटगाँव के प्रशासन को शक हो गया कि कोई क्रान्तिकारी दल यहाँ कार्य कर रहा है। अतः पुलिस चारों ओर फैल गयी तथा काफी प्रयासों के बाद भी सूर्यसेन व उनके सदस्य नहीं पकड़े जा

सके। इसका मुख्य कारण सूर्यसेन का चटगाँव के ग्रामों में अत्यन्त लोकप्रिय होना था, जिस कारण वे किसी भी विपत्ति के समय ग्रामों में जाकर छिप जाते थे व सुरक्षित रहते थे।

एक बार पुलिस ढूँढ़ते-ढूँढ़ते उस गांव में जा पहुँची जहाँ सूर्यसेन, देवेनडे आदि क्रान्तिकारी रहते थे। भनक लगते ही वे सब अपने अस्त्र-शस्त्रों को व बमों को समेटकर निकल गये। पुलिस ने पहुँचने पर ग्रामवासियों को यह कहने पर अपने साथ कर लिया कि वे सब डकैत थे तथा उन्हें पकड़वाने के लिये ग्रामवासी भी पुलिस के साथ डाकू-डाकू चिल्लाते आगे बढ़ने लगे। अन्ततः दोनों ही के बीच मुठभेड़ हुई तथा किसी प्रकार वे क्रान्तिकारी पुलिस के चंगुल से निकल गये। उनके दो साथी जो घायल हो गये थे गिरफ्तार कर लिये गये। बाद में सत्य को जानकर गाँव वालों को बहुत पछतावा हुआ।

इस प्रकार सूर्यसेन को पकड़ने का अभियान चलता रहा व बार-बार उनकी आँखों में धूल झोंकते-झोंकते अन्ततः सन् १९२५ में सूर्यसेन गिरफ्तार कर लिये गये पर उनके विरुद्ध कोई सबूत न होने के कारण उन्हें नजरबंद कर दिया गया। इसी प्रकार कोई सबूत न होने पर भी सैकड़ों क्रान्तिकारी सारे भारत की जेलों में बंद थे। जिनको मुक्त कराने का अभियान सारे राष्ट्र में चल रहा था। नुक्ता था कि या तो उनके खिलाफ सबूत देने पर मुकद्दमा चलायें या उन्हें छोड़ें। १९२८ आते ही ऐसी स्थिति आ गयी कि पुलिस को सारे नजरबन्द क्रान्तिकारियों को छोड़ना पड़ा तथा सूर्यसेन भी मुक्त हो गये तथा गाँधी के असहयोग आन्दोलन में सम्मिलित होकर कलकत्ता काँग्रेस के प्रतिनिधि बन गये पर छद्म रूप से अपने क्रान्ति कार्य को आगे बढ़ाने में लगे रहे।

अपने क्रान्तिकारी कार्यक्रम को मूर्त रूप देने की प्रेरणा उन्हें १९२८ में मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता में सम्पादित काँग्रेस के कलकत्ता में हुये अधिवेशन में तब मिली जब उन्होंने सुभाषचन्द्र बोस को अपने सात हजार अनुयाईयों के साथ सैनिक वेशभूषा व अनुशासन में सारे अधिवेशन के दौरान संगठित रूप से कार्य करते देखा। सुभाष के व्यक्तित्त्व व कृतित्त्व से चमत्कृत, सूर्यसेन ने एक ऐसा ही सैनिक संगठन बनाने का विचार किया जिसकी पहली टुकड़ी का स्त्रजन व प्रशिक्षण चटगाँव से शुरू होना था।

अपने विश्वस्त सहयोगियों के साथ गहन परामर्श कर उन्होंने अपने दल का नामकरण 'इण्डियन रिपब्लिकन आर्मी' करके

इसकी पहली टुकड़ी का गठन चटगाँव में करने के उद्देश्य से वे सब वहाँ पर एकत्रित होने लगे। सब अपने को सैनिक कहलाने लगे तथा सैनिक अभियान व अनुशासन के सम्बन्ध में पुस्तकों का अध्ययन कर प्रशिक्षण प्रारम्भ कर दिया। सूर्यसेन गोरेल्ला पद्धति वाला युद्ध कौशल अपने सैनिकों में विकसित करने का प्रशिक्षण देते रहे। साथ ही सभी साथियों से चटगाँव के पहाड़ी इलाकों व अन्य भौगोलिक परिस्थितियों का विस्तृत अध्ययन कर किस प्रकार उन सभी का अपने हमले के लिये प्रयोग किया जा सकता है पर भी विचार करने पर जोर देते रहे।

इस सब कार्य सम्पादन के लिये उन्होंने चटगाँव के पास के ग्रामीण इलाकों से चन्दे के रूप में करीब ४० हजार रुपये इकट्ठे किये जिससे अपने सभी सैनिकों के लिये वर्दियाँ व अन्य उपयुक्त सैन्य सामान का भी प्रबन्ध किया गया। कालान्तर में एक सैनिक सभा में उन्होंने प्रण किया कि भले ही दो तीन दिन के लिये ही सही सारे चटगाँव क्षेत्र को विदेशी प्रशासन से मुक्त कराकर राष्ट्रीय सरकार की स्थापना करेंगे तथा बाद में भी गोरेल्ला पद्धति से विदेशी प्रशासन पर चोट करते रहने व उन्हें अपनी उपस्थिति का आभास आमरण कराते रहेंगे और उन बलिदानियों ने १९३० से अगले चार वर्ष तक यही किया तथा अन्त में सभी या तो मारे गये या फाँसी चढ़ गये तथा बाकी काले पानी की सजा भुगतने के लिये भेज दिये गये। अस्तु।

चटगाँव के भौगोलिक, संचार व्यवस्था, अंग्रेजों की सैनिक शक्ति आदि पहलुओं के सम्बन्ध में यथासम्भव सूचनायें इकट्ठा कर १८ अप्रैल सन् १९३० को चटगाँव शस्त्रागार पर सुनियोजित आक्रमण करने का दिन नियत किया गया। कुल ६२ नौजवानों को इस अभियान के लिये चुना गया तथा सभी जवानों से सर्वसम्मति से सूर्यसेन को अपना सर्वाधिनायक चुना। इस अवसर पर ६ टुकड़ियाँ बनायी गयी जिनका नेतृत्व ६ क्रान्तिकारी यथा निर्मल सेन, लोकनाथ बल, अनन्त सिंह, गणेश घोष, अम्बिका चक्रवर्ती तथा उपेन्द्र भट्टाचार्य को दिया गया। सबके लिये विशेष सैनिक वर्दी तैयार की गयी। हर एक टुकड़ी को उसका कार्य व प्रक्रिया पूरी बारीकी से समझायी गयी तथा १८ अप्रैल १९३० को रात्रि ९.४५ काम शुरू हुआ। इससे पहले मात्र वह टुकड़ी जिसे रेलवे लाइन को नष्ट करना था करीब साढ़े नौ बजे चली गयी थी।

ठीक समय लोकनाथ बल ने अपनी टुकड़ी के साथ एक

टैक्सी किराये पर ली तथा रास्ते में ही ड्राइवर को बेहोश कर रास्ते में छोड़कर स्वयं ऑग्जीलरी सेना के शस्त्रागार पर हमला करने चल पड़े। वहाँ पहरेदार को गोली मारकर आगे बढ़े तभी शस्त्रागार से कुछ अंग्रेज बाहर आये पर उन्हें भी गोली मार दी गयी। लोकनाथ बल अपने साथियों के साथ शस्त्रागार में घुसकर शस्त्र इकट्ठा करने लगे इसी बीच बाहर से गोलियाँ चलने की आवाज आयी तब जितने शस्त्र इकट्ठा हो सकते थे उन्हें लेकर बाकी शस्त्रागार में आग लगाकर वे अपने नियत स्थान पर वापिस चल पड़े। अम्बिका चक्रवर्ती टेलीफोन एक्सचेंज को बर्बाद करके मुख्यालय लौट आये।

इसी प्रकार गणेश घोष व अनन्त सिंह भी एक टैक्सी पर अपनी टुकड़ी सहित चले तथा रास्ते में ड्राइवर को बाँधकर छोड़ दिया तथा वे अपनी-अपनी गाड़ियों में पुलिस शस्त्रागार पहुँच गये। छोटी सी पहाड़ी पर बने इसके भवन के पास पहुँचे तथा तभी सर्वाधिकनायक सूर्यसेन भी अपने ३० सैनिकों सहित गाड़ी लेकर आ गये। चार पहरेदार खड़े थे बातचीत शुरू होने से पहले ही अनन्त सिंह ने पहरेदार को गोली मार दी तथा साथियों से कहा फायर इस प्रकार बाकी तीन पहरेदार भी मार डाले गये। बाद में जो और पहरेदार आये उन पर बम डाला गया तथा शस्त्रागार के यथेष्ठ हथियार उनके कब्जे में आ गये जितने हथियार चार कारों में आ सकते थे ले लिये गये व सूर्यसेन के आदेशानुसार बाकी हथियारों व शस्त्रागार को आग लगा दी गयी। इस प्रकार सारा कार्य जहाँ तक हो सका सारी टुकड़ियों ने पूरे कर लिये तथा मुख्यालय लौट आये और सूर्यसेन को गार्ड ऑफ ऑनर से सम्मनित किया। इस सारे अभियान में अंग्रेज प्रशासन के करीब १५० लोग मारे गये। क्रान्तिकारियों के आक्रमण से भयभीत होकर सभी अंग्रेज अपने परिवारों सहित कर्ण फूल नदी के पास आश्रय लेने चले गये।

कई क्रान्तिकारी घायल हो गये थे उन्हें सुरक्षित स्थान पर शहर में भेजने का जिम्मा गणेश घोष व अनन्त सिंह को दिया गया पर देर रात भी जब वे वापिस नहीं आये तो शहर को अपने लिये असुरक्षित जानकर सूर्यसेन ने रात भर जलालाबाद की पहाड़ी पर आश्रय लेने का निर्णय लिया। इसके लिये अम्बिका चक्रवर्ती को पहाड़ी रास्ता अच्छी तरह पता होने के कारण उन्हें पथ प्रदर्शक बनाया गया तथा वे पहाड़ी की ओर चल पड़े। क्रान्तिकारियों का

अभियान काफी कुछ सफल रहा। यथा स्थान पहुँचकर कुछ खाने की व्यवस्था करने अम्बिका चक्रवर्ती गाँव जाकर एक हडियाँ खिचड़ी ले आये जिसे सबने मिल बाँटकर खा लिया।

उधर प्रशासन को उनका पता लग चुका था तथा चटगाँव में अधिक सैनिक भी आस-पास से बुला लिये गये। दूसरे दिन जलालाबाद के समस्त पहाड़ी इलाकों को चारों ओर से घेरकर सैनिक कार्यवाही शुरू कर दी गयी व साथ ही सैन्य घेरा कसना शुरू कर दिया गया। सारी स्थितियाँ भाँपकर सूर्यसेन ने अपने साथियों से परामर्श कर अपने सर पर कफन बाँध युद्ध में उतरने का निर्णय किया व आक्रमण का भार लोकनाथ बल पर डाला गया। जाहिर कि यह दो बेमेल सैन्य शक्तियों के बीच लड़ा जाने वाला ऐसा युद्ध था जिसका परिणाम पहले से ही सबको पता था। भूखे-प्यासे क्रान्तिकारी लड़ते रहे व बलिदान होते रहे। किसी प्रकार सूर्यसेन को बाहर निकालने का मार्ग मिल गया तथा वे अपने सभी मृत साथियों को छोड़कर अलग-अलग दिशाओं में निकल गये तथा अलग होने से पहले इस क्रान्तिकारी अभियान को गोरेल्ला पद्धति अपनाकर शहीद होने तक जारी रखेंगे, ऐसा वचन एक दूसरे को देखकर गये। जिससे देशवासियों को सन्देश जाये कि स्वतन्त्रता की देवी का वरण असहयोग से नहीं वरन् अपने युवा रक्त से उसका तिलक करने से ही सम्भव है।

इस अभियान में मात्र एक क्रान्तिकारी अर्धेन्दु दस्तीदार ही पुलिस के हाथ लगा जिसे इतना सताया गया कि उसकी मृत्यु हो गयी। सूर्यसेन ने पुनः ग्राम की ओर रुख किया तथा अपने बचे-खुचे साथियों के साथ सम्पर्क साधकर अभियान को आगे बढ़ाने का प्रयत्न करते रहे। पुलिस को यह पता लग चुका था कि क्रान्तिकारी अब सारे बंगाल में फैल चुके हैं। अतः उनकी सारे प्रान्त में खोजखबर शुरू हो गयी तथा सारा कानून पुलिस के हाथ में आने पर आम जनता पर क्रूर अत्याचार शुरू हो गये इस सबसे द्रवित होकर अनन्त सिंह ने यह सोचकर अपने आपको गिरफ्तार करा दिया कि ऐसा होने पर पुलिस, जनता को बख्श देगी। पर ऐसा नहीं हुआ। हाँ अनन्त सिंह सलाखों के पीछे चले गये।

कुछ समय बाद कलकत्ता पुलिस ने चन्दन नगर में एक मकान को घेर लिया जिससे छुपे हुये लोकनाथ बल व कुछ अन्य क्रान्तिकारी भी गिरफ्तार कर लिये गये परन्तु सूर्यसेन अभी भी स्वतन्त्र घूम रहे थे जो पुलिस को बहुत खटक रहा था। उन्हें

मुखबिरों द्वारा सूचना मिलने पर पुलिस ने कई बार घेराबन्दी की पर अपने कौशल के कारण बार-बार हाथ से निकल जाते थे। यह क्रम करीब चार वर्ष तक चलता रहा तथा इसी काल खण्ड में पुलिस की आँखों में धूल झोंकते-झोंकते यथासम्भव अपने दल को संगठित करते-करते सूर्यसेन गोरेल्ला पद्धति से अपने क्रान्तिकारियों द्वारा स्थान-स्थान पर अंग्रेजों व प्रशासन को अपनी उपस्थिति का परिचय कराते रहे। यथा—

पुलिस विभाग के प्रधान मिस्टर केन की चटगाँव स्टेशन पर हत्या करने की योजना बनी पर उनके स्थान पर एक अन्य कुख्यात पुलिस अफसर मितारिणी मुखर्जी गोली से मार डाला गया। इस अवसर पर गिरफ्तार हुये दो क्रान्तिकारी रामकृष्ण व काली पद चक्रवर्ती को आजन्म काले पानी की सजा हो गयी। चटगाँव के पुलिस मुख्यालय को डायनेमाइट से उड़ाने का प्रयास हुआ जो सफल नहीं हो पाया।

जनता पर जघन्य अत्याचार करने वाले एक अधिकारी असानुल्ला को सन् १९३१ के अगस्त में उस समय मात्र एक १४ वर्ष के बालक हरीपद ने गोलियों से भून दिया जब वह चटगाँव में फुटबॉल में देख रहा था। हरिपद के भाई को उसके सामने जमीन पर पटक कर मार डाला गया तथा उसे भी बुरी तरह प्रताड़ना देकर आजन्म काले पानी की सजा हो गयी।

सूर्यसेन के ही प्रभाव से उसकी महिला क्रान्तिकारिणी प्रीतिलता बोदेदार ने अपने अन्य साथियों से मिलकर गोरों के क्लब पर आक्रमण कर एक को जान से मार दिया व खुद घायल हो गये। पश्चात् उस क्रान्तिकारिणी ने जहर खाकर अपना आत्मोत्सर्ग कर लिया। इसी प्रकार सूर्यसेन द्वारा प्रेरित आक्रमण गोरों पर होते रहे। अन्ततः फरवरी सन् १९३३ में एक मुखबिर की सहायता से उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। कुछ ही दिन बाद मुखबिर मार डाला गया तथा १२ जनवरी १९३४ को सूर्यसेन व उनके सहयोगी तारकेश्वर को फाँसी दे दी गयी।

इस प्रकार मात्र अपने १५ वर्ष के क्रान्तिकारी जीवन में सूर्यसेन ने अपने संगठन के कार्यकलापों के माध्यम से सारे राष्ट्र में जो सन्देश भेजा वह व्यर्थ नहीं गया तथा जनता ने १९४२ के आन्दोलन में दिखा दिया कि आजादी की बलिवेदी पर अपने रक्त से तिलक करने वाले ही उसे पाने के अधिकारी होते हैं।

खण्ड-३

सन् १८५७ पश्चात् के क्रान्तिकारियों का अश्वमेध यज्ञ

१८५७ से सदी के अन्त तक क्रान्तिकारी गतिविधियाँ व काँग्रेस का जन्म

१८५७ के बाद भारतीय, भारतीयों की तरह सोचने लगे थे, तथा उनमें क्षेत्रवाद की भावना काफी हद तक मिट चुकी थी। जाहिर है कि इस भावना के पीछे अंग्रेजों द्वारा की गयी क्रूरता की पराकाष्ठा की मुख्य भूमिका थी। इसी बीच कुछ राष्ट्रवादी समाजसुधारकों, यथा स्वामी दयानन्द सरस्वती, स्वामी रामकृष्ण परमहंस तथा बाद में विवेकानन्द आदि के प्रेरणादायक वक्तव्यों व समाज में चलाये जाने वाले उनके जागरुकता आन्दोलनों ने भी इस राष्ट्रीयता की भावना को मजबूत होने में मुख्य भूमिका निभाई।

१८५७ के बाद सशस्त्र क्रान्ति का पुनः शंख फूँकने का श्रेय दो बहावी सम्प्रदाय (जोकि ब्रिटिश को भारत से बाहर निकालने पर आमदा था) के दो मुसलमान नवयुवकों को जाता है। उनमें से एक अब्दुल्लाह ने जज नॉर्मेन को छुरे से हमला करके सन् १८७१ में इसलिये मार डाला था क्योंकि उसने, उनके नेता अमीर खाँ की अलोकतान्त्रिक कैद के विपक्ष में दिये गये सारे न्याय संगत तर्कों को खारिज कर उसकी कैद को बरकरार रखा था। अब्दुल्लाह को फांसी हो गयी। इसी प्रकार ८ फरवरी १८७२ को शेर अली नामक अन्य बहावी मुसलमान ने लॉर्डमेयो जो अण्डमान का दौरा करने गये थे उनकी हत्या गोली मारकर कर दी। उसे भी फाँसी की सजा हो गयी।

इसी बीच बंगाल में गुप्त समितियाँ बनती रहीं पर अपनी योजनाओं को किसी निष्कर्ष तक ले जाने में ये सफल नहीं हुई तथा एक प्रकार से अक्षम साबित हुई। समय बीतते-बीतते सन् १८८५ में काँग्रेस की स्थापना हुई। जिसमें उन दिनों न तो किसी क्रान्तिकारी शक्ति को ही हम देखते हैं और न ही उसके कार्यक्रम में कोई क्रान्तिकारी तत्त्व था। उन दिनों यह मात्र अर्जी दिहिन्दियों का एक मजमा मात्र समझी जाती थी। इसी कालखण्ड में हम महाराष्ट्र में बलिदानियों के शिरोमणि स्वनामधन्य चाफेकर बन्धुओं तथा सावरकर बन्धुओं का भारतीय क्रान्ति क्षितिज पर उदय होते

हुये देखते हैं। इनमें से चाफेकर बन्धु अपने क्रान्तिकार्यों द्वारा एक साथ ब्रिटिश द्वारा फांसी पर चढ़ा दिये गये तथा सावरकर बन्धुओं ने असीमित कष्ट सहते हुये भी अपनी प्रखर राष्ट्र भक्ति का परिचय देते हुये भारतीय क्रान्ति को अग्रसर होने में अपना अपूर्व योगदान दिया। इन बन्धुओं का अति संक्षिप्त परिचय हम यहाँ दे रहे हैं।

चाफेकर बन्धु यथा दामोदर, बालकृष्ण तथा वासुदेव, प्रसिद्ध कीर्तनकार श्री हरिपन्त चाफेकर के पुत्र थे तथा कीर्तन में कोई न कोई बाद्य यन्त्र बजाते थे। इन तीनों ही भाईयों का कीर्तन में बिल्कुल भी मन नहीं लगता था तथा कुश्ती कसरत आदि में ये ज्यादा रुचि लेते थे, साथ ही राष्ट्र को स्वतन्त्र कराने की इच्छा भी इनमें बलवती होती गयी। दामोदर द्वारा चलाये जाने वाले अखाड़े की लोकप्रियता बढ़ती चली गयी तथा यह तरुण देशभक्तों की एक संस्था बन गयी।

१८९७ में पूना में प्लेग फैला तथा बीमार लोगों को जबर्दस्ती अपने मकान से निकाला जाने लगा जिसमें 'मिस्टर रैण्ड' नामक बदमिजाज हाकिम को लगाया गया। ऐसे बीमारी के माहौल में उसने जो क्रूरता दिखाई उसकी वजह से जगह-जगह असन्तोष व्याप्त हो गया। २२ जून १८९७ को जब देश में महारानी विक्टोरिया का राज्याभिषेक का साठवाँ वर्ष मनाया जा रहा था तभी पूना में दामोदर ने मिस्टर रैण्ड व लैफ्टीनेण्ट आयर्स्ट को गोली मार दी, वे तत्काल मर गये। कालान्तर में एक मुखबिर गणेश शंकर द्रविड़ के कारण दामोदर पकड़ लिये गये तथा उनके भाई बालकृष्ण को भी गिरफ्तार कर लिया गया। सबसे छोटे भाई वासुदेव ने गणेश शंकर व उसके सहयोगी भाई की हत्या कर दी तथा वह भी पुलिस द्वारा पकड़ लिये गये।

दामोदर ने अदालत में हत्या को स्वीकार किया। साथ ही यह भी कहा कि पहले महारानी विक्टोरिया की मूर्ति पर तारकोल पोतने वाला वही था तथा उसी के अन्य सहयोगियों ने कुछ क्रूर अंग्रेजों की पिटाई भी की थी। फिर क्या था ब्रिटिश साम्राज्यवाद की वह चक्की जो १८५७ के बाद से बन्द पड़ी थी हँसी और एक पैशाचिक घर्र-घर्र की अवाज से सक्रिय हो गयी। इसका नाम था ब्रिटिश न्यायालय, जो न्याय के नाम पर अन्याय ही अन्याय करते रहने तथा बेगुनाहों को फाँसी, उम्र कैद, जेल आदि में भेजने के

लिये काफी बदनाम थी।

मुकद्दमे में तीनों भाईयों को फाँसी की सजा हुई। एक ही परिवार के तीन भाईयों को फांसी होने पर सारे देश में जोश फैला तथा सावरकर ने एक कविता में लिखा कि—''तीन का क्या है हम सात भी होते तो हवनकुण्ड में अपना सिर चढ़ा देते। हे माता! तेरी मुक्ति के लिये यदि हमें स्वयं को भी होम करने का मौका मिले तो यह हमारे लिये सबसे खुशी की बात है।''

सावरकर बन्धु-गणेश दामोदर सावरकर व विनायक दामोदर सावरकर दोनों भाई भी राष्ट्र को स्वतन्त्र कराने की प्रक्रिया में संलिप्त थे। विनायक सावरकर, प्रारम्भ में श्री अगम्य गुरु परमहंस के ओजस्वी वक्तृत्व से प्रभावित रहे तथा २२ वर्ष की अवस्था में सन् १९०६ में इंग्लैण्ड चले गये। भारत में उन्होंने अपने बड़े भाई गणेश सावरकर के साथ मिलकर एक संस्था 'मित्र मेला' चलाई तथा इसी बीच सन् १९०८ में गणेश ने 'लघु अभिनव भारत मेला' के नाम से कुछ देशभक्ति पूर्ण भड़काने वाली कवितायें लिखी जिनके कारण उन पर १२१ धारा लगाकर अर्थात् 'सरकार के विरुद्ध युद्ध' छेड़ने के अपराध में काले पानी की सजा देकर अण्डमान भेज दिया गया। जहाँ कारावास के दिनों में ही उनकी मृत्यु हो गयी। कुछ कवितायें लिखने पर ही ब्रिटिश न्याय प्रक्रिया का किसी को देशद्रोह के अपराध में काला पानी की सजा देना क्रूरता व अन्याय की पराकाष्ठा है।

इस अपमान का बदला लेना आवश्यक था। अतः २१ दिसम्बर १९०९ को पार्टी के एक क्रान्तिकारी ने इस मुकद्दमे में गणेश सावरकर को फँसाने वाले अंग्रेज मिस्टर जैक्सन की हत्या कर दी। इस पर मुकद्दमा चला तथा तीन क्रान्तिकारियों को फाँसी हो गयी तथा अनेक कार्यकर्ताओं को सजा हो गयी। इंग्लैण्ड में भारतीयों में क्रान्ति की अग्नि को और प्रज्वलित करने के लिये सावरकर ने १८५७ का स्वातन्त्र्य समर नामक पुस्तक लिखी जिस पर बिना देखे ही ब्रिटिश सरकार ने पाबंदी लगा दी। पर किसी प्रकार लुकाछिपी करते-करते यह पुस्तक हॉलैण्ड से प्रकाशित हो गयी तथा उसकी प्रतियाँ सर्वत्र क्रान्तिकारियों को भेजी गयी। इस प्रकार हम देखते हैं कि क्रान्तिकारी आन्दोलन के प्रारम्भिक युग में दो षड्यन्त्रकारी दल थे। (१) चाफेकर बन्धु, (२) सावरकर बन्धु। सावरकर को भी कालान्तर में काले पानी की सजा हुई तथा

उनकी मृत्यु सन् १९६६ में कैंसर से हुई।

क्रान्ति की प्रथम चिंगारी महाराष्ट्र में लगी तथा कालान्तर में यह सारे देश में बड़े वेग से फैली। अस्तु। महाराष्ट्र में क्रान्ति का सूत्रपात करने के बाद भी वहाँ क्रान्तिकारियों को कोई एक ऐसा उत्साहवर्धक, प्रेरणादायक, जनलुभावन प्रसंग नहीं मिल पाया जिससे सारे महाराष्ट्रीयन इन क्रान्तिकारियों से कंधे से कंधा मिलाकर आगे बढ़ पाते। कालान्तर में इस कमी को दूर किया स्वनामधन्य लोकमान्य बालगंगाधर तिलक ने जिन्होंने 'गणेश उत्सव' को महाराष्ट्र के जन-जन में प्रसारित व प्रचारित कर उन्हें एक सूत्र में बाँध दिया। इसकी सफलता देख कालान्तर में लोकमान्य तिलक ने एक अन्य 'शिवाजी उत्सव' भी प्रारम्भ किया जिसने प्रभावशाली ढंग से सारे महाराष्ट्र को एक सूत्र में बाँधने का सराहनीय प्रयास किया।

बंगाल में क्रान्ति का सूत्रपात

महाराष्ट्र में क्रान्तिकारियों के बलिदान के समाचार तो सारे देश में फैल ही रहे थे तथा विशेषकर बंगाल में इसकी सुगबुहाट एकदम जोर पकड़ने लगी थी। कारण, तत्कालीन वायसराय लॉर्ड कर्जन ने कुछ ऐसे फैसले लिये जो बंगाल के जन मानस के गले ही नहीं उतरे। अपितु कुछ को तो उन्होंने अपमानजनक माना। अतः जो भूमि जनमानस को एक सूत्र को बाँधने के लिये चाहिए थी वह बंगाल में स्वयमेव ही तैयार थी। तथा उसमें असंतोष के बीज लॉर्ड कर्जन ने बो दिये।

२०वीं सदी के प्रारम्भ में बंगाली समाज मुख्यतः मध्य वर्ग को अंग्रेजी आदि अपनी स्वार्थ सिद्धि से सम्बन्धित शिक्षा देकर ब्रिटिश शासन उन्हें नौकरी देता रहता था। ज्ञातव्य हो कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी का खूनी पंजा सबसे पहले बंगाल पर ही पड़ा तथा वहाँ के मध्यम वर्ग के पढ़े-लिखे जनमानस को आनायास ही अच्छी सरकारी नौकरी मिलते रहने के कारण उन भाड़े के 'भद्रलोकजनों' ने इस गुलामी के मनहूस साये को अपने ऊपर स्वेच्छा व प्रसन्नता से पहन रखा था तथा चैन की बंशी बजा रहे थे। साथ ही बंगाल में भारतीयों द्वारा छोटी-मोटी मिलें खुलनी प्रारम्भ हो गयी थी। जो एक ओर तो पूंजीवाद की पोषक थी व दूसरी ओर उनका अपनी उन्नति में सबसे बड़ा बाधक ब्रिटिश पूंजीवाद था। छोटे-मोटे

दुश्मन तथा कुटीर उद्योग छोटे उद्योग धन्धे आदि तो ब्रिटिश ने पहले ही पूर्ण बर्बरता से समाप्त कर दिये थे तथा दस्तकारों व अन्य शिल्पियों की उंगलियाँ तक कटवा डाली थी। अर्थात् कुटीर उद्योगों व अन्य सारे ग्रामीण उद्योग धन्धों का पहले से ही सर्वनाश कर चुकी ब्रिटिश पूंजीवादी शक्तियाँ ही इन छोटे भारतीय पूंजीवादियों की दुश्मन नं० १ थी। अपने को आगे बढ़ाने के लिये इन लोगों में कहीं न कहीं 'स्वदेशी' को प्रचारित करने की सुगबुहाट तो थी पर माकूल अवसर, अब तक उन्हें उपलब्ध नहीं था।

यह सारा माहौल लॉर्ड कर्जन ने आने वाले तीन-चार वर्षों में लिये गये अपने जनमानस में उत्तेजना फैलाने वाले निर्णयों को लेकर व क्रियान्वयन करके बंगालियों के समक्ष परोसकर रख दिया। लॉर्ड कर्जन ने अंग्रेजी पढ़े-लिखे लड़कों की संख्या पर रोक लगाने के लिये 'विश्वविद्यालय कानून' पारित करके इन भाड़े के भद्रलोक मध्यम वर्ग को सीधे चोट पहुँचाई। अतः इन लोगों का ब्रिटिश प्रेम हवा हो गया तथा इनका तीव्र विरोध होने लगा।

१९०५ में एक विश्वविद्यालय के दीक्षान्त समारोह में लॉर्ड कर्जन ने टिप्पणी की कि 'भारतीय स्वभावतः मिथ्यावादी होते हैं।' १९०७ आते-आते आग में घी डालने के समान इन्होंने दो और निर्णय लिये पहला बंगाल प्रान्त जो उन दिनों बंगाल, बिहार व उड़ीसा को मिलाकर बना था उसे अलग कर दिया तथा १९०७ में 'बंगाल यानी बंग्लावासी बंगाल' को भी दो हिस्सों में बाँट दिया जो पूर्वी व पश्चिमी बंगाल कहलाया। इसके विभाजन का मुख्य उद्देश्य मुस्लिम व हिन्दुओं में दरार डालना था। कारण विभाजन धार्मिक बाहुल्य क्षेत्र, के आधार पर मुस्लिम बहुल पूवाझ बंगाल व हिन्दू बहुल पश्चिम बंगाल बना दिया गया।

जाहिर है कि इन सारे निर्णयों ने बंगाल में एक ऐसी आग लगा दी व चेतना जगा दी जिसमें बंगालियों ने मात्र सत्ता विरोध को छोड़ ब्रिटिश को भारत से बाहर निकाल फेंकने का निर्णय किया और अपने सीमित साधनों व सीमाओं के होने पर भी वे सशस्त्र विद्रोह व गोरिल्ला युद्ध पद्धति अपनाने को तेयार हो गये। यद्यपि यह प्रारम्भ में बंगाल का एकाकी पथ ही कहा जायेगा, पर उसे उन दिनों के महत्त्वपूर्ण नेता यथा बालगंगाधर तिलक, गोपालकृष्ण गोखले, खापर्दे, लाला लाजपतराय, सरदार अजीत

सिंह आदि ने पूर्ण समर्थन दिया।

इसी युग में बंगाल ने कुछ ऐसे जाज्वल्यमान नक्षत्र राष्ट्र को दिये जिन्होंने भारत में ही नहीं वरन् भारत से बाहर बसे अप्रवासी भारतीयों की 'सशस्त्र क्रान्ति' कर भारत को आजाद कराने में संलग्न पार्टी यथा अमेरिका की गदर पार्टी, तथा ब्रिटेन की इण्डिया होमरूल पार्टी के क्रान्तिकारियों से सम्पर्क स्थापित किया तथा स्वयं भी उनमें भाग लेकर, प्रथम विश्वयुद्ध में भारत में सशस्त्र क्रान्ति का प्रयास एक ओर किया, तो दूसरी ओर भारत में भी राष्ट्रीय चेतना जागृत करने के लिये पत्र-पत्रिकाएँ, सभायें ही नहीं की अपितु अंग्रेजों व क्रान्तिकारियों को पकड़वाने में मुखबिर बने भारतीयों को भी अपनी गोलियों का निशाना बनाने में नहीं हिचके। इन विभूतियों के नाम, सर्वश्री अरविन्द घोष जो बाद में पाण्डुचेरी अरविन्द आश्रम के संस्थापक बने, श्री बारिन्द्र घोष (अरविन्द के छोटे भाई), श्री भूपेन्द्रनाथ दत्त (स्वामी विवेकानन्द के छोटे भाई), श्री विपिनचन्द्र पाल आदि प्रमुख थे।

इस प्रकार लॉर्ड कर्जन के इन निर्णयों ने मानो सारे बंगाल को ही एक सूत्र में बाँधकर अंग्रेजों के विरुद्ध खड़ा कर दिया। अरविन्द घोष देश के विभिन्न भागों में जाकर जो भाषण देते थे उनका सार था—''यदि कोई जाति स्वराज्य फिर से प्राप्त कर उसकी रक्षा करना चाहती है तो जनता को जागना पड़ेगा। राष्ट्रीय जीवन के साथ उसका चेतना युक्त सम्पर्क स्थापित रखना पड़ेगा, जिससे हर व्यक्ति अनुभव करे कि राष्ट्र के द्वारा प्राप्त स्वतन्त्रता में ही उसकी स्वतन्त्रता निहित है।'' अन्य क्रान्तिकारी सुरेन्द्रनाथ ने कहा—अब आवेदन निवेदन का समय गया अब हम अपने पैरों पर खड़े होंगे।

विपिनचन्द्र पाल भावी भारत की तस्वीर एक पत्रिका न्यू इण्डिया में पहले ही साफ कर चुके थे कि हमारे आदर्श का नवीन भारत न तो हिन्दू है और न मुसलमान यहाँ तक कि वह ब्रिटिश भी नहीं है। इन तीनों की संस्कृति के समन्वय से ही नवीन भारत का निर्माण होगा।

फिर क्या था व्यायाम व मानसिक उन्नति के नाम पर अनुशीलन समितियाँ खुलनी शुरू हो गयी तथा कुछ ही समय में वे सारे बंगाल में फैल गयी। इनकी संख्या का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि मात्र ढाका क्षेत्र में लगभग ६०० समितियाँ थी।

इनका कार्य क्रान्ति कराना व लोक मानस को तैयार करना तथा तथा दूसरी ओर सूचना सम्प्रेषण का ये एक प्रभावशाली माध्यम थी। ब्रिटिश द्वारा प्रकाशित श्रीचन्द्र कमेटी की रिपोर्ट के अनुसार ''ढाका अनुशीलन समिति तथा जिन संस्थाओं को पश्चिम बंगाल व उत्तरी बंगाल पार्टियों के नाम से हमने याद किया है। दूर-दूर तक फैली हुई थी और उनकी सीमायें एक दूसरे को लाँघ जाती थी।'' ब्रिटिश ने स्वयं इन समितियों की प्रभाव क्षमता को स्वीकार किया है। बंगाल में आन्दोलन का प्रारम्भ स्वदेशी, पिकेटिंग, राष्ट्रीय शिक्षा यहाँ तक कि भद्र अवज्ञा का आन्दोलन के साथ प्रारम्भ हुआ। ज्ञातव्य हो कि इन भारतीयकरण के आदर्शों को बढ़ाने वाले क्रान्तिकारी जब पूरी शक्ति से इन्हें प्रतिपादित करने में लगे थे तब यानि १९०५-६ में श्रद्धेय बापू का पदार्पण भी भारत की क्षितिज पर नहीं हुआ था, अतः उनके द्वारा किये गये स्वदेशी आदि नारे क्रान्तिकारियों द्वारा दिये गये नारों के बहुत बाद में है। अस्तु।

बंगाल के इस आन्दोलन को दमन करने को प्रतिबद्ध ब्रिटिश शासन भी पूरी ताकत से जुट गया। जहाँ एक ओर इसने अपनी पैशाचिक चक्की यथा ब्रिटिश न्यायालय के पक्षपात् पूर्ण, ब्रिटिश हितैषी निर्णयों का सहारा लेकर लोगों को तरह-तरह की सजायें देनी शुरू कर दी वहीं क्रान्तिकारियों ने अंग्रेजों व उनके पिट्ठू भारतीयों व मुखबिरों की हत्या का एक अन्तहीन दौर प्रारम्भ कर दिया। दमन के विरुद्ध क्रान्तिकारियों द्वारा चलाये जाने वाले इन हत्याकाण्डों के सिलसिले में कुछ का ही उल्लेख करना पर्याप्त है, जो उन दिनों के बंग्ला मानस के हृदय में उठने वाले राष्ट्रीय ज्वारों व राष्ट्र को स्वतन्त्र कराने की उद्दीप्त भावना को उजागर करता है। यथा—

१. १९०६ में युगान्तर नामक पत्रिका राष्ट्रीय जागरण का उल्लेखनीय कार्य कर रही थी। मात्र इसी अपराध में उसके सम्पादक भूपेन्द्रनाथ दत्त को राजद्रोह का आरोप लगाकर जेल भेज दिया गया।

२. सरकार अरविन्द घोष को उनके राष्ट्रवादी भाषणों व जन आन्दोलनों को सक्रिय करने के कारण सजा देना चाहती थी। परन्तु उसके लिये श्री विपिनचन्द्र पाल की गवाही आवश्यक थी। जिसके लिये उन्होंने इन्कार कर दिया। बस क्या था इस पर

किंग्सफोर्ड नामक अंग्रेज ने उन्हें छह माह की सजा कर दी। इतना ही नहीं अदालत में इस मुकद्दमे के कारण बहुत भीड़ हो जाने से उस भीड़ पर बेंतों की नृशंस मार शुरू कर दी। इसी किंग्सफोर्ड ने ने ब्रह्मबान्धव उपाध्याय जो संन्ध्या नामक पत्र के सम्पादक थे पर मुकद्दमा चला दिया परन्तु मुकद्दमे के दौरान ही उनकी मृत्यु हो गयी। किंग्सफोर्ड ने 'सन्ध्या' के अलावा युगान्तर, वन्देमातरम् व न्यू इण्डिया नामक पत्रिकाओं के सम्पादकों पर भी मुकद्दमे चलाये तथा समाचार पत्रों द्वारा विद्रोह के लिये प्रोत्साहन सम्बन्धी कानून यथा—"**News Papers incitement to offence act**" कानून के तहत इन सभी अखबारों का प्रकाशन बन्द कर दिया गया।

इस असहनीय अपमान का बदला लेने के लिये दल ने किंग्सफोर्ड की हत्या के लिये खुदीराम बोस व प्रफुलचाकी को चुना। इसी बीच किंग्सफोर्ड का तबादला मुजफ्फरपुर हो गया। ये दोनों क्रान्तिकारी भी मुजफ्फरपुर जाकर जज की गतिविधियों का जायजा लेकर उसकी हत्या की योजना बनाने लगे। उन्हें पता लगा कि किंग्सफोर्ड एक खास रंग की गाड़ी में शाम को घूमने जाता है। बस, ये दोनों तैयार होकर ३० अप्रैल १९०८ को रात को आठ बजे नियत स्थान पर पहुँचकर जज की गाड़ी का इन्तजार करने लगे। कुछ ही देर में उसी रंग से मिलती-जुलती गाड़ी जैसे ही निकली खुदीराम ने उस पर बम फेंक दिया तथा दोनों फरार हो गये। दुर्भाग्य से गाड़ी में दो महिलायें मिसेज केनैडी व मिस केनैडी थी जो तत्काल मर गयी। खुदीराम रातभर भागते-भागते २४-२५ मील बैनी पहुँचे। सुबह के अखबारों में खबर देखकर जब उन्हें अपनी गलती का ऐहसास हुआ तो उनके मुख से जोर की चीख निकल गयी लोगों ने उनके बिखरे बाल व भाव भंगिमा देखकर उन्हें पुलिस के हवाले तो कर दिया पर हकीकत जानकर सारे बिहार व बंगाल में उनके प्रति अपार श्रद्धा उमड़ पड़ी। ११ अगस्त को उन्हें फाँसी दे दी गयी। उनके सहयोगी प्रफुलचाकी ने भी चारों ओर पुलिस से घिर जाने पर स्वयं को गोली मार ली।

खुदीराम की चिता पूरी भस्म हो चुकी थी। उसकी राख लेने के लिये जन समूह उमड़ पड़ा तथा किसी ने गण्डाताबीज, किसी ने पोटली या अन्य विधि से उस अमर शहीद की यादगार समेटकर रख ली, स्त्रियों ने उसकी राख से तिलक किया व अपने स्तनों पर भी मला, जिससे उनकी सन्तानें उनका दूध पीकर खुदीराम जैसी

बने।

इसी प्रकार अलीपुर बमकाण्ड में पकड़े गये वारिन्द्रनाथ घोष व अन्य क्रान्तिकारियों के विरुद्ध मुखबिर बने हुये 'नरेन्द्र गोसाई' को जेल में ही दो क्रान्तिकारियों यथा कन्हाईलाल व सत्येन्द्र चाकी ने मिलकर, गवाही देने से पहले ही जान से मार डाला। कन्हईलाल ने भागते हुये और करीब-करीब साफ बचते हुये नरेन्द्र गोसाई को भागते-भागते ही गोलियों से भूनकर रख दिया। यह सारा काण्ड जेल के अस्पताल में हुआ। जाहिर है कि इन दोनों क्रान्तिकारियों को भी फाँसी की सजा हो गयी। पर बंगाल जनमानस ने इन दोनों महान् क्रान्तिकारियों यथा खुदीराम व कन्हाईलाल के ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध इस प्रकार सशक्त व खुल्लम-खुल्ला चुनौती व प्रहार करने के कारण ये वहाँ की लोककथाओं व लोरियों में व्याप्त होकर अमर हो गये। बंगालवासी उनकी वीर गाथायें अपने बच्चों को बड़े चाव से सुनाते थे।

भारत में स्वतन्त्रा के लिये सशस्त्र क्रान्ति को वसंभावी मानते हुये एक अन्य क्रान्तिकारी श्री वारिन्द्र घोष का थोड़ा कार्यकलाप भी दिया जाता है। डॉ० श्री डी०के० घोष के पुत्र व श्री अरविन्द घोष के छोटे भाई वारिन्द्र घोष १९०३ में इंग्लैण्ड से भारत आये तथा शीघ्र ही सारे बंगाल व देश के अन्य भागों में भी राष्ट्रीय मिशन की भाँति भारतीय स्वाधीनता का प्रचार करने लगे। संगठन बढ़ाने के लिये उन्होंने गुप्त समितियों की स्थापना की, अपनी देख-रेख में कुछ चुने हुये १४-१५ क्रान्तिकारियों को तैयार किया। अस्त्र-शस्त्र इकट्ठे किये तथा अपने प्रयासों से ११ पिस्तोलें, ४ रायफलें और एक बन्दूक इकट्ठा कर ली। अपने अन्य सहयोगियों से मिलकर ३२ नम्बर मुरारीपुर रोड के एक मकान में बम बनाने की फैक्ट्री डाली जिसमें अन्य क्रान्तिकारी, उल्लासकर व हेमचन्द्र दास भी शामिल थे। वारिन्द्र घोष का मानना था कि यह जानते हुये भी कि राजनैतिक हत्याओं से राष्ट्र स्वाधीन नहीं होगा फिर भी यह देशवासियों को जगाने व स्वाधीनता का महत्त्व समझाने के लिये आवश्यक है।

उनकी बम फैक्ट्री अन्ततः अंग्रेजों द्वारा पकड़ ली गयी तथा यह षड्यन्त्र 'अलीपुर बम काण्ड' नाम से प्रसिद्ध हुआ तथा यह काण्ड २ जुलाई १९०८ को हुआ था। इसमें वारिन्द्र घोष, उल्लासकर, हेमचन्द्र सहित ३४ क्रान्तिकारी पकड़े गये तथा उन्हें

सजा हो गयी। उनमें से एक नरेन्द्र गोसाई मुखबिर बन गया जिसकी क्रान्तिकारी कन्हाईलाल ने जेल के अस्पताल में हत्या कर दी। इन सभी क्रान्तिकारियों को सजा तो हो गयी पर इस मुकद्दमे में संलिप्त अधिकतर पदाधिकारियों की हत्या कर दी गयी। यथा १० फरवरी १९०८ को सरकारी वकील जान से मारा डाला गया। २४ फरवरी १९१० को हाईकोर्ट अलीपुर बम काण्ड की अपील की सुनवाई के समय डी०एस०पी० को मार डाला गया।

जाहिर है कि सारा बंगाल तथा काफी हद तक भारत के अन्य क्षेत्र भी इन अलमस्तों के पीछे था। सार यह है कि बंगाल के शिक्षित युवक इस प्रकार ब्रिटिश साम्राज्यवाद पर वार कर रहे थे। इन हत्याओं का सिलसिला अनन्त है, तथा उनमें से प्रत्येक का वर्णन यहाँ सम्भव ही नहीं है और नहीं आवश्यक है। इसी क्रम में डी०एस०पी० बसन्त चटर्जी, सी०आई०डी० के मधुसूदन भट्टाचार्य, पुलिस इन्स्पैक्टर चटर्जी आदि की भी हत्यायें इसी सन्दर्भ में सन् १९०८-१५ के बीच कर दी गयी।

एक अन्य साहसिक हत्याकाण्ड के प्रयास में ६ दिसम्बर १९०७ को बंगाल के गवर्नर की गाड़ी को मिदनापुर जाते समय बम से उड़ाने का प्रयास हुआ। गवर्नर के सौभाग्य से उसका डब्बा थोड़ा आगे निकल गया तथा बाद में बम फटा। गवर्नर तो बच गया पर क्रान्तिकारियों के अपार शौर्य व साहस को सारा भारत भी अनदेखा न कर सका।

इस प्रकार हम सारे बंगाल को राष्ट्र प्रेम व स्वतन्त्राभिमानी नवयुवकों के प्रेरणादायक कार्यकलापों से सराबोर पाते हैं तथा ब्रिटिश भी महसूस करने लगे थे कि कलकत्ता में अपनी राजधानी रखना खतरे से खाली नहीं है। अतः राजधानी को देहली स्थानान्तरित करने का विचार चल रहा था। कारण सिर्फ यह कि अंग्रेज देहली को कलकत्ता के मुकाबले कहीं अधिक सुरक्षित समझने लगे थे वैसे भी प्रथम विश्वयुद्ध के बादल भी धीरे-धीरे गहराने लगे थे, ऐसी हालत में भी वे कलकत्ता से पलायन श्रेयस्कर समझते थे।

उत्तर प्रदेश, पंजाब व दिल्ली में भी क्रान्तिकारी गतिविधियाँ

बंगाल के क्रान्तिपथ के स्फुलिंग भारत के अन्य भागों में भी पहुँच गये थे तो भला उत्तर प्रदेश देहली व पंजाब इससे कैसे

अछूते रह सकते थे। वहाँ भी सरकारी दमन चक्र व शोषण की वजह से असन्तोष के बीज पनप रहे थे पर उस असन्तोष को सक्षम व सही अभिव्यक्ति देने के लिये उस समय नेतृत्व का अभाव था। पंजाब की उस समय की दशा का वर्णन तत्कालीन गर्वनर सर डैञ्जिल इबट्सन १९०७ में जारी अपनी रिपोर्ट में इस प्रकार करते हैं—नये विचारों का जोर-शोर से प्रचार हो रहा है। पूर्व तथा पश्चिम में ये विचार पढ़े लिखे लोगों में खासकर वकील, मुंशी व छात्रों में फैले हैं पर मध्य पंजाब में तो ये विचार सभी श्रेणी के लोगों में फैले मालूम देते हैं। लोगों में बड़ी बेचैनी व असंतोष है। लाहौर से आन्दोलनकारी आ-आ कर राजद्रोह का प्रचार करते रहते हैं। ये रावलपिंडी, स्यालकोट तथा लायलपुर में अंग्रेजों के विरुद्ध बड़े जोर-शोर से प्रचार कर रहे हैं। लाहौर में तो इस प्रचार कार्य का कुछ कहना नहीं, इससे सारे शहर में एक बेचैनी फैली है। जब पंजाब का गवर्नर यह रिपोर्ट लिख रहा है तो यथार्थ में वहाँ के जनमानस मे कितना गहरा असंतोष व्याप्त होगा इसकी कल्पना करना मुश्किल नहीं है।

आर्थिक शोषण व गहरे असन्तोष को दबाने के लिये सेना की मदद से, जनता का दमन करते रहने के कारण वहाँ के सभी वर्ग यथा खेतिहर, रेल के कुली, आदि हड़ताल पर उतर आये तो इस स्थिति से निपटने के लिये तथा न्याय का दिखावा करने के लिये कानूनों की किताबों को खंगाल कर एक १८१८ का रेगूलेशन नं० ३ नामक एक अस्त्र निकाला, जिसके अन्तर्गत उन्होंने लाला लाजपत राय तथा सरदार अजीत सिंह जैसे लोकप्रिय नेताओं को गिरफ्तार कर बर्मा निर्वासित कर दिया। उनका दोष मात्र यह था कि उन्होंने २८ सभायें की जिनमें २३ राजनैतिक थी। वायसराय महोदय ने इन्हें राजद्रोही कहते हुये कहा—हम भूल नहीं सकते कि लाहौर में गोरे खामख्वाह बेइज्जत किये गये तथा रावलपिंडी में दंगे हुये, इसके सम्बन्ध में गवर्नर बहादुर ने गम्भीर मन्तव्य दिये उसे हम नहीं भुला सकते। इसी मन्तव्य पर लाला लाजपत राय व अजीत सिंह गिरफ्तार कर लिये गये। जाहिर है कि जनता में और अधिक असंतोष भर गया। पर अभी तक सक्षम नेतृत्व न होने के कारण उसे संगठनात्मक रूप नहीं दिया जा सका था।

पंजाब में इस प्रकार असंतोष की लहर के साथ-साथ, देहली भी धीरे-धीरे अंगड़ाई ले रहा था। लाला हरदयाल देहली के रहने

वाले थे, उन्होंने पंजाब से एम०ए० पास कर आगे पढ़ने विलायत की ओर रुख तो किया पर वहाँ की पढ़ाई को गुलामी को बढ़ावा देने वाली मानकर वे भारत वापिस आ गये राजनैतिक शिक्षा प्रचार में जुट गये तथा १९०८ आते-आते लाहौर व देहली में विशेष रूप से क्रियाशील हो गये। उनके कई अनुयाईयों में दीनानाथ, जे०एन० चटर्जी, अमीरचन्द्र आदि प्रमुख थे। लाला हरदयाल कालान्तर में अमेरिका, इंग्लैण्ड, जर्मनी आदि रास्तों से भारत को आजाद कराने के लिये क्रियाशील हो गये तथा उन्होंने देहली के संगठन का भार अमीरचन्द्र को सौंप दिया। तथा अमीरचन्द्र पूरी निष्ठा से लग गये व अपने अन्य सहयोगियों विशेषकर श्री अवधविहारी के साथ मिलकर नये-नये क्रान्तिकारी सदस्य भर्ती करते रहे। उनका बंगाल से भी सम्बन्ध थोड़ा-थोड़ा जुड़ रहा था।

१९१० में अलीपुर षड्यन्त्र समाप्त होने पर रासबिहारी के उत्तर भारत में आने पर देहली के क्रान्तिकारियों से सम्बन्ध दृढ़ होता गया तथा इस आन्दोलन में महात्मा हंसराज, उनके पुत्र बलराज, चरणदास, मन्नूलाल, खुदीराम, आदि व्यक्ति भी शामिल थे। पर रासबिहारी के हैड क्लर्क होकर देहरादून के जंगल विभाग में आने से पहले अमीरचन्द्र की संस्था केवल प्रचार की संस्था थी।

रासबिहारी ने लाला हरदयाल के पौधे को सींचा, उन्होंने अवधविहारी, दीनानाथ, बालमुकुन्द आदि को राजनैतिक शिक्षा दी, तथा लिबर्टी नाम का उत्तेजक क्रान्तिकारी पर्चा बँटवाया तथा बम आदि बनाने की शिक्षा देनी शुरू की। १९१२ से सर माइकल ओडायर पंजाब के गवर्नर थे तब तक रासबिहारी ने देहली व पंजाब को राजनैतिक व क्रान्ति की दीक्षा देकर उन्हें अपने कार्य में पटु बनाया। तब तक ब्रिटिश का राजधानी स्थानान्तरित करने का विचार क्रियान्वित हो चुका था तथा १९१२ में देहली को राजधानी घोषित कर दिया तथा जन मानस पर खौफ व ब्रिटिश शासन की श्रेष्ठता का प्रभाव छोड़ने के लिये २३ दिसम्बर १९१२ को वायसराय हार्डिंग को मीलों लम्बे जुलूस के साथ देहली में प्रवेश कराने की योजना बनी।

तय कार्यक्रम अनुसार २३ दिसम्बर को भव्य जुलूस निकाला गया। पर जब यह चाँदनी चौक पहुँचा तो किसी अज्ञात दिशा से वायसराय के ऊपर भयानक बम गिरा, पर निशाना चूक जाने से वायसराय तो बच गये पर ब्रिटिश सरकार की सारी योजना पर ही

पानी फिर गया। जब पहले ही दिन क्रान्तिकारियों ने हार्डिंग पर हमला कर अपने मंसूबे जाहिर कर दिये तो उन्हें देहली भी कलकत्ते जैसी खतरनाक लगने लगी। बम की खबर फैलते ही भारतवासियों की बांछे खिल गयी। उन्होंने जाना कि देश वीरों से शून्य नहीं है। देश भक्तों का दिल बल्लियों उछलने लगा। उस बम विस्फोट में वायसराय का अंगरक्षक तो मर गया पर हार्डिंग के सर में हल्की सी चोट आई जिससे वे मूर्च्छित हो गये। ब्रिटिश के सारे मंसूबे पानी में मिल गये।

गिरफ्तारियाँ शुरू हुई तथा मात्र शक के बिना पर मास्टर अमीरचन्द्र, अवधविहारी तथा बालमुकुन्द व बसन्तकुमार विश्वास आदि पकड़े गये। १३ अभियुक्तों पर मुकदमा चला। सात माह तक बहस होने पर भी एक भी गवाह ऐसा नहीं मिला जिसने वायसराय पर बम डालने वाले को देखा हो। फिर भी इस न्यायकारी ब्रिटिश न्यायतन्त्र ने इन चारों को ही फाँसी की सजा दे दी। जाहिर है जनमानस में इस पैशाचिक कर्म के कारण असंतोष भड़क उठा।

अब थोड़ा सा उत्तर प्रदेश के बारे में जानकर हम इस प्रकरण को समाप्त करते हैं। काशी में १९०८ में शचीन्द्रनाथ सान्याल नामक राष्ट्रभक्त ने ढ़ाका की अनुशीलन समिति की तर्ज पर एक क्रान्तिकारी दल की स्थापना की। जिसका नाम उन्होंने 'यंगमैन्स एसोसिएशन' रखा तथा इस दल को और क्रान्तिकारी रूप देने के लिये वे बंगाल गये तथा १९१३ में अनुशीलन नेताओं के माध्यम से उनकी मुलाकात चंदन नगर में रासबिहारी के साथ कराई गई। रासबिहारी को शचीन्द्र एक बारूद से भरे अनार लगे। उनमें असाधारण कर्मशीलता व साधुता थी। शचीन्द्र का दल इस प्रकार रासबिहारी के साथ काम करने लगा और कालान्तर में वे रासबिहारी का दाहिना हाथ बन गये।

यह युद्ध प्रथम विश्वयुद्ध के प्रारम्भ का युग था अतः हम अपने अगले अध्याय में यह जानने का प्रयास करेंगे कि प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान प्रवासी भारतीयों व भारतीयों क्रान्तिकारियों के बीच किस प्रकार के समन्वय व समीकरण थे जो उन्हें राष्ट्र को स्वतन्त्र कराने के लिये प्रेरित कर रहे थे।

प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान प्रवासी भारतीयों द्वारा भारतवर्ष में सशस्त्र क्रान्ति कराने के प्रयासों का संक्षिप्त विवरण

१८५७ के स्वतन्त्रता संग्राम के असफल होने के बाद से ही सशस्त्र क्रान्ति के प्रयासों में संलग्न होने वाले क्रान्तिकारियों की दूसरी पीढ़ी धीरे-धीरे आनी शुरू हो गयी थी। सन् १८५७ तक श्यामजी कृष्ण वर्मा व लोकमान्य बालगंगाधर तिलक का जन्म हो चुका था जिनमें श्यामजी ने इंग्लैण्ड जाकर वहाँ से सशस्त्र क्रान्ति भारत में कराने के प्रयास शुरू किये तथा बाल गंगाधर तिलक ने भारत में रहकर यही कार्य किया। कालान्तर में वे काँग्रेस में शामिल तो हो गये पर अपने उग्र विचारों के कारण वे गरम दल के सरगना रहे। इन दोनों का व अन्य क्रान्तिकारियों का संक्षिप्त जीवन परिचय पहले ही दिया जा चुका है। उन दिनों काफी भारतीय देश छोड़कर अमेरिका व केनेडा में भी बस रहे थे जिनमें भूतभूर्व सैनिकों व सिक्खों की संख्या बहुतायत में थी तथा अमेरिका व केनेडा में जीविका के आसान होने पर भी उन्हें पग-पग पर अपमान, घृणा व उपेक्षा का सामना करना पड़ता था क्योंकि वे एक गुलाम देश के नागरिक थे।

१८५७ के बाद ब्रिटेन का वर्चस्व विश्व के अधिकतर भागों पर हो चुका था तथा उसकी सेना व गुप्तचरों का एक प्रभावशाली जाल पूर्वी एशिया, पश्चिमी एशिया सहित यूरोप के भी कई देशों में फैला हुआ था। विश्व के बदलते इस परिदृश्य के सही रूप लेते-लेते १९वीं सदी समाप्ति की ओर अग्रसर होकर २०वीं सदी के लिये मार्ग प्रशस्त कर रही थी।

इस परिदृश्य में प्रथम विश्वयुद्ध के शनैः शनैः गहराते बादलों की पृष्ठभूमि में विदेशों में बसे भारतीयों ने अपने देश को सशस्त्र क्रान्ति व राजनैतिक राहों को अपनाते हुये स्वतन्त्र कराने की छटपटाहट व उत्कट इच्छा लिये अमेरिका, केनेडा, इंग्लैण्ड आदि में क्या-क्या प्रयास किये इसका संक्षिप्त विवरण यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

जहाँ एक ओर इंग्लैण्ड में श्यामजी कृष्ण वर्मा अपने अन्य सहयोगियों यथा सरदारसिंह राणा वीरचन्द्र गाँधी, जे०एम० पारीख आदि सहयोगियों के द्वारा राष्ट्र को स्वतन्त्र कराने के लिये राजनैतिक

मंच का प्रयोग कर रहे थे वही दूसरी ओर ब्रिटेन में विभिन्न संस्थाओं को खोलकर यथा भारतीय संघ व पुस्तकालय, अध्ययन केन्द्र, इण्डिया हाउस, इण्डियन होम रूल सोसायटी आदि के द्वारा भारत में स्थित मेधावी व राष्ट्र भक्त युवकों को इंग्लैण्ड में वजीफे के द्वारा बुलाकर उनमें आन्दोलन व क्रान्ति की अग्नि भरकर उन्हें पुनः वापिस भारत भेजकर सशस्त्र क्रान्ति का प्रयास करवा रहे थे।

साथ ही क्रान्तिकारियों को जागरुक करने के लिये उन्होंने इण्डियन सोशियोलॉजिस्ट नामक पत्रिका भी निकाली जो यूरोप सहित भारत के राष्ट्रभक्त क्रान्तिकारियों में काफी लोकप्रिय थी। (विशेष के लिये वर्माजी का जीवन वृत्त संक्षेप में पहले ही वर्णन कर चुके हैं।) इसी समय काल में अमेरिका, केनेडा आदि देशों में बसे भारतीयों ने राष्ट्र को स्वतन्त्र कराने के लिये किस प्रकार सशस्त्र क्रान्ति करने का बीड़ा उठाया। इसका संक्षिप्त उल्लेख यहाँ करने का प्रयास किया जाता है। इस सारी सामग्री का आधार प्रथम विश्वयुद्ध समाप्ति के कुछ वर्षों बाद ब्रिटिश गुप्तचरों व अन्य संस्थाओं द्वारा एकत्रित की गयी सूचनाओं व कार्यकलापों के आधार पर जस्टिस सर रॉलेट द्वारा ब्रिटेन में दी गयी रिपोर्ट तथा भारतीय गदर पार्टी के प्रहारक दल के मुखिया रहे श्री पाण्डुरंग खानखोजे, जो गदर पार्टी के आदेश पर जर्मनी, जापान, तुर्की, आदि देशों के सहयोग से ईरान के रास्ते भारत में सशस्त्र आक्रमण की तैयारी का प्रयास कर रहे थे, उनके द्वारा तैयार की गयी रिपोर्ट जो उन्होंने अपने अन्य क्रान्तिकारी सहयोगी श्री भूपेन्द्र दत्त को सौंपी थी। इन दोनों रिपोर्टों को मुख्य रूप से आधार बनाया गया है। इस कालावधि में अपनी योजनाओं को सफलीभूत करने के प्रयास में कई अभियान एक साथ चल रहे थे। जिन्हें सही परिप्रेक्ष्य में समझने के लिये घटनाओं को सरल ढंग से लिपिबद्ध किया है जिसमें कहीं-कहीं काल, वर्ष का ध्यान नहीं रखा गया है। हाँ ये घटनायें प्रथम विश्वयुद्ध के कुछ वर्ष पहले से लेकर ५-६ वर्ष बाद तक का कालखण्ड अपने में समेटे हुये है। मुख्य घटना क्रम ये हैं—

१. गदर पार्टी की स्थापना

२. भारतीय स्वतन्त्रता संघ की जर्मनी के सहयोग से बर्लिन में स्थापना

३. सशस्त्र क्रान्ति के लिये जाते हुये जहाज कामागाटामारू,

कोरिया, तोषामारू आदि का भारत पहुँचने का असफल प्रयास।

४. गदर पार्टी, भारतीय स्वतन्त्रता संघ (बर्लिन कमेटी) तथा इण्डियन होम रूल सोसाइटी के क्रान्तिकारियों द्वारा विदेशों से अस्त्र-शस्त्र आदि युद्ध सामग्री माबेरिक, हैनरी एस०एस०, एन० लारसेन व अन्य जहाजों द्वारा भारत के क्रान्तिकारियों तक पहुँचाकर अंग्रेजों के विरुद्ध सशस्त्र क्रान्ति कराने का प्रयास।

किसी भी कार्यसिद्धि के अभीष्टीकरण के लिये, तथा उसमें प्रसार-प्रचार करने के लिये, सर्वप्रथम एक सशक्त संगठन की आवश्यकता होती है तथा ज्यों-ज्यों यह संगठन लोकप्रिय व प्रभावशाली बनता जाता है त्यों-त्यों ही उसके कार्य योजना के क्रियान्वयन में त्वरित गति भी आती जाती है। जब विदेशों में यथा अमेरिका, केनेडा, इंग्लैण्ड आदि में नौकरी व आजीविका की तलाश में गये भारतीयों ने यह महसूस किया कि उन्हें कितनी हेय दृष्टि से देखा जाता है व घृणा की जाती है तथा नौकरियों में भी सभी तरह के पक्षपात व अनाचार करके उन्हें, दोयम या तृतीय दर्जे के नागरिकों के समान रखा जाता है तब उन्होंने एक जुट होकर अपना संगठन बनाकर, राजनैतिक व अन्य जरियों द्वारा इस अन्याय का सामना करने की ठानी। इन सभी देशों में करीब-करीब एक ही समय पर इन संगठनों को बनाने की नींव पड़ी। यथा जहाँ अमेरिका में श्री पाण्डुरंग खानखोजे ने १९०७ में, खगेन्द्रनाथ दास, अधरचन्द्र लश्कर, तारकनाथ आदि के साथ मिलकर अमेरिका के कैलीफोर्निया में 'भारतीय स्वाधीनता संघ' की स्थापना की जो कालान्तर में १९१३ में 'गदर पार्टी' बन गया तो इंग्लैण्ड में श्यामजी कृष्ण वर्मा ने १९०८ में 'भारतीय होमरूल्स सोसाइटी' तथा जर्मनी में एक प्रखर राष्ट्रप्रेमी श्री चम्पकरमण पिल्ले ने ज्यूरिख में 'अन्तरराष्ट्रीय प्रो इण्डिया कमेटी' की स्थापना की, जिसे जर्मनी के सहयोग से बर्लिन में सन् १९१४ में 'भारतीय राष्ट्रीय दल' (Indian National Party) नामक संस्था का सृजन किया जिसमें गदर पत्रिका के संस्थापक लाला हरदयाल, तारखनाथ व बरकतुल्ला, हेरम्बलाल गुप्त आदि शामिल थे। स्मरणीय हो कि लाला हरदयाल तीनों ही पार्टियों के कार्यकलापों से काफी गहनता से जुड़े हुये थे। यही संस्था 'बर्लिन समिति' भी कहलाई।

गदर पार्टी का इस प्रकार सन् १९०७ में केलीफोर्निया में जन्म होने के बाद उसके मूल संस्थापक यथा श्री खानखोजे आदि का

मुख्य कार्य अमेरिका में आकर बसने वाले सिक्खों में राष्ट्रप्रेम, क्रान्ति व भारत की स्वाधीनता के बारे में प्रचार करना था। तथा भारतीयों में उत्साह बढ़ाने से जैसी कहावत है कि 'आदमी जुड़ते गये व कारवाँ बनता गया' की उक्ति को चरितार्थ करते हुये १९०८ आते-आते यह आन्दोलन कैलीफोर्निया के सैक्रामण्टों और ओरगिलस्टेटों तक फैल गया तथा पोर्टलैण्ड नामक स्थान पर संघ का केन्द्र स्थापित हो गया। मात्र एक वर्ष में ही इसके सदस्यों में सशस्त्र क्रान्ति करके भारत को ब्रिटिश हुकूमत से स्वतन्त्र कराने की भावना जागी। इसमें असंख्य स्वनामधन्य सदस्यों में से कुछ हैं—काशीराम, बाबा केसर सिंह, करतार सिंह, सोहन सिंह, निधान सिंह चुग्गा, गुरुदित्ता सिंह आदि। सभी क्रान्तिकारी संगठित होकर सोचने लगे तथा १९१३ आते-आते यह सारा आन्दोलन सारे अमेरिका व कनाडा में फैल गया। तभी श्री हरदयाल व अन्य गणमान्य क्रान्तिकारियों की सलाह से इसका नाम 'गदर पार्टी' कर दिया गया तथा गदर नामक पत्र भी निकाला गया। जो युगान्तर नामक स्थान पर गदर प्रेस द्वारा मुद्रित किया जाता था।

इस दल की लोकप्रियता बढ़ने से अब इसके लक्ष्य तथा भारत में सशस्त्र क्रान्ति कराने का संकल्प लेने के लिये फरवरी १९१४ में स्टाकटन नगर में प्रसिद्ध पंजाबी क्रान्तिकारी श्री ज्वाला सिंह के सभापतित्व में अमेरिका के सभी निवासियों की एक सभा की गयी। जिसमें पारित भारत की स्वाधीनता के लिये सशस्त्र क्रान्ति करने का प्रस्ताव ध्वनिमत से अनुमोदित कर दिया गया। कुछ समय बाद एक और सभा शहीद राम सिंह, भगत सिंह, मलाल सिंह, मौलवी बरकतुल्ला आदि के नेतृत्व में हुई तथा बाद में सभा व जलसों का दौर चलता ही रहा। अमेरिकी व अन्य भारतीयों के जी कोलकर चन्दा देने से रुपये की भी कोई कमी नहीं रही तथा इस बीच में इस गदर पार्टी की गूंज व लोकप्रियता कनाडा, जापान, चीन, थायलैण्ड, बर्मा तथा अन्य सारे देश जहाँ पर भी भारतीय थे उन तक पहुँच गयी तथा प्रत्येक उपाय से दल का संदेश प्रत्येक हिन्दुस्तानी तक पहुँचाया गया। गदर पार्टी का आदर्श था आजादी व बराबरी, किसी जाति व सम्प्रदाय के लिये उसमें कोई स्थान नहीं था।

श्यामजी कृष्ण वर्मा की इण्डिया होमरूल सोसाईटी के बारे में हम उनके जीवन परिचय में उल्लेख कर चुके हैं, अतः अब

थोड़ा सा 'भारतीय स्वतन्त्रता समिति' के बारे में परिचय देकर हम अपनी बात को आगे बढ़ायेंगे। भारतीय राष्ट्रीय दल का गठन जर्मन पर राष्ट्र के दफ्तर की देखभाल में तथा जर्मन जनरल स्टाफ के सहयोग व संयुक्त प्रयास से भारतीय क्रान्तिकारियों द्वारा मिलकर बनाया गया था। इसका कार्यक्षेत्र जर्मन जनरल वर्नहार्डी द्वारा लिखित पुस्तक 'जर्मनी और आगामी युद्ध' में उल्लेखित शब्दों के अनुसार, बंगाल के हिन्दू जिनमें स्पष्ट रूप से राष्ट्रीय व क्रान्तिकारी विचार के हैं, हिन्दुस्तान के मुसलमानों से मिल जायें तो उनके सहयोग से दुनिया में ब्रिटेन की जो धाक है उसकी नींव हिल जायेगी। इस जर्मन व भारतीय क्रान्तिकारियों के संयुक्त दल ने प्रथम विश्वयुद्ध (१९१४-१८) तथा उसके आस-पास के वर्षों में किस प्रकार एक दूसरे से तालमेल रखते हुये भारत में क्रान्ति करने का प्रयास किया वह आगे संक्षेप में निवेदन किया जायेगा।

प्रारम्भ में इस दल का कार्य मात्र ब्रिटिश विरोधी साहित्य का प्रकाशन व उन सब राष्ट्रों में प्रचारित करना था जहाँ ब्रिटेन को नुकसान हो सकता था। कुछ समय बाद क्रान्तिकारी श्री बरकतुल्ला के नेतृत्व में एक समिति बनी जिसका कार्य था कि युद्ध में पकड़े गये भारतीयों को राष्ट्र प्रेम व क्रान्ति की भावनाओं से ओत-प्रोत कर उन्हें ब्रिटिश के विरुद्ध युद्ध के लिये प्रोत्साहित करना। इस प्रकार इन युद्धबंदी भारतीयों के समूह से ही आगामी 'आजाद हिन्द फौज' की नींव पड़ी जिसने द्वितीय विश्वयुद्ध में सुभाषचन्द्र बोस के नेतृत्व में ब्रिटिश सेना के विरुद्ध भारत की स्वतन्त्रता के लिये जमकर युद्ध किया।

जर्मन सरकार व इन क्रान्तिकारियों के असाधारण ताल-मेल का ही परिणाम था कि सन् १९११ से बहुत पहले से लाला हरदयाल, जर्मनी से मिलकर व यूरोप के भारतीय क्रान्तिकारियों की मदद से गदर पार्टी के उद्देश्यों को पूरा करने के लिये एक बड़ा षड्यन्त्र करने में लगे थे, जो कैलीफोर्निया, ऑरीगोन तथा वाशिंगटन में फैला हुआ था। इसमें प्रचार किया जाता था कि जर्मनी ही ब्रिटेन का नाश करेगा। यह उल्लेख जस्टिस रोलट ने अपनी रिपोर्ट में किया है। आगे लिखते हैं कि हैम्बरलाल गुप्त अमेरिका में जर्मनी का एजेण्ट था, कुछ समय बाद चक्रवर्ती ने वह स्थान ले लिया। भारत में सशस्त्र क्रान्ति कराने में संलिप्त जर्मन सरकार भी शंघाई के जर्मन काउन्सल जनरल की देख-रेख में क्रियान्वयन करा रही

थी पर इस अभियान का पूर्ण नियन्त्रण वाशिंगटन के जर्मन काउन्सल जनरल के पास था। भारत के क्रान्तिकारियों को अस्त्र-शस्त्र पहुँचाना व इसके लिये स्थान-स्थान से जहाज की व्यवस्था करना आदि सारे उपक्रम जर्मन का काउन्सलेट व भारतीय क्रान्तिकारियों के असाधारण सामञ्जस्य व समझ के बल पर ही क्रियान्वित होते थे।

स्पष्ट है कि तीनों भारतीय क्रान्तिकारी संगठन यथा गदर पार्टी, इण्डियन होमरूल सोसाईटी, बर्लेन समिति में भी असाधारण ताल-मेल था जिनके कारण इतने बड़े सशस्त्र विद्रोह की तैयारियाँ चल रही थी। साथ ही इन्होंने भारत के क्रान्तिकारियों से भी निकटतम सम्पर्क, ताल-मेल व सूचना सम्प्रेषण का एक प्रभावशाली जाल बना रखा था। जिसके कारण ये सभी प्रखर राष्ट्र भक्त प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान ब्रिटिश से लोहा लेकर देश को आजाद कराने के लिये कटिबद्ध थे यहाँ तक कि बर्लेन कमेटी की स्थापना बंगाल में भी हो गयी। उसी की योजनानुसार बंगाल के क्रान्तिकारियों ने 'हैरी एण्ड संन्स' नाम से यूनीवर्सल एम्पोरियम नाम की एक व्यापारिक संस्था खोली, जिसका विदेशों से लाये जाने वाले अस्त्र-शस्त्रों को भारत में उतारने की व्यवस्था व माकूल वितरण आदि का भार था। इन्हीं शस्त्रास्त्रों से सम्बन्धित अभियान में स्वनाम धन्य क्रान्तिकारियों में से कुछ नाम इस प्रकार हैं—रामचन्द्र मजूमदार, अमरेन्द्र चटर्जी, जतीन मुखर्जी, अतुल घोष, नरेन्द्र भट्टाचार्य।

भारत में ब्रिटिश के विरुद्ध सशस्त्र क्रान्ति को प्रारम्भ करने की तिथि २१ फरवरी १९१५ निश्चित की गयी थी। इसी के अनुसार जहाँ भारत में शहर-शहर जाकर क्रान्ति तथा सैनिक छावनियों में भी क्रान्ति का प्रचार किया जा रहा था वही विदेशों में रह रहे क्रान्तिकारियों को भारत ले जाने की व्यवस्था तथा युद्ध के लिये आवश्यक सामग्री देश में लाने का भी उपक्रम चल रहा था।

'कौमा गाटामारू' जहाज प्रकरण—

इस प्रकार राष्ट्र में सशस्त्र क्रान्ति को उद्यत अमेरिका में हिन्दुस्तानियों, विशेष कर, बाबा गुरुदित्ता सिंह का चार्टर्ड किया हुआ जहाज, इन राष्ट्रप्रेमियों की गतिविधियों का केन्द्र रहा, तथा

अमेरिका में क्रान्ति का सन्देश देते हुये वहाँ के क्रान्तिकारियों को लेकर यह जहाज १९११-१२ में ब्रिटिश कोलम्बिया से बैंकओवर पहुँच तो गया, पर कनाडा की सरकार ने इसे घाट पर लगने की अनुमति नहीं दी तथा करीब दो वर्ष तक यह जहाज अपने में दृढ़निश्चयी क्रान्तिकारियों के कार्यकलापों को समेटे कनाडा के आस-पास ही रहा।

कनाडा सरकार के इस व्यवहार से क्षुब्ध होकर कनाडा स्थित भारतवासियों में इतना जबर्दस्त असंतोष जागा कि उसे काबू करना सरकार व इमाईग्रेशन विभाग के लिये बहुत मुश्किल हो गया। इन दिनों कनाडा के भारतीयों व सिक्खों में क्रान्ति की अलख जगाने के लिये, सेना में कुछ वर्ष नौकरी करने के बाद भाई बलवन्त सिंह, भाई भाग सिंह तथा सुन्दर सिंह व वतन सिंह प्रमुख रूप से कार्यरत थे। कनाडा में इन्होंने भारतीयों पर होते अन्यायों के खिलाफ अपनी अवाज उठाई। उन दिनों कनाडा में कोई गुरुद्वारा नहीं था। तथा भारतीयों को मुर्दे जलाने की भी अनुमति नहीं थी। इसके विरुद्ध सशक्त संगठित अवाज खड़ी करके उन्होंने सरकार को झुकाया तथा कामागाटामारू को लेकर एक सशक्त विद्रोह खड़ा कर दिया। इसी बीच प्रथम विश्वयुद्ध छिड़ गया, तो बलवन्त सिंह कनाडा छोड़कर श्याम (वर्तमान थाईलैण्ड) की राजधानी बैंकाक पहुँचकर वहाँ के भारतीयों में व छावनियों में क्रान्ति का प्रचार करने लगे। कुछ समय बाद ही श्याम की सरकार ने उन्हें गिरफ्तार कर लिया तथा ब्रिटिश के हवाले कर दिया। उन्हें मृत्युदण्ड दे दिया गया।

इधर कनाडा के इमाईग्रेशन विभाग ने भारतीयों के असंतोष को काबू न कर पाने के कारण भाई भागसिंह व भाई वतनसिंह की हत्या एक सिक्ख बेला सिंह द्वारा करवा दी। इस प्रकार फौरीतौर पर आन्दोलन कुछ रुक सा तो गया पर इमाईग्रेशन विभाग के मिस्टर हॉपकिन्स इन्होंने भाग सिंह की हत्या करवाई थी को एक अन्य क्रान्तिकारी मेवा सिंह ने गोली से उड़ा दिया तथा फांसी का फन्दा चूम लिया।

इस प्रकार कनाडा में करीब दो वर्ष तक समुद्र में ही रहकर कामागाटामारू ने २३ जुलाई १९१४ को बैंकओवर से रवाना होकर भारत को प्रस्थान किया। इसी बीच यूरोप में लड़ाई छिड़ जाने के कारण गदर पार्टी ने भाई सोहन सिंह को तथा बाद में

करतार सिंह को भी इन यात्रियों को यह सूचित करने भेजा कि पार्टी के तमाम त्यागी सदस्य हिन्दुस्तान जाकर क्रान्तिकारी तरीकों से मातृभूमि को आजाद कराने की कोशिस करें इसी सम्बन्ध में एक अन्य जहाज 'कोरिया' सैनफ्रान्सिस्को से चला तथा जिसमें साठ सर्वस्व न्यौछावर करने वाले क्रान्तिकारी थे।

याकोहामा में इन सबकी भेंट हुई तथा यहीं पर कोरिया जहाज में भाई परमानन्द भी शामिल हो गये जिन्हें कालान्तर में काले पानी की सजा हुई व साढ़े तेईस साल जेल में रहकर वे छूटे। याकोहामा से ही निधान सिंह चुग्गा, प्यारा सिंह को चीन भेज दिया गया कि वहाँ क्रान्ति का सन्देश देकर, साथियों सहित शीघ्र भारत पहुँचे। वे वहाँ से सैकड़ों हिन्दुस्तानियों को लेकर पहले ही भारत पहुँच गये।

करतार सिंह वहाँ से सीधे भारत पहुँचे तथा रासबिहारी बोस के आदेशानुसार पंजाब में जाकर वहाँ के संगठन को मजबूत बनाते रहे तथा छावनी व अन्य स्थानों पर क्रान्ति की जोत जगाते रहे। बाद में वे पिंगले के साथ मेरठ, आगरा, कानपुर, इलाहाबाद, बनारस आदि छावनियों में क्रान्ति सन्देश देने में जुटे रहे। २१ फरवरी १९१५ क्रान्ति का दिन था पर एक मुखबिर कृपाल सिंह ने सारा भेद खोल दिया तथा गिरफ्तारियाँ शुरू हो गयी। सारी योजना पर पानी फिर गया। फिर भी करतार सिंह प्रचार कार्य में जुटे रहने के कारण अन्ततः पकड़ लिये गये व उन्हें फाँसी दे दी गयी। इनका संक्षिप्त जीवन परिचय पहले ही दिया जा चुका है।

कामागाटामारू जहाज की भारत यात्रा याकोहामा से आगे शुरू हुई। परन्तु ब्रिटिश गुप्तचरों को इसकी सूचना पहले ही मिल चुकी थी। अतः जब यह जहाज २९ सितम्बर को ११ बजे 'बजबज' नामक स्थान पर पहुँचा तो वहाँ पर उनके यात्रियों को आगे जाने की व्यवस्था सुरक्षा सैनिकों की देख-रेख में स्पेशल ट्रेन द्वारा की गयी, जिसे यात्रियों ने स्वीकार नहीं किया, क्योंकि वे स्वयं को आजाद देश का नागरिक समझते थे। बात बढ़ गयी तथा गोलियाँ चल गयी जिनमें १८ क्रान्तिकारी मारे गये, कुछ भाग गये बाकी पकड़ लिये गये। इसी बच कोरिया जहाज से हॉगकांग में दो और जहाज जो कनाडा से चले थे आकर मिले तथा उनमें से एक तोषामारू, १२० क्रान्तिकारियों को लेकर भारत की ओर चला तथा २९ अक्टूबर को कलकत्ता पहुँचने पर इसे भी हिरासत में ले

लिया गया, तथा इसके सारे क्रान्तिकारियों को मिण्टगुमरी व मुल्तान की जेलों में डाल दिया गया तथा बाकी को अपने-अपने गाँव में नजरबंद कर दिया गया। इसके बाद एक के बाद एक नौ मुकद्दमे चले जिनमें पहला लाहौर षड्यन्त्र के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इन मुकद्दमों में २८ क्रान्तिकारियों को फांसी हुई तथा बहुतों को काला पानी व अलग-अलग वर्षों की जेल हुई। १९१४ में यह सब घटित होने पर भी भारतीय क्रान्तिकारियों व जर्मनी के हौसले पस्त नहीं हुये थे। वरन अस्त्र-शस्त्रों को भारत में किसी प्रकार पहुँचाने व एक बार सारे भारत में ब्रिटिश के विरुद्ध युद्ध करने की रणनीति पर वे अभी भी कार्य कर रहे थे।

भारत में शस्त्र पहुँचाने की योजनायें तथा अंग्रेजों पर आक्रमण करने की योजनाओं का संक्षिप्त विवरण—देश में क्रान्ति करने का आधार यह था कि जर्मनी की सहायता से भारत में अस्त्र-शस्त्रों को उतारकर उन्हें जुलाई १९१५ तक सारे भारत में वितरित कर दिया जायेगा। उनके आक्रमण की योजना के कुछ अंश इस प्रकार हैं—

(क) १९१५ में बंगाल के क्रान्तिकारियों ने तय किया कि जर्मनों की व अन्य प्रान्तों से तथा श्याम (वर्तमान थाईलैण्ड) के क्रान्तिकारियों की सहायता से एक भारतव्यापी आन्दोलन खड़ा किया जाये। युक्ति यह थी कि प्रथम विश्वयुद्ध के प्रारम्भ होने पर ब्रिटिश फौजें भारत से बाहर जर्मनी, जापान, टर्की, ईरान आदि देशों में लड़ने के लिये भेज दी गयी थी, तथा देश में उस समय बूढ़े, कमजोर सैनिक ही बचे थे जिन पर आसानी से काबू पाया जा सकता था। रुपये इकट्ठा करने के लिये १२ जनवरी व २२ फरवरी को गार्डन रीच व बेलियाघाट में डकैतियाँ डाली गयी तथा इससे उन्हें ४० हजार रुपये प्राप्त हुये। पुलिस के छापे पड़ने से ये क्रान्तिकारी कुछ समय के लिये भूमिगत हो गये।

(ख) अकेले बंगाल में ही क्रान्ति करने के लिये वे अपने आपको सक्षम समझते थे तथा बंगाल की ओर तीनों दिशाओं से आने वाली रेलों के मार्ग की नाकेबन्दी कर उन्हें आगे न बढ़ने देने के लिये रेलों के पुलों को उड़ाया जाने वाला था। जिसके लिये उन्होंने पूरी तरह से तीन टीमें तैयार कर ली थीं। इन तीनों के मुखिया क्रमशः यतीन्द्र, भोलानाथ चटर्जी तथा सतीश चक्रवर्ती थे।

(ग) एक अन्य योजना के अनुसार एक लड़ाई का जहाज अण्डमान जाने वाला था वहाँ पोर्टब्लेयर पर हमला करके सारे कैदियों को छुड़ाता हुआ तथा सिंगापुर रेजीमेण्ट के विद्रोहियों को भी छुड़ाकर रंगून पहुँचकर बर्मा पर धावा बोलना था। परन्तु यह सब होना तभी था जब अस्त्र-शस्त्रों से लदे जहाज सारा असलाह भारत में उतार पाते। जो जहाज भारत में युद्ध सामग्री सुरक्षित स्थानों पर उतारने के प्रयासों में लगे थे उनमें से माबेरिक, एस०एस० हेनरी तथा एनी लार्सेन नामक जहाज बटैविया के जर्मन काउन्सल थियोडोर हैलफैरिक व भारत में नरेन्द्र भट्टाचार्य जिन्होंने इस अभियान के लिये अपना नाम सी० मार्टिन रखा था की देख-रेख में हो रहे थे तथा इसके अतिरिक्त दो अन्य जहाज व एक युद्धपोत जो आक्रमण के लिये अण्डमान जाने वाला था वे सब शंघाई के काउन्सिल जनरल की देख-रेख में हो रहे थे।

मावेरिक पोत २२ अप्रैल १९१५ को कैलीफोर्निया के सैनपेट्रो नामक स्थान से बिल्कुल खाली निकल पड़ा था तथा इसमें बाद में लदने वाले हथियारों को उसे बंगाल के रायमंगल नामक सुरक्षित स्थान पर पहुँचाना था। हैलफैरिक व सी मार्टिन इस योजना को अंजाम दे रहे थे तथा भारत में रायमंगल में बाकी व्यवस्था भारत के क्रान्तिकारी यथा जतीन मुखर्जी, अतुल घोष, भोलानाथ चटर्जी, जदुगोपाल मुखर्जी आदि के नेतृत्व में होने लगे तथा इन द्वारा निर्मित हैरी एण्ड सन्स बोगस फर्म भी इस कार्य में पूरी तरह से लगी थी। इस फर्म की शाखायें अन्यत्र भी थी तथा बालासोर का यूनीवर्सियल एम्पोरियम इन्हीं में से एक था। ब्रिटिश गुप्तचरों को भी इसकी सूचना धीरे-धीरे मिलने लगी थी।

एस०एस० मावेरिक एक तेल ढ़ोने वाला जहाज था, जिसे सैनफ्रान्सिरको की एक जर्मन कम्पनी एफ० जैक्शन ने खरीदा था। इसकी यात्रा २२ अप्रैल १९१५ को प्रारम्भ हुई तथा इसमें १५ क्रान्तिकारी भी छद्म नामों से इसके 'क्रू मैम्बर' के रूप में कार्यरत थे। यह जावा के अंजेर होता हुआ मैक्सिको से ६० मील पश्चिम में 'सोकोररो' द्वीप पहुँचा। जहाँ इस पर हथियारों का जखीरा एक अन्य स्कूनर जहाज एनीलार्सेन द्वारा भरा जाना था। इस जहाज में तीस हजार रायफलें, हर एक रायफल के साथ ४०० कारतूस और दो लाख रुपये थे। किसी कारण यह जहाज सोकोरोरो द्वीप समय पर नहीं पहुँच पाया तथा कुछ दिन इन्तजार करने के बाद मावेरिक

पोत, वहाँ से खाली ही चला गया तथा जावा पहुँच गया। जहाँ पर डच सरकार ने इसकी तलाशी लेने पर खाली पाया। उधर एनी लार्सेन घूमता-घामता १५ जून को वाशिंगटन के होकियाम नामक स्थान पर पहुँचा जहाँ इसमें भरी सारी युद्ध सामग्री को जर्मनी के यह कहने पर भी कि सारे हथियार उसके हैं, जब्त कर लिया गया इस प्रकार मावेरिक का अभियान असफल हो गया।

दूसरा जहाज एस० हैनरी मनीला से शंघाई के लिये हथियार लेकर चला पर मनीला में ही इसका भाण्डाफोड़ हो गया तथा इसके हथियार वहीं उतार लिये गये।

शंघाई के काउन्सल जनरल ने दो और जहाजों को एक को रायमंगल व दूसरे को बालासौर भेजने का प्रबन्ध किया। एक में तीस हजार रायफलें, ८० लाख कारतूस, तीन हजार पिस्तौलें, हथगोले, कुछ विस्फोटक व दो लाख रुपये तथा दूसरे जहाज में दस हजार रायफलें, दस लाख कारतूस व बम आदि थे। परन्तु यह योजना भी सफल नहीं हो पाई तथा इसमें लिप्त सी मार्टेन व अन्य गिरफ्तार हो गये। तीसरा जो युद्धपोत था उसके बारे में पहले ही वर्णन कर चुके हैं वह अभी आगे बढ़ पाया।

इसी बीच पुलिस ने हैरी एण्ड सन्स के सारे दफ्तर का पता लगा लिया तथा ४ सितम्बर १९११ को बालाशौर के यूनिवर्सल एम्पोरियम होते हुये क्रान्तिकारियों तक पहुँच गई। जहाँ गोली चलने से जतीन मुखर्जी, चित्तप्रिय राय चौधरी मारे गये तथा कालान्तर में १६ जनवरी को भोलानाथ चटर्जी ने आत्महत्या कर ली। इस अभियान की असफलता के बाद जर्मनी ने भारत में हथियार भेजने की योजना छोड़ दी।

इस प्रकार भारत में पूर्व की ओर से क्रान्तिकारियों द्वारा नियोजित सशस्त्र अभियान की योजना आशानुरूप सफलता नहीं प्राप्त कर सकी। अब हम भारत के पश्चिमी क्षेत्र, यथा ईरान, टर्की, अफगानिस्तान, बलूचिस्तान, आदि क्षेत्रों में गदर पार्टी के क्रान्तिकारियों द्वारा किये जा रहे प्रयासों का संक्षेप में वर्णन कर इस प्रकरण का पटाक्षेप करते हैं।

सन् १९१४ में अमेरिका गदर पार्टी के प्रहारक दल के मुखिया पाण्डुरंग खानखोजे को पार्टी की ओर से आदेश हुआ कि वे भारत के पश्चिम में स्थित देशों में जाकर वहाँ से टर्की, ईरान होते हुये भारत की पश्चिमी सीमा पर आक्रमण करें। इस सम्बन्ध में बता

दिया जाये कि गदर पार्टी के ही काफी सदस्य छद्म इस्लामिक नाम से ईरान, टर्की आदि में राष्ट्र की स्वतन्त्रता के सम्बन्ध में कार्यरत थे, तथा ईरान में भी एक समिति सय्यैद टकेजाद के नेतृत्व में ब्रिटिश के विरुद्ध कार्यरत थी। प्रथम विश्वयुद्ध में टर्की, ईरान, अफगानिस्तान आदि देश ब्रिटिश के विरुद्ध लड़ रहे थे। जो भारतीय मुसलमान नाम थे वहाँ कार्यरत थे उनमें से कुछ के नाम इस प्रकार हैं—

(क) श्री आगासे उर्फ मोहम्मद अली, महाराष्ट्रीय गुप्त समिति के सदस्य थे तथा युद्ध विद्या सीखने ईरान भेजे गये थे। १९१६ में भी वे सैनिक अफसर के रूप में नौकरी कर रहे थे।

(ख) श्री सैय्यद एक पंजाबी नवयुवक थे जिन्हें टर्की के अनवर पाशा ने जहा-ने-इस्लाम पत्रिका प्रकाशित करने का भार सौंपा था।

(ग) प्रमथनाथ दत्त-दाउद अली नाम से।

(घ) अम्बा प्रसाद-सूफी साहब के नाम से एक ईरानी विद्यालय के प्रधान थे।

(च) राजा महेन्द्र प्रताप अफगानिस्तान में कार्यरत थे।

श्री खानखोजे इस प्रकार पार्टी से आदेश पाकर श्री अगासे के साथ जो उन दिनों अमेरिका में ही थे पूर्व की ओर चले तथा एक ग्रीस जहाज से पिरेउस नामक बन्दरगाह पर उतरकर टर्की के कुस्तुन्तुनियाँ पहुँचकर सैय्यद व प्रमथ दत्त के साथ अनवर पाशा व तलात पाशा से मिलकर उन्हें अपना परिचय व उद्देश्य समझाया व कहा कि हम यहाँ पर क्रान्तिकारियों की एक सेना बनाकर ईरान के रास्ते भारत पर आक्रमण करना चाहते हैं। इस कार्य के लिये आज्ञा उन्हें तुरन्त मिल गयी तथा क्रान्तिकारियों की एक सैनिक टुकड़ी भी शीघ्र ही बन गई। इन्हीं दिनों वहीं पर जर्मनी ने एक अभियानकारी टुकड़ी तैयार की जिसका उद्देश्य भारतीय क्रान्ति सैनिकों को भारत में उतारने में पूरी मदद व यथाशक्ति सहायता देना था। इन क्रान्तिकारी टुकड़ियों का नेतृत्व खानखोजे, प्रमथ व आगासे कर रहे थे। ये एलैक्जण्ड्रिया से होते हुये ब्रिटिश सेना की बमबारी से बचते हुये बगदाद पहुँचे तथा ईरान की ओर जाने वाली एक बड़ी टुकड़ी तैयार करके ईरान के बुहारा पहुँचे। अंग्रेजों से सामना हुआ तो सीराज चले गये तथा सूफी अम्बा प्रसाद की सहायता से किसी प्रकार ईरान से भारत में जाने का असफल

प्रयास करते रहे। अतः ईरान के बजाय अफगानिस्तान व बलोचिस्तान की सीमा से भारत में जाने का प्रयास हुआ। प्रमथ अब तक घायल हो चुके थे। अतः प्रमथ व अगासे को किरमान छोड़कर खानखोजे वाम नामक स्थान पर पहुँचे तथा वहाँ बलोचियों की एक हजार सैनिकों की टुकड़ी तैयार की पर इसी बीच ईरान बलोचिस्तान के अमीर ने अंग्रेजों से मिलकर इस टुकड़ी पर हमला करवा दिया। सारे बलूची टुकड़ी तो तितर-वितर हो गयी तथा खानखोजे पुनः वाम वापस आकर ईरानी सेना के साथ अपने बचे-खुचे क्रान्तिकारी सैनिकों के साथ ब्रिटिश फोजों से सन् १९१९ तक तब तक लड़ते रहे जब तक ईरान ने आत्मसमर्पण नहीं कर दिया। इसी प्रकार एक अन्य क्रान्तिकारी महेन्द्र प्रताप ने भारतीय जर्मन मिशन का नेतृत्व करते हुये ईरान के रास्ते भारत में प्रवेश करने की कोशिस की पर उनका यह ग्रुप भी बिखर गया। यह सन् १९१५ की बात है। ईरान के आत्मसमर्पण के बाद खानखोजे मैक्सीको भाग गये तथा वहाँ कृषि विज्ञान के अध्यापक का कार्य करते रहे। सन् १९४९ में स्वतन्त्रता मिलने पर वे भारत आ गये।

स्पष्ट है कि विदेशों में बसे अपनी रगों व नसों में इस्पात की कठोरता से भरे ये प्रखर राष्ट्र भक्त क्रान्तिकारी अपने सारे प्रयासों के बाद भी भारत में प्रथम विश्वयुद्ध में राष्ट्र को स्वतन्त्र कराने में असमर्थ रहे। पर उनके इस अदम्य साहस व दृढ़ इरादों से उत्पन्न स्फुल्लिंगों ने कितने की भारतवासियों में राष्ट्र प्रेम की ज्वाला को भड़काया इसका सहज ही अन्दाजा लगाया जा सकता है।

महायुद्ध के जमाने में क्रान्तिकारियों ने जो तैयारी की थी वह कुछ मनचलों के मन की लहर नहीं थी, न ही वह सिर पर कफन बांधे कुछ अलमस्तों की अग्नि क्रीड़ा ही थी। बल्कि हरएक अर्थ में यह एक समग्र क्रान्ति की तैयारी थी। यह बात सच है कि जो तैयारियाँ थी उनके सफलीभूत होने पर यहाँ सामाजिक क्रान्ति से पहले एक राष्ट्रीय क्रान्ति अवश्य होकर रहती। डॉ० भाग सिंह जो स्वयं गदर पार्टी के सदस्य थे लिखते हैं कि—१९१४-१५ का क्रान्ति आयोजन इतना जबर्दस्त व विस्तृत था और यूरोप में छिड़े महायुद्ध की वजह से सरकार बड़ी नाजुक हालत से गुजर रही थी, तथा उसे इस आयोजन से बड़ा खतरा पैदा हो गया था।

इन्हीं विचारों की आवृत्ति पंजाब के तत्कालीन गवर्नर सर माईकल ओडियार की इस रिपोर्ट से आती है जिसमें लिखा है

कि—महायुद्ध के दौरान ब्रिटिश सरकार बहुत कमजोर हो चुकी थी। हिन्दुस्तान भर में केवल १३ हजार गोरी फौज थी। जिसकी नुमाईश सारे हिन्दुस्तान में करके सरकार के रौब को कायम रखने की चेष्टा की जा रही थी। ये सैनिक भी बूढ़े थे क्योंकि नौजवान तो यूरोप में युद्ध क्षेत्र में लड़ रहे थे। यदि ऐसी अवस्था में सैनफ्रान्सिसको से चलने वाले गदर पार्टी के सिपाहियों की अवाज मुल्क तक पहुँच जाती तो निश्चय है कि हिन्दुस्तान अंग्रेजों के हाथ से निकल जाता। यह राय उक्त गर्वनर ने अपनी इण्डिया एज आई न्यू इट (India as I knew it) नामक पुस्तक में लिखी थी। यही राय वायसराय हार्डिंग और दूसरे अंग्रेजों की भी है।

इन क्रान्तिकारियों को हम अपने श्रद्धा सुमन अर्पित कर इस प्रकरण को समाप्त करते हैं।

उत्तर प्रदेश में क्रान्तिकारी आन्दोलन

अब तक बंगाल में चल रहे क्रान्तिकारी आन्दोलन का असर उत्तर प्रदेश पर भी पड़ने लगा था। पिछले अध्याय में हम काशी के शचीन्द्रनाथ सान्याल का बंगाल से सम्बन्ध व उनके द्वारा प्रारम्भ किये गये कुछ क्रियाकलापों का वर्णन कर आये हैं। जस्टिस रोलट साहब ने इस सम्बन्ध में अपनी रिपोर्ट में पूरा एक अध्याय लिखा है, उसी से सन्दर्भ लेकर उन दिनों उत्तर प्रदेश में हुये दो प्रसिद्ध षड्यन्त्र यथा 'बनारस षड्यन्त्र व मैनपुरी षड्यन्त्र' के बारे में संक्षेप से लिखा जाता है।

जस्टिस रोलट उस उत्तर प्रदेश जो उस समय संयुक्त प्रान्त कहलाता था, के बारे में हमें इस प्रकार सूचना देते हैं कि—संयुक्त प्रान्त (आगरा व अवध) और बंगाल के बीच में बिहार व उड़ीसा प्रान्त है। यह प्रान्त भौगोलिक दृष्टि से भारत का हृदय है। इस प्रान्त में बनारस व इलाहाबाद हैं जो हिन्दुओं की दृष्टि में पवित्र है, आगरा है जो कभी मुगलों की राजधानी था, और लखनऊ है जो एक मुस्लिम राज्य की राजधानी था। १८५७ के युद्धों का यही प्रान्त मुख्य केन्द्र था।

इस प्रदेश के जनमानस की क्रान्ति भावनाओं को अभिव्यक्ति देने व उन्हें अंग्रेजों के विरुद्ध उकसाने के लिये १९०७ में इलाहाबाद से श्री शान्तिनारायण के संचालन में 'स्वराज्य' नामक एक पत्र निकला। जिसमें सबसे पहले क्रान्तिकारी प्रयासों व प्रचारों का

सूत्रपात होता है। १९०७ से १९१० तक जब इसे 'प्रेस एक्ट' के तहत बन्द कर दिया गया, इसके एक के बाद एक सात सम्पादक हुये जिनमें ६ पंजाबी थे। तथा इनमें से तीन को आपत्तिजनक लेख लिखने के लिये लम्बी सजायें हुई जिसमें श्री शान्तिनारायण भी शामिल थे। आपत्तिजनक लेखों से सरकार का तात्पर्य, राष्ट्र की स्वतन्त्रता या क्रान्तिकारियों के बारे में कुछ भी लिखना था। एक अन्य अखबार इलाहाबाद से ही कर्मयोगी सन् १९०९ में निकला। परन्तु इसका नतीजा प्रान्त में नहीं हुआ। १९०८ में ही होतीलाल वर्मा नामक एक व्यक्ति को राजद्रोही प्रचार में गिरफ्तार कर लिया गया तथा इस कारण उन्हें काले पानी की दस साल की सजा हुई।

बनारस षड्यन्त्र—

इस भूखण्ड में क्रान्ति का सही सूत्रपात व उसे चरम तक पहुंचाने का श्रेय शचीन्द्रनाथ सान्याल को जाता है। उन्होंने एक ओर अपनी समिति द्वारा राजद्रोह का प्रचार पूरे जोर-शोर से प्रारम्भ किया तथा साथ ही चन्दन नगर की अनुशीलन समिति के मुखिया रासबिहारी के सान्निध्य व सहायता से इस क्षेत्र में बम बनाने, हथियारों व बारूद को बंगाल से यहाँ लाने में संलग्न रहे।

जनता में राजद्रोह फैलाने के लिये, भगवद्गीता का सहारा लेकर उसकी व्याख्या इस प्रकार की जाती थी कि इससे राजनैतिक हत्या का भी समर्थन हो। उनकी पार्टी बंगाल से पूर्ण सहयोग लेकर संयुक्त प्रान्त में प्रखर व प्रभावशाली क्रान्ति करना चाहते थे। १९१३ में उन्होंने बनारस के स्कूल व कॉलेजों में राजद्रोहात्मक पर्चे बाँटे और डाक द्वारा अन्य स्थानों पर भी भेजे। उनकी पार्टी के सदस्य गाँव-गाँव जाकर क्रान्ति व राजद्रोह का सन्देश देकर ग्रामीणों में भी क्रान्ति की भावना जागृत करते रहते थे।

इसी बीच १९१२ में वायसराय हार्डिंग पर बम से आक्रमण हो चुका था तथा जबर्दस्त पकड़ा धकड़ी चल रही थी। इसमें रासबिहारी का भी नाम था। अतः वे छुपते हुये बनारस आकर वहाँ के 'बंगाली टोला' में रहते हुये शचीन्द्र के साथ सारे ही संयुक्त प्रान्त व पंजाब में स्थित सैनिक छावनियों में भारतीय सैनिकों को प्रेरक प्रसंग देते हुये, क्रान्ति व अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह करने को उकसाते रहते थे। यह सारा कार्यक्रम क्रान्तिकारियों द्वारा संयुक्त प्रान्त व पंजाब में बड़े जोर-शोर से चलाया जा रहा था।

इन क्रान्तिकारियों यथा बंगाल, संयुक्त प्रान्त व पंजाब के गहरे सम्पर्क व तार अमेरिका, इंग्लैण्ड व कनाडा में रहने वाले अप्रवासी भारतीयों से भी जुड़े हुये थे। जिन्होंने अपने-अपने देश में गदर पार्टी, बर्लिन समिति, इण्डिया इण्डेपेण्डेन्स आदि द्वारा सशस्त्र क्रान्ति भारत में कराने का बीड़ा उठा रखा था, सही व प्रभावशाली ताल-मेल बिठाते हुये, भारत में हथियार कर्मठ व अपने जीवन की आहूति देने वाले क्रान्तिकारियों की व्यवस्था कर रहे थे। इसका विस्तार से वर्णन पहले ही किया जा चुका है।

इसी सन्दर्भ में नवम्बर १९१४ में अमेरिका से गदर पार्टी का सक्रिय सदस्य विष्णु गणेश पिंगले, रासबिहारी से मिला तथा उन्हें बताया कि सशस्त्र क्रान्ति के लिये करीब-करीब ४ हजार विद्रोही अमेरिका से आ चुके हैं तथा अगले दो हजार विद्रोह शुरू होने पर आने वाले थे। योजना थी कि प्रथम विश्वयुद्ध में व्यस्त ब्रिटिश सेना के भारत में बचे-खुचे सैनिकों को एक समग्र सशस्त्र विद्रोह के जरिये समाप्त कर स्वतन्त्रता हासिल की जाये। रासबिहारी ने एक बार पुन: सब योजना को चाक चौबन्द करने के लिये शचीन्द्र को पंजाब भेजा जहाँ वे अपना काम बखूबी निभाकर १९१५ की फरवरी में वापस बनारस आ गये। जैसा कि अपने देश का दुर्भाग्य रहा है कि इस ओजस्वी क्रान्ति प्रयासों में लिप्त राष्ट्र प्रेमियों में कुछ ऐसे भी थे जो पूर्ण तपे हुये न होने के कारण विपत्ति की स्थिति में अपनी हिम्मत खो बैठते थे तथा मुखबिर बन जाते थे। इनमें मनीलाल, कृपाल सिंह, विभूति आदि प्रमुख थे। इनके ही कारण कालान्तर में सारे विद्रोह का भाँडा फूट गया। अस्तु।

शचीन्द्र को बनारस पहुँचने पर रासबिहारी ने दल की एक महत्त्वपूर्ण सभा की तथा बताया कि शीघ्र ही एक विराट सशस्त्र विद्रोह होने वाला है जिसके लिये सभी अपनी जान देने के लिये तैयार रहे हैं। इलाहाबाद में दामादोर सेठ नामक शिक्षक क्रान्ति का नेतृत्व करने वाला था। रासबिहारी स्वयं शचीन्द्र तथा पिंगले के साथ लाहौर जा रहे थे तथा दो आदमी बंगाल से हथियार व बम लाने के लिये नियुक्त किये गये और विनायक कापले तथा मनीलाल को पंजाब में बम लाने के लिये नियुक्त किया गया। लाहौर पहुँचने पर मनीलाल व रासबिहारी ने कहा कि २१ फरवरी को क्रान्ति की जायेगी। इस तिथि की खबर कृपाल सिंह नामक युवक ने पुलिस को दे दी। तब पुनः तारीख बदल दी गयी जिसकी सूचना भी

पुलिस तक पहुँच गयी। भाण्डा फूट गया तथा जोर-शोर से गिरफ्तारियाँ शुरू हो गयी। रासबिहारी व पिंगले वापस बनारस आ गये, पर २३ मार्च को पिंगले दस बम समेत १२ नम्बर इण्डियन कैवेलरी की छावनी में पकड़े गये।

रासबिहारी कलकत्ता में अपने चेलों से आखिरी बार मिले तथा हिन्दुस्तान से बाहर क्रान्ति फैलाने और अस्त्र-शस्त्रों की व्यवस्था करने जापान चले गये जहाँ प्रथम विश्वयुद्ध में जर्मन द्वारा बन्दी बनाये गये भारतीय सैनिकों के साथ मिलकर कालान्तर में उन्होंने 'आजाद हिन्द फौज' का गठन किया। बाद को शचीन्द्रनाथ, गिरिजाबाबू व अन्य क्रान्तिकारी पकड़े गये तथा उनको सजा हो गयी। इस मुकद्दमे की दी गयी गवाहियों से साबित है कि कई बार फौजों को भड़काने की चेष्टा भी की गयी, राजद्रोही पर्चे बाँटे गये तथा वे सब बातें भी हुई जिनका हम पहले वर्णन कर चुके हैं। इससे प्रमाणित होता है कि यद्यपि बंगाल में क्रान्तिकारी दल अधिक प्रभावशाली था। यहाँ तक कि वे बन्दूक चलाना व कवायद आदि भी करते थे पर सैनिक विद्रोह की सम्भावना के कारण पंजाब व संयुक्त प्रदेश ब्रिटिश के लिये अधिक खतरनाक हो गये थे। १९१८ की ९ फरवरी को विनायक राव कापले की हत्या कर दी गयी। इस प्रकार बनारस षड्यन्त्र भी सफल तो नहीं हो सका पर हाँ आने वाले क्रान्तिकारियों के लिये प्रेरणा का स्त्रोत हमेशा बना रहा।

मैनपुरी षड्यन्त्र—

मैनपुरी षड्यन्त्र के नायक, आगरा के बटेश्वर में जन्मे श्री गैंदालाल दीक्षित थे जो औरैया के डी०ए०वी० स्कूल में अध्यापक थे। राष्ट्रप्रेम व क्रान्ति की भावनाओं से सराबोर वे भी सोचते थे कि राष्ट्र को आजाद कराया जाये। अतः उन्होंने शिवाजी समिति बनायी। तथा पढ़े-लिखे लोगों को इस योजना में शामिल करने का प्रयास किया। पर गुलामी की रोटियों के लिए इस वर्ग ने उनका साथ नहीं दिया तो उन्होंने डाकुओं से सहयोग लेने की ठानी। इसी दरमियान रामप्रसाद बिस्मिल भी उनसे जुड़ गये। उन्हें एक डकैत ब्रह्मचारी अपने गिरोह के साथ मिल गया तथा उसके साथ कुछ डाके भी डाले पर अन्ततः एक स्थान पर डाका डालते समय पुलिस से मुठभेड़ में ब्रह्मचारी का सारा गिरोह समाप्त हो गया, तथा

गैंदालाल ब्रह्मचारी आदि को ग्वालियर के किले में बन्द कर दिया गया। गैंदालाल से ही प्रेरणा लेते हुये कुछ युवकों ने 'मातृवेदी' नामक संस्था बना ली थी तथा उन्होंने गैंदालाल को जेल से भगाने की सोची। षड्यन्त्र फूट गया तथा बाद में एक मुखबिर ने गैंदालाल के नेतृत्व की बात कही तो उन्हें ग्वालियर से मैनपुरी जेल भेज दिया गया। वहाँ गैंदालाल स्वयं मुखबिर का नाटक करते हुये किसी प्रकार जेल से एक अन्य मुखबिर रामनारायण के साथ भाग तो गये, पर उसके बाद का उनका सारा बचा-खुचा जीवन भागते हुये व कष्ट सहते हुये ही बीता। उन्हें तपेदिक हो गया था तथा इसी बीमारी से ग्रसित व अपने परिवारीजनों द्वारा अस्वीकार किये जाने पर वे एक सरकारी अस्पताल में देहली में २१ दिसम्बर सन् १९२० में ३२ वर्ष की आयु में मर गये। रामप्रसाद बिस्मिल फरार हो गये। इसमें सन्देह नहीं कि मैनपुरी षड्यन्त्र भारत के क्रान्तिकारी आन्दोलन की एक विशेष कड़ी है।

सुदूर पूर्व व मध्य पूर्व देशों में स्वतन्त्रता संग्राम के प्रति जागृति

जैसे-जैसे ब्रिटिश साम्राज्यवाद का खूनी पंजा भारत से आगे सुदूर पूर्व व मध्य पूर्व के देशों यथा बर्मा, सिंगापुर, थाइलैण्ड आदि देशों में बढ़ता गया वैसे-वैसे भारतीयों ने ब्रिटिश हुकूमत का साथ देते हुये इन देशों में बसकर अंग्रेजों के हित साधन करना शुरू कर दिया। सन् १९०० आते-आते इन भारतीयों की संख्या अच्छीखासी हो गयी थी। धीरे-धीरे इनमें भारत की स्वतन्त्रता के भाव के अंकुर फूटने लगे। जिन्हें पोषित व पल्लवित गदर पार्टी के सदस्यों व समय-समय पर जाने वाले अन्य स्वतन्त्रताभिमानियों द्वारा किया गया तथा उन्होंने गदर पार्टी के साथ पूर्ण सहयोग करना प्रारम्भ कर दिया। इस सम्बन्ध में अमर सेनानी सोहनलाल पाठक के त्याग व बलिदान का संक्षिप्त परिचय हम पहले ही दे चुके हैं।

भारतीय क्रान्तिकारी ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध जो सैनिक सहायता प्राप्त करते थे वह सुदूर पूर्व के जर्मन कौन्सिल जनरल के माध्यम से करते थे। बर्मा के भारतीयों ने इस क्रान्ति कार्य में अपूर्व योगदान निम्न प्रकार से किया—

(क) जिनका सम्बन्ध जर्मनी आदि से था किन्तु जिसका

रास्ता सामूहिक था यथा अस्त्र-शस्त्र आदि के आदान-प्रदान वितरण व अपने गन्तव्य तक भेजने का प्रबन्ध करना।

(ख) दूसरा श्याम (वर्तमान थायलैण्ड) आदि देश था जिनका सम्बन्ध गदर पार्टी के दल से था तथा

(ग) हिन्दुस्तानी फौजों का भड़काना। सिडीशन कमेटी के रिपोर्ट के अनुसार फौजों को भड़काने की बड़ी संगठित चेष्टा की गयी।

सिर्फ इतना ही नहीं वरन् जब इटली, तुर्की व बाद में ब्रिटिश तुर्की युद्ध के दौरान भारत से गये मुसलमान क्रान्तिकारी जो उन दिनों अपने संगठन का नाम संकुचित विचारधारा व धर्म के नाम पर रखते थे यथा 'सर्व इस्लामबाद' जिसका अर्थ था कि ''मुस्लिम हैं हम, वतन है सारा जहाँ हमारा'' अर्थात् जो युद्ध इस्लाम के नाम पर कर रहे थे, न कि राष्ट्र रक्षा के नाम पर, उन क्रान्तिकारियों द्वारा बर्मा में बनाई गयी पार्टी 'तरुण तुर्क दल' के लोग जब 'गदर पार्टी' के संसर्ग में आकर कार्य करने लगे तो उनकी यह संकुचित विचारधारा परिष्कृत होकर मुख्य राष्ट्रीय धारा में आ गयी, वह तुर्क दल एक प्रकार से गदर पार्टी का ही एक अंग हो गया, तथा इसके सदस्य श्री अली अहमद, फहम अली, आबेदुल्ला, आदि इनसे कन्धे से कन्धा मिलाकर कार्य करने लगे। यहां तक कि तुर्की से प्रकाशित होने वाला इनका अखवार 'जहान्-ए-इस्लाम' का सम्पादकीय लाला हरदयाल जैसे क्रान्तिकारी द्वारा लिखा जाने लगा। इस प्रकार क्रान्तिकारियों को जहाँ अपने मुसलमान भाईयों को राष्ट्रीय धारा से जोड़कर उन्हें राष्ट्र को स्वतन्त्र कराने में शामिल करने का श्रेय प्राप्त है। वहीं कालान्तर में अन्य स्वार्थी तत्त्वों द्वारा इन्हीं मुसलमानों की विचारधारा को दूषित कर राष्ट्र का विभाजन करा दिया गया।

२० नवम्बर १९१४ को तुर्की के सदर अनवर पाशा ने एक वक्तव्य दिया, ''अब हिन्दुस्तान के इन्कलाब का ऐलान होना चाहिए, अंग्रेजों की मैग्जीनें लूट ली जायें, उनके हथियार छीन लिये जायें व उन्हें मार डाला जाये। जो अपने देश की आजादी के लिये लड़ेगा या मरेगा वह अमर हो जायेगा। हिन्दू-मुस्लिम भाई-भाई हैं और ये पतित अंग्रेज उनके दुश्मन हैं।.........''

नवम्बर १९१४ में बर्मा में भेजी गयी बलूची फौजों को गदर का साहित्य बाँटा गया तथा १९१५ तक ये लोग गदर करने के

लिये तैयार भी हो गये पर बात खुल जाने से इनके आन्दोलन को दबा दिया गया तथा २०० से अधिक सैनिकों को सजा हो गयी। पर सिंगापुर में स्थित एक रेजीमेण्ट में सचमुच गदर हो गया तथा २१ फरवरी १९१५ को आजाद हिन्द फौज से प्रभावित सिपाहियों ने क्रान्ति करके करीब-करीब सात दिन तक आजाद हिन्द फौज ने सिंगापुर को अपने अधिकार में रखा। इस विद्रोह को भड़काने व शिखर तक पहुँचाने भाई परमानन्द की ओजस्वी वक्तृता का बड़ा योगदान रहा। परन्तु अकेले ये सिपाही कब तक लड़ते अन्ततः बड़ी मुश्किल से रूसी, जापानी व अंग्रेजी जंगी जहाजों की सहायता से यह विद्रोह दबाया जा सका।

१८५७ से लगभग १९१५-१६ तक हुई सशस्त्र क्रान्ति प्रयासों पर एक दृष्टिपात व मुस्लिम जगत्

प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम के मात्र १५ वर्ष बाद यथा सन् १८७२ में पंजाब में श्री राम सिंह कूका के द्वारा चलाया गया असफल सशस्त्र विद्रोह तथा लगभग इसी काल में दो बहाबी मुसलमान क्रान्तिकारियों द्वारा की गयी अंग्रेजों की हत्या से शुरू हुआ यह क्रान्ति आन्दोलन पहले महाराष्ट्र में पनपते हुये चाफेकर व सावरकर बन्धुओं के अमर बलिदान से पोषित होता हुआ, बंगाल, अवध व उत्तर प्रदेश, देहली व पंजाब में जोर-शोर से फैला तथा अंग्रेजों के अत्याचार के विरुद्ध क्रान्तिकारियों द्वारा किये जाने वाले दुस्साहसिक हमलों का अन्तहीन सिलसिला चलता रहा। यहाँ तक कि प्रथम विश्वयुद्ध में अप्रवासी भारतीय क्रान्तिकारियों व भारत के क्रान्तिकारियों के गहरे ताल-मेल से भारत को अंग्रेजों से मुक्त कराने का प्रयास भी असफल रहा। क्रान्ति के इस दावानल में दधकते हुये इन उपरवर्णित प्रान्तों को छोड़कर देश के अन्य भागों में उन दिनों थोड़ी बहुत सुगबुहाट तो थी, पर क्रान्ति के लिये आवश्यक जागृति का वहाँ के जनमानस में अभाव था। यथा बिहार, उड़ीसा, मद्रास प्रेसीडेन्सी (यहाँ मद्रास से अभिप्राय मद्रास प्रेसीडेन्सी से हैं जिसमें लगभग सारा दक्षिण भारत शामिल था) मध्य प्रान्त आदि इन दिनों शान्त ही रहे। १९१५ आते-आते सशस्त्र क्रान्ति का दौर मन्दा पड़ गया, कारण या तो क्रान्तिकारी अपने जीवन की आहुति दे चुके थे या जेल में थे।

अब असहयोग आन्दोलन का दौर शुरू होने वाला था, जिसकी

चर्चा हम अगले प्रकरण में करेंगे। असहयोग आन्दोलन शुरू होने पर क्रान्तिकारियों ने अपनी गतिविधियों को एक प्रकार का विराम दे दिया था। मात्र इसलिये कि इस आन्दोलन का क्या परिणाम निकलता है। क्रान्तिकारियों का उद्देश्य तो भारत को स्वतन्त्र कराना था। इसका जरिया क्या हो। वह उनके लिये महत्त्वपूर्ण नहीं था।

अब हम उस समय के भारतीय मुस्लिम मानस में चल रहे द्वन्द्व व ऊहापोहों को अति संक्षेप में वर्णन कर इस अध्याय को समाप्त करते हैं। अंग्रेजों को इस विशाल भारत पर अपना कब्जा जमाये रखने के लिये कुछ ऐसे भाड़े के टट्टुओं की जरूरत थी जो उनके प्रति राजभक्ति व वफादारी दिखायेँ व उनके निर्णयों को मान्य करें। इस दिशा में सबसे पहले उन्होंने यहाँ के राजाओं व नबावों को अपने वश में किया। पर राष्ट्र के भौगोलिक विस्तार को देखते हुये यह बहुत कम होने पर, उन्होंने पहले हिन्दुओं में ही आपस में दरार डालने के लिये मध्यवित्त श्रेणी को नौकरियाँ देनी प्रारम्भ कर दी। पर इनकी संख्या बहुत अधिक हो व नौकरियाँ कम होने से, यह चाल अधिक सफल नहीं हुई।

तब इन्होंने अल्पसंख्यकवाद का वह कार्ड खेला जो अपने विकृतम रूप में आज भी कायम है। यथा हिन्दुओं को गौण करके, मुस्लिम मध्य वर्ग को प्रश्रय देकर उन्हें अपने लिये वफादार बनाना। मुसलमानों में यह मध्यम वर्ग धीरे-धीरे सर सैय्यद के प्रयासों से तैयार हो रहा था। उन्होंने अलीगढ़ मुस्लिम यूनीवर्सिटी खोलकर यह कार्य करना शुरू किया, तथा इसी बीच मुस्लिम लीग की भी स्थापना हुई जिसका मुख्य घोषित उद्देश्य ब्रिटिश के प्रति राज्यभक्ति दिखाना व वफादार रहना था। इस अल्पसंख्यकवाद से जो दरार व अविश्वास उन्होंने दोनों कौमों में फैलाया इसका पूर्ण निराकरण अभी तक नहीं हो पाया है।

उन दिनों के सबसे बड़े राष्ट्रीय आन्दोलन, 'बंग-भंग' के विरुद्ध जब सारे हिन्दू इसका घोर विरोध कर रहे थे वही मुस्लिम नेता इसका पूर्ण समर्थन कर रहे थे। बाद को जब बंग-भंग रद्द कर दिया गया तब मार्च १९१२ में मुस्लिम लीग के वार्षिक अधिवेशन में ढाका में नबाव सलीम उल्लाह खान ने अपने अभिभाषण में बंग-भंग को रद्द करने की निन्दा की। मौलाना शिवली तो सर आगा खाँ से भी इसी कारण खफा हो गये।

उन दिनों भारत में सर्व इस्लामवाद की ओर प्रबुद्ध मुस्लिम

जगत् झुका हुआ था जाहिर है कि इस दृष्टिकोण के होते हुये वे भारत से लगाव महसूस नहीं करते थे, वरन् भारत के बाहर स्थित मुस्लिम राष्ट्रों में हो रही हलचलें उनका ध्यान अधिक आकृष्ट करती थीं। सर्व इस्लामवाद का अर्थ है—'चीन ओ अरब हमारा, हिन्दोस्तां हमारा, मुस्लिम हैं हम वतन हैं सारा जहाँ हमारा।' जाहिर है कि इस सोच के होते हुये उनमें भारत के प्रति कोई रुचि ही नहीं रह सकती थी। अत: भारत में अंग्रेजों के अत्याचार को अनदेखा करने वाले ये मुस्लिम प्रबुद्ध वर्ग जब मुस्लिम राष्ट्रों पर अंग्रेजों का जुल्म देखते तो उनके विरुद्ध भी होने लगते तथा पूरी राजभक्ति ही भूल जाते।

पर कुछ अन्तरराष्ट्रीय घटनाओं के मद्देनजर इनका सर्व इस्लामवाद धीरे-धीरे उतार पर आ रहा था तथा वे वस्तुस्थिति को समझने भी लगे थे। कई घटनाओं में मुख्य था प्रथम विश्वयुद्ध के आस-पास का समय, जब क्रीमियम युद्ध में इटली व तुर्की में युद्ध छिड़ा तथा बाद में प्रथम विश्वयुद्ध में तुर्की व ब्रिटेन में भी युद्ध छिड़ा तब भारत के कुछ मुसलमान बाहर गये तथा भारतीय सीमा पर बसे मुस्लिम राष्ट्रों से भारत पर आक्रमण करवाने के प्रयास में तथा यह अपेक्षा रखते हुये कि भारत के मुसलमान भी अंग्रेजों के विरुद्ध हथियार उठायेंगे, तभी उन्होंने जाना कि इस प्रक्रिया में तो सारे हिन्दू क्रान्तिकारी भी लगे हैं तब उनके सोच में संकीर्णता धीरे-धीरे कम होने लगी। सूफी अम्बा प्रसाद, बरकतुल्ला आदि तो गदर पार्टी में शामिल ही हो गये थे। इसी विद्रोह के दौरान १९१६ में मौलाना महमूद हुसैन चार साथियों सहित पकड़े गये और नजरबन्द कर लिये गये। यह देखने की बात है कि किस प्रकार यह आन्दोलन एक साम्प्रदायिकता के घेरे से पैदा हुआ तथा कालान्तर में इस आन्दोलन का रुख धीरे-धीरे व्यावहारिकता आने की वजह से पलटता चला गया। तथा इसके मुख्य सदस्य श्री फहम अली, अली अदना, उबैदुल्ला आदि इसमें पूरे मनोयोग से शामिल हो गये। इनके मानस परिवर्तन का थोड़ा विवरण पहले दिया जा चुका है।

इस प्रकार १९१६-१७ आते-आते भारत में हिन्दू व मुस्लिम का एक ही लक्ष्य था कि राष्ट्र को किस प्रकार ब्रिटिश चंगुल से मुक्त किया जाये। आगे की घटनाओं में हम देखेंगे कि किस प्रकार इस बन्धन को अपने-अपने स्वार्थ सिद्धि के लिये, विभिन्न पार्टियों

ने इस पर प्रहार पर प्रहार करके उनकी भावनाओं को दूषित कर एक दूसरे का दुश्मन बना दिया।

असहयोग का युग व महात्मा गाँधी का पदार्पण

भारतीय सशस्त्र क्रान्ति का आन्दोलन कुछ धीमा हो गया था, कारण या तो क्रान्तिकारी अपने जीवन की आहूति दे चुके थे तथा बाकी को काले पानी आदि की सजा हो चुकी थी। अतः दल काफी कुछ छिन्न-भिन्न हो गया था। पर इसी बीच एक अन्य आन्दोलन यथा असहयोग आन्दोलन का आभास मिलने लगा था। जो एक बार इस समस्त ब्रिटिश साम्राज्य की चूलें हिलाने वाला था।

सरकार ने अपनी दुरंगी नीति जारी रखते हुये एक ओर तो १० दिसम्बर १९१७ को जस्टिस ए०टी० रोलट की अध्यक्षता में एक कमेटी बनाई जिसका उद्देश्य क्रान्तिकारी षड्यन्त्रों की जड़ तक पहुँच कर उन्हें दमन करने के लिये उचित कानून बनाकर भविष्य के षड्यन्त्रों को ध्वस्त करना था तथा दूसरी ओर एक अन्य कमेटी श्री मण्टेग्यू चेम्सफोर्ड के नेतृत्व में बनायी। जिसमें भारतीय शासन व्यवस्था में सुधार के लिये सिफारिशें देनी थी।

रोलट कमेटी के निम्नलिखित सदस्य थे—

१. बेसिल स्काट (बम्बई के चीफ जस्टिस)

२. कुमार स्वामी शास्त्री (मद्रास हाईकोर्ट के जज)

३. वर्ने लावेट (उत्तर प्रदेश के बोर्ड ऑफ रिवेन्यू सदस्य)

४. प्रभातचन्द्र मित्र (वकील हाईकोर्ट कलकत्ता)

इस कमेटी का असली नाम सिडीशन कमेटी था। जाहिर है कि इसने जो भी सिफारिशें की वे भारत में उठते हुये व पूरा जोर पकड़ते हुये क्रान्तिकारी आन्दोलन व समस्त राजनैतिक आन्दोलनों पर, दमनकारी खूनी पंजा लगाकर रोक लगाना था। यथा इसकी सिफारिशों के अनुसार सरकार जिस वक्त भी चाहे जिस किसी को भी नजरबद्ध करने का, गिरफ्तार करने व तलाशी लेने का यानी कहें कि पुलिस को पूरी तरह उच्छृन्खल रूप से जनता को पीड़ित करने के अधिकार सौंप दिये जायें। इतना ही अपर्याप्त सूबत होने पर भी अभियुक्त को जल्दी सजा दी जा सके। ऐसे प्रावधान की भी सिफारिश की गयी। काँग्रेस ने इसका खुलकर विरोध किया तथा सत्याग्रह के प्रवर्तक महात्मा गाँधी ने कहा कि यदि यह एक्ट

कानून के रूप में पारित किया जाता है तो सारे देश में सत्याग्रह का तूफान खड़ा कर दिया जायेगा।

इसी प्रकार सुधार के नाम पर की गयी माण्टेग्यू चेम्सफोर्ड समिति की सिफारिशें एक व्यर्थ का झुनझुना मात्र थी। जिसकी स्वीकार्यता को लेकर काँग्रेस के अन्दर ही विरोधी मत थे, चितरंजन दास इस योजना के बिल्कुल विरुद्ध थे तथा उन्होंने इस योजना को अस्वीकार करते हुये प्रस्ताव रखा। अन्त में कांग्रेस कमेटी में एक ऐसा रीढ़विहीन प्रस्ताव रखा गया जिससे मूल प्रस्ताव बहुत नर्म हो जाता था। इस प्रकार माण्टेग्यू चेम्सफोर्ड की सिफारिशें मात्र एक दिखावे के रूप में ही रह गयी।

इन उपरलिखित प्रस्तावों व प्रतिक्रियाओं से उत्पन्न होने वाले परिदृश्य का और विवरण देने से पहले हम पाठकों का ध्यान, उस जघन्यतम् व नृशंसतम् घटना की ओर आकृष्ट करना चाहते हैं जो मानव इतिहास की क्रूरतम् पाशविक घटना है यथा जलियाँवाला बाग का सामूहिक हत्याकाण्ड। यह घटना १३ अप्रैल १९१९ को अमृतसर के जलियाँवाला बाग में घटी थी। १९१९ में कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन पंजाब में होने वाला था। इसके लिये प्रयासरत डॉ० किचलू व सत्यपाल को गिरफ्तार कर लिया गया। तो जनता ने विरोध किया तथा पुलिस के दमन के साथ जनता ने ढेले, पत्थर फेंके। जिसमें नेशनल बैंक के एक गोरे समेत ६ गोरे मारे गये। कई इमारतों को आग भी लगा दी गयी, उत्तेजित जनता ने कसूर व गुजरान्वाला में भी काफी गड़बड़ी की। महात्मा गाँधी जो अधिवेशन के लिये पंजाब जा रहे थे उन्हें पलवल नामक स्टेशन पर ही रोक कर बम्बई वापिस भेज दिया गया।

जलियाँवाला बाग हत्याकाण्ड—

१३ अप्रैल १९१९ को हिन्दू नववर्ष के उपलक्ष्य में, जलियाँ-वाला बाग में करीब २० हजार व्यक्तियों की भीड़ थी। हंसराज नाम का एक देशभक्त उन्हें सम्बोधित कर रहा था। विषय राष्ट्र प्रेम से ओत-प्रोत व देश की स्वतन्त्रता के विषय में था। इसी बीच जनरल डायर ५० गोरे और १०० अन्य सिपाहियों को लेकर बाग में घुस आया तथा भीड़ से तुरन्त स्थान खाली करने को कहा और एक पल भी इन्तजार न करते हुये उसने उस निहत्थी भीड़ पर गोली चलाने की आज्ञा दे दी। तथा आखिरी गोली तक यह काण्ड

चलता रहा। कुल १६०० गोलियाँ चलायी गयीं जिसमें ४०० व्यक्ति मारे व २००० हजार के करीब घायल हो गये परन्तु काँग्रेस की स्वतन्त्र जाँच के अनुसार यह आंकड़ा कम से कम ८०० निरीहों की हत्या का था।

इतना ही नहीं इस नरराक्षस ने अमृतसर की पानी व बिजली की सप्लाई बन्द करा दी। रास्ता चलने वालों को पकड़-पकड़ कर बेंत लगवाये तथा हिन्दू-मुस्लिम एकता का मखौल उड़ाते हुये, हिन्दू व मुस्लिमों को एक साथ बाँधकर बेंत लगाये गये, जनता के सामने। इस प्रकार के हत्याकाण्ड को करने की सरकार की ओर से स्वीकृति थी, क्योंकि बाद में पंजाब के गर्वनर सर माईकल ओडियार ने डायर को एक तार भेजकर लिखा—'तुम्हारी कार्यवाही ठीक है लैफ्टीनेण्ट गवर्नर समर्थन करते हैं।' कोई आश्चर्य नहीं कि इस नरपशु हत्यारे डायर को एक दशक बाद इंग्लैण्ड में अमर शहीद ऊधमसिंह ने जान से मार डाला तथा स्वयं फाँसी पर झूल गये। अस्तु। (उधमसिंह ने सर माईकल ओडियार को मारा था)

अब हम पुनः असहयोग आन्दोलन की गतिविधियों की ओर आते हैं इस आन्दोलन की हल्की सी बानगी उस समय देखने को मिली जब रोलट के प्रस्तावों के विरुद्ध महात्मा गाँधी ने देशव्यापी हड़ताल का आह्वान किया। तथा इसकी तारीख ३० मार्च १९१९ तय हुई। लोगों ने इसमें जोश से भाग लिया। देहली में हड़ताल का नेतृत्व स्वामी श्रद्धानन्द कर रहे थे। देहली स्टेशन पर गोलियाँ चली जिसमें पाँच व्यक्ति मरे और बीस घायल हुये। ब्रिटिश सरकार इस बढ़ती हुई जागृति को कुचलने में असफल रही तथा बौखलाती रही। पहली बार उसके विरुद्ध कोई इस प्रकार का सशक्त प्रदर्शन हुआ। जहाँ जनता उसकी आज्ञा की अवज्ञा करती रहे। सबसे सुखद बात तो यह देखकर होती थी कि हिन्दू व मुसलमान एक साथ बड़े मेल व सहयोग से एक दूसरे के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर इस आन्दोलन में भाग ले रहे थे। १९१९ की इण्डिया बुक में भी इस मेल को देखकर आश्चर्य प्रकट किया गया। इस प्रकार यह हड़ताल एक प्रकार से ब्रिटिश सरकार को आने वाले घटनाक्रमों का संकेत दे रही थी।

असहयोग का तूफान—

१९१९ में काँग्रेस का अधिवेशन पं० मोतीलाल नेहरू की

अध्यक्षता में अमृतसर में हुआ जहाँ जलियाँवाला बाग की निन्दा की गयी। १९२० में लाला लाजपत राय के सभापतित्व में एक विशेष अधिवेशन तथा दिसम्बर १९२० में नागपुर में नियमित अधिवेशन चक्रवर्ती विजयराघवाचार्य के सभापतित्व में हुआ। जिसमें देशबन्धु चितरंजन दास ने असहयोग आन्दोलन का प्रस्ताव रखा और भारी बहुमत से वह सदन द्वारा पास कर दिया गया।

१९२१ में यह आन्दोलन शुरू कर दिया गया, गाँधी जी ने एक करोड़ सदस्य, एक करोड़ रुपये, विदेशी वस्त्रों का जलाना आदि कई कार्यक्रम देश के सामने रखते हुये कहा कि यदि यह पूर्ण हो जाये तो ३१ दिसम्बर की आधी रात को देश स्वतन्त्र हो जायेगा। देश में इस आन्दोलन के लिये जबर्दस्त जोश था। ज्ञातव्य हो कि इसी बीच ब्रिटिश सरकार की आम माफी के तहत क्रान्तिकारी जेलों से बाहर आ गये थे यथा शचीन्द्रनाथ सान्याल, रामप्रसाद बिस्मिल, आदि सब छूट चुके थे पर इस बदले परिवेश में उन्होंने आगे की कार्यवाही को स्थगित रखा तथा इस असहयोग आन्दोलन का असर देखने के लिये उत्सुक रहे।

इस आन्दोलन को चलते-चलते साल भर हो गया था। सारे जन समूह पूरे जोश के साथ सक्रिय थे तथा इस बीच बहुत से लोग जेल में ठूँस दिये गये, पर अभी तक उपद्रव हो जाने के डर से गाँधीजी की गिरफ्तारी नहीं हुई थी। तभी चौरी-चौरा की एक घटना ने सारे आन्दोलन का रुख पलट दिया। यह घटना १२ फरवरी १९२२ की है। गोरखपुर जिले में चौरी-चौरा नामक स्थान पर असहयोग के प्रदर्शनकारी जोर-शोर से प्रदर्शन कर रहे थे कि वहाँ के थाने के दरोगा ने अपने सिपाहियों के साथ मिलकर आगे बढ़ने से रोका तथा उत्तेजित भीड़ को नियन्त्रण न कर पाने के कारण उसने गोली चलाने की आज्ञा दे दी, तथा आखिरी गोली तक यह हत्याकाण्ड चलता रहा। इसमें काफी निहत्थे मारे गये और घायल हो गये। पुलिस वाले थाने में घुस गये। कुछ लोगों ने थाने को घेर लिया तथा पुलिसवालों से बाहर आने को कहा। पर वे डर के मारे बाहर नहीं निकले तो सत्याग्रहियों ने थानें में आग लगा दी। फलस्वरूप सारे पुलिस वाले जलकर मर गये। गाँधीजी ने इन निहत्थों की पाशविक मृत्यु को तो अनदेखा कर दिया पर पुलिसवालों पर हुये हमले का संज्ञान लेते हुये उन्होंने इस आन्दोलन को तुरन्त स्थगित कर दिया।

इस अचानक आन्दोलन में ब्रेक लगने से, असहयोग की आँधी की तरह दौड़ी रेल पटरी से उतर गयी, तथा इसके डिब्बे जहाँ-तहाँ बेतरतीब हो गये। आशय यह कि इस आन्दोलन ने लोगों को जोड़ने का जो काम एक वर्ष में किया वह पूरी तरह ध्वस्त हो गया, तथा जनमानस में बिखराहट व अनिश्चय भर गया। बापू ने इस आन्दोलन को अचानक रोककर हिमालय के समान गलती की थी। महात्माजी पक्के राजनीतिज्ञ थे। उनकी राजनीतिज्ञता में यदि कोई कमी थी तो वह यह कि उनके व्यक्तिगत आदर्शों यथा सत्य व अहिंसा जिसका वह अक्षरश: पालन करते थे उसे पूरे भारतवासियों पर थोपकर वह अपने आन्दोलन को चलाना चाहते थे। जो किसी भी प्रकार व्यावहारिक व सम्भव नहीं था। इसका पहला प्रतिफल यह था कि जो अंग्रेज सरकार पूरे एक वर्ष तक बापू को गिरफ्तार करने की हिम्मत न जुटा सकी, उसने आन्दोलन स्थगित होते ही बापू को गिरफ्तार कर लिया, क्योंकि करोड़ों के नेता न रहकर बापू अकेले रह गये।

पूज्य बापू का भारतवर्ष की स्वतन्त्रता में योगदान अतुलनीय है जिसकी जितनी प्रशंसा की जाये कम है। क्योंकि वही एक ऐसे भागीरथ थे जो हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन के मध्यवित्त व उच्च श्रेणी के स्वर्ग से उतारकर आम जनमानस के बीच ले आये। इतना ही नहीं मात्र भारत को स्वतन्त्र कराने के उद्देश्य से विभिन्न विचारधाराओं, यहाँ तक कि विरोधी विचारधाराओं वाले बुद्धिजीवी वर्ग को एक ही झण्डे तले लाकर महत् कार्य करने वाले एक मात्र बापू ही थे। इसके साथ ही सारे भारत को एक सूत्र में पिरोकर उसके जनमानस में राष्ट्रप्रेम व एकता का जज्बा भरने का श्रेय भी बापू को ही जाता है। भारत के विशाल जनसमूह को वश में करने की इसी अलौकिक कला के स्तुतिगान में हिन्दी के एक कवि उनके बारे में लिखते हैं—

सुनो-सुनो ऐ दुनियाँ वालो
बापू की यह अमर कहानी,
वो बापू जो पूज्य है इतना
जितना गंगा माँ का पानी।।

परन्तु उनके इन गुणों पर उनकी 'सत्य व अहिंसा' के आदर्शों में किये गये निर्णय हमेशा राष्ट्र को नुकसान पहुँचाने वाले ही रहे। परन्तु सत्य यही है कि इस नुकसान के बाद भी बापू के सारे

क्रियाकलापों की तुलना करने पर उनके स्वतन्त्रता के प्रयास हर प्रकार से कहीं अधिक प्रशंसनीय व पूज्यनीय हैं।

आन्दोलन स्थगित होने पर प्रतिक्रियाओं का दौर प्रारम्भ हो गया। आम जन मानस हतोत्साहित होकर बैठ गया, श्रद्धानन्द जैसे प्रचण्ड क्रान्तिकारी शुद्धि संगठन में लग गये तथा मुस्लिम लीग जो प्रथम विश्वयुद्ध के दौर से ही अकर्मन्य सी पड़ी थी, तथा उसका प्रभाव बहुत कम था, धीरे-धीरे सक्रिय होने लगी। १९२१ में मुस्लिम लीग का अधिवेशन नहीं हो सका तथा १९२२ में कोरमपूरा न होने के कारण उसे रद्द करना पड़ा, पर कालान्तर में यह पुनः पनपने लगा तथा मुसलमानों में साम्प्रदायिकता के भाव जागने लगे।

असहयोगोत्तर क्रान्तिकारी आन्दोलन : काकोरी काण्ड

एक तीव्र गति से आगे बढ़ते आन्दोलन में अचानक ब्रेक लगने के कारण, जो दिग्भ्रमित प्रतिक्रियाओं का दौर चलता है व चलने लगा। कुछ साम्प्रदायवादी हो गये, कुछ सुधार व विधानवादी, तथा कुछ हतोत्साहित होकर मनमसोस कर रह गये, पर भारत के कुछ नौजवानों ने इस प्रकार की प्रतिक्रियाओं से उठकर पुनः सशस्त्र क्रान्ति का बिगुल फूँककर, देशवासियों में आशा की किरण जगाये रखने का प्रयास किया।

क्रान्तिकारी दल संगठित किये जाने लगे, तथा शचीन्द्रनाथ सान्याल जो जेल से छूट चुके थे वे उत्तर भारत में, बंगाल में अनुशीलन समिति क्रान्तिकारियों को पुनः संगठित करने लगी व अब नये खून की भी इस क्रान्ति यज्ञ में भागीदारी शुरू हो गयी। इन संगठित क्रान्ति के प्रयासों के अतिरिक्त, मात्र जनमानस के सामने अपनी उपस्थिति दर्ज कराने के लिये कुछ बिखरे क्रान्ति सपूतों ने अपने-अपने स्तर पर प्रयास किये जिनका हम थोड़ा सा परिचय यहाँ दे रहे हैं।

३ अगस्त १९२३ को नरेन्द्रनाथ नाम के एक विवाहित युवक के नेतृत्व में संखारीटोला पोस्ट ऑफिस पर डकैती डाली गयी पर तालमेल गड़बड़ाने पर पोस्टमास्टर की हत्या तो कर दी गयी पर कुछ लूट नहीं की जा सकी तथा नरेन्द्र को गिरफ्तार कर फाँसी दे दी गयी।

कलकत्ता के सर चार्ल्स ट्रैगर्ट, क्रान्तिकारियों को फाँसी व

काला पानी की सजा देने में अग्रगण्य थे। अतः क्रान्तिकारियों ने इनकी हत्या करने की सोची। इसके लिये गोपीमोहन साहा, भरी पिस्तौल लिये उसकी टोह में रहने लगे तथा एक दिन ट्रैगर्ट के बंगले से एक अंग्रेज मिस्टर डे बाहर निकल रहा था तो गोपी ने उन्हें गोली मार दी। गिरफ्तार होने पर उन्होंने साफ कहा कि वह ट्रैगर्ट को मारना चाहते थे। उन्हें भी फाँसी हो गयी। पर उस फाँसी से बंगाल की राजनीति में एक उबाल आ गया। बंगाल काँग्रेस के मुखिया देशबन्धु चितरंजन दास ने व अन्य ने एक प्रस्ताव पास कर गोपी मोहन की वीरता की प्रशंसा की। इसका गाँधी द्वारा विरोध करने पर भी बंगाल काँग्रेस ने यह प्रस्ताव पास कर दिया।

इसी प्रकार १९२४ में मिस्टर बुस की हत्या का प्रयास व फरीदपुर में बम फैक्ट्री का पता लगा। १८ अक्टूबर १९२४ को गिरफ्तार हुये योगेन्द्र चटर्जी से मिले कागजों से पुलिस को पता लगा कि बंगाल के बाहर भी २३ जिलों में क्रान्तिकारी संगठन बड़े जोरों से हो रहा है तो जाहिर है कि बंगाल में क्रान्तिकारी जाल कितना उग्र होगा इसकी कल्पना भी पुलिस ने कर ली। दिसम्बर १९२३ में ही चटगाँव में एक क्रान्तिकारी डाका पड़ा जिसमें १८ हजार रुपये लूट लिये गये तथा उसकी तहकीकात करने वाले दरोगा को जान से मार डाला गया।

सरकार के सामने स्पष्ट हो चुका था कि आम कानून से काम नहीं चलेगा। अतः रोलट एक्ट जो जन विरोध के कारण पास नहीं हो सका था उसमें ही थोड़ा फेरबदल कर सरकार ने २५ अक्टूबर १९२४ को उसे बंगाल ऑर्डिनेन्स के नाम से पारित कर दिया। इस प्रकार सरकार पर असीमित अधिकार आ गये तथा गिरफ्तारियाँ शुरू हो गयीं, जिनमें सुभाषचन्द्र बोस जो कलकत्ता कॉर्पोरेशन के एक्जीक्यूटिव थे। उन्हें भी गिरफ्तार कर लिया गया।

काकोरी काण्ड—

असहयोग आन्दोलन के अचानक स्थगित किये जाने के फलस्वरूप उठी प्रतिक्रियाओं में, कुछ क्रान्तिकारी विचारों वाले नवयुवकों ने भारत में अलग-अलग स्थानों पर जो किया उसका कुछ वर्णन व रोलट एक्ट को बंगाल ऑर्डीनेन्स के रूप में पारित करने तक का वर्णन हम कर आये हैं। इसी काल में यथा १९२२-२४ तक भारत के बचेखुचे क्रान्तिकारियों ने अपने संगठन को

पुर्नजीवित व ऊर्जावान् करने के प्रयास शुरू कर दिये। २० फरवरी १९२० को शचीन्द्रनाथ सान्याल व अन्य क्रान्तिकारी आम माफी के तहत छोड़ दिये गये थे। उन्होंने महात्मा गाँधी के असहयोग आन्दोलन तक चुप्पी साधे रखी, पर उसके स्थगित होते ही वे पुन: मुखर होकर अपने संगठन का जाल व ताना-बाना, बंगाल में व उत्तर प्रदेश में बनाने लगे।

शचीन्द्र ने एक क्रान्तिकारी दल की स्थापना की थी तथा जब वह कुछ हद तक संस्था को आगे बढ़ा चुके तो बंगाल की अनुशीलन समिति के सदस्य श्री क्षेत्र सिंह भी बनारस आकर कल्याण आश्रम के क्षद्म नाम से क्रान्तिकारी गतिविधियों में एक दूसरे का हाथ बटाने लगे। यहाँ पर उनकी मुलाकात शचीन्द्र वख्शी व मन्मथनाथ आदि से हुई। कुछ समय बाद यह विचार कर कि दल व अनुशीलन समिति का एक ही ध्येय है। अत: उन दोनों का विलय कर एक 'हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एशोसिएशन' नाम से एक संगठन बनाया, जिसका उद्देश्य सशस्त्र व संगठित क्रान्ति द्वारा "Federal Rupublic of United States of India" यानि 'भारत सम्मिलित राज्यों का प्रजातान्त्रिक संघ' स्थापित करना था। जिसमें प्रान्तों को घरेलू विषयों में पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त होगी, प्रत्येक बालिग को वोट देने का अधिकार तथा ऐसी शासन पद्धति की स्थापना होगी जहाँ मनुष्य का मनुष्य द्वारा शोषण न किया जा सके।

गौरतलब है कि यद्यपि क्रान्तिकारी दल का कार्यक्रम प्रारम्भिक दिनों से लेकर अन्त तक एक ही राह पर चला, पर उसके ध्येय व आदर्श में उत्तरोत्तर परिपक्वता आती गयी। इस दृष्टि से हम इसे पाँच कालखण्डों में बाँट सकते हैं—

१. १८९३-१९०५-का काल जब विद्रोह के अतिरिक्त कोई भाव नहीं था।

२. १९०५-१९१४-जब स्वाधीनता की एक हल्की धुँधली धारणा थी।

३. १९१४-१९१९-स्वाधीनता की धारणा स्पष्ट हो गयी व प्रजातन्त्र की भावना भी निश्चित रूप से शामिल हो गयी।

४. १९१९-१९२१-आन्दोलन स्थगित रहा।

५. १९२१-१९२८-प्रजातान्त्रिक स्वाधीनता के साथ-साथ एक अस्पष्ट आर्थिक स्वतन्त्रता का विचार भी शामिल हुआ।

६. १९२८-१९३२-उपरोक्त बातों के अलावा खुलकर समाज-

वाद का नारा दिया।

क्रान्तिकारी आन्दोलन का संगठन १९२४ तक पूरे प्रभावशाली स्तर पर आ गया था तथा इसी बीच काकोरी षड्यन्त्र के बारे में विचार किया जाने लगा। इसके सूत्रधार शचीन्द्र सान्याल, बख्शी, रविन्द्र मोहन कार व राजेन्द्र लाहिड़ी, बनारस से थे तथा सुरेश बाबू कानपुर व श्री रामप्रसाद बिस्मिल शाहजहाँपुर से इस दल के नेता थे। आगे बढ़ने से पहले काकोरी काण्ड से जुड़े कुछ क्रान्तिकारियों का संक्षिप्त जीवन परिचय पाठकों की सेवार्थ प्रस्तुत किया जाता है।

रामप्रसाद बिस्मिल—

एक अत्यन्त गरीब परिवार में जन्मे श्री रामप्रसाद बिस्मिल के पूर्वज मूलतः ग्वालियर के थे, पर बाद में शाहजहाँपुर में आकर बस गये। उनके पिता का नाम श्री मुरलीधर था। उन्होंने बचपन से ही आर्यसमाजी शिक्षा पायी थी तथा अन्त तक किसी हद तक वे आर्यसमाजी ही रहे। मैनपुरी षड्यन्त्र में वे भी शामिल थे तथा डकैती व अस्त्र-शस्त्र आदि में वे अनुभवी थे। मैनपुरी षड्यन्त्र में वे फरार रहकर एक ग्राम में किसान बनकर खेती आदि करते रहे तथा सरकार द्वारा आम माफी की घोषणा पर पुनः शाहजहाँपुर में प्रकट हो गये। शाहजहाँपुर के लोग उनसे डर के मारे कतराते थे तथा पुलिस उनके पीछे ही लगी रहती थी। इसी दौरान उन्होंने कुछ पुस्तकें भी लिखी तथा कुछ कविताओं का भी सृजन किया।

पुनः क्रान्तिकारी कार्य में शामिल होने को बेचैन बिस्मिल की मुलाकात १९२३ में अनुशीलन समिति के श्री योगेशचन्द्र चटर्जी व श्रीराम दुलारे से शाहजहाँपुर में हुई तथा वे इस वृहत् दल में शामिल हो गये। दल में कई साहसिक कार्य करते-करते अन्त में काकोरी काण्ड में वे गिरफ्तार हो गये, तथा उन्हें फाँसी की सजा हुई। १९ दिसम्बर १९२७ को इस अमर क्रान्तिकारी को गोरखपुर में फाँसी दे दी गयी।

अशफाक उल्ला—

प्रथम विश्वयुद्ध में बहुत से मुसलमानों ने क्रान्तिकारी आन्दोलन में भाग लिया था। इसी शृंखला में श्री अशफाक उल्ला का भी एक व्यक्तित्व जुड़ गया। शाहजहाँपुर के निवासी व रामप्रसाद

बिस्मिल के यह मित्र खानदानी रईस थे। घुड़सवारी, तैरना, अस्त्र-शस्त्र चलाना इन्हें बखूबी आता था। वे बहुत सुडौल व सुन्दर थे तथा बिस्मिल से क्रान्ति में शामिल करने के लिये आग्रह करते रहते थे बहुत जोर देने पर बिस्मिल ने उन्हें भी क्रान्तिकारी दल में शामिल कर लिया। वे उच्च कोटि के कवि थे। काकोरी डकैती में उनका मत था कि सीधे सरकार पर इस प्रकार टक्कर लेने से सरकार चौकन्नी हो जायेगी। अतः यह डकैती नहीं डालनी चाहिए थी। क्योंकि बाद में सरकार की कड़ी धर पकड़ के कारण दल के बिखरने का बहुत बड़ा अन्देशा था। पर क्रान्तिकारियों ने उनकी सलाह नहीं मानी। तब पार्टी के अनुशासित सिपाही की तरह उन्होंने डकैती में पूरी ताकत से योगदान दिया। तथा बाद में गिरफ्तार कर लिये गये व उन्हें भी फैजाबाद जेल में १९ दिसम्बर १९२७ को फाँसी दे दी गयी।

अशफाक की चेतावनी बाद में कितनी सही निकली यह इतिहास है। क्योंकि यह सारा दल व क्रान्तिकारी अगले ६ वर्षों में पकड़ लिये गये व दल पूरी तरह नष्ट-भ्रष्ट हो गया। अस्तु।

चन्द्रशेखर आजाद—

काकोरी काण्ड में अभियुक्त बने आजाद अन्त तक नहीं पकड़े जा सके तथा करीब ६ वर्ष बाद सामने की सशस्त्र लड़ाई में इलाहाबाद के अल्फ्रेड पार्क में उन्होंने अपनी आहूति दे दी। इस दुर्घर्ष क्रान्तिकारी का पूरा जीवन एक समुद्र के समान है। अतः इसके कुछ अंश ही अतिसंक्षेप में यहाँ देने का प्रयास किया जायेगा।

उनका जन्म अलीराजपुर स्टेट के भंवरा गाँव में एक साधारण देहाती परिवार में हुआ था। उनके पिता श्री सीताराम एक मामूली नौकरी करते थे तथा गरीबी का साया सब ओर था। उनकी माता का नाम श्रीमती जगरानी देवी था। बचपन से ही ये बहुत जिद्दी थे कहा जाता है कि एक बार एक माचिस की तीली जलाने पर जब इतनी रोशनी होती है तो सारी तीली एक साथ जलाने पर कितनी रोशनी होती होगी। मात्र यह जाँच करने के लिये उन्होंने सारी तीलियों को अपने हाथ में पकड़कर जला लिया। तथा अन्त तक सारी तीलियाँ जलने तक वे उन्हें पकड़े रहे। जाहिर है उनका हाथ जल गया था। पर उन्हें इसकी परवाह नहीं थी।

एक अन्य किस्सा उनकी युवावस्था कि है जब वे क्रान्ति के अगुवा थे। तब झाँसी के पास उनकी एक हाथ की हड्डी टूट गयी। हड्डी सैट करने के लिये बेहोश करना जरूरी था। पर यह सोचकर कि बेहोशी की हालत में कहीं उनके मुख से पार्टी के रहस्य न निकल जायें उन्होंने बिना बेहोशी के ही मर्मान्तक पीड़ा होते हुये भी अपनी हड्डियाँ सेट करवायी। अस्तु।

उन्हें संस्कृत पढ़ने के लिये काशी भेजा गया पर वहाँ मन न लगने के कारण वह अपने बाबा के पास अलीराजपुर चले गये। खुराफातों में निपुण चन्द्रशेखर की सोहबत वहाँ भीलों से हो गयी तथा तीर चलाने में वे निपुण हो गये। उन्हें भीलों के बीच रमते देख उनके बाबा ने पुनः उन्हें काशी संस्कृत पढ़ने भेज दिया।

ब्राह्मण होने के कारण तथा संस्कृत पढ़ने वालों को आर्थिक सहायता मिलने के कारण इस बार वे काशी में टिक गये, व्याकरण पढ़ा, तैरना सीखा तथा भागवत कथा, रामायण कथा आदि सुनने में मग्न रहे। जब वे दस-ग्यारह वर्ष के थे तभी जलियाँवाला बाग काण्ड हुआ तथा सारे देश में असन्तोष फैला तो वे भी इससे अछूते न रहे तथा देश का हाल जानने के लिये अखबार आदि पढ़ने लगे। गाँधी जी के असहयोग आन्दोलन छेड़ने पर वे उसमें कूद पड़े तथा पूरे जोश से उसमें भाग लिया। पुलिस ने उन्हें पकड़ लिया तथा इनके सवाल-जबाव कुछ इस प्रकार थे—

तुम्हारा नाम—आजाद

बाप का नाम—स्वाधीन

घर—जेलखाना

ऐसी गुस्ताखी के जबाव सुनकर मजिस्टेट खरेघाट ने उन्हें १५ बेंत की सजा दी। हर एक वेंत पर वह महात्मा गाँधी की जय बोलते रहे। बेंत सजा समाप्त होने पर काशी में उनका बड़े जोर-शोर से हजारों दर्शकों के बीच अभिनन्दन किया गया तथा उनका फोटो मर्यादा नामक अखबार में छपा भी, जिसका शीर्षक था वीर बालक आजाद।

गाँधी ने चौरी-चौरा की घटना के बाद जब आन्दोलन स्थगित कर दिया। तब आजाद कुछ करने की सोच ही रहे थे कि वे क्रान्तिकारियों के सम्पर्क में आये, जो अपना संगठन मजबूत करने में लगे थे। आजाद तो मानो तैयार ही थे। तुरन्त क्रान्तिकारी दल में भर्ती हो गये तथा उत्तर भारत में कुछ ही समय में क्रान्तिकारियों

के सेनापति व मुख्य संगठनकर्ता बन गये। काकोरी काण्ड में हिस्सा लेने पर भी वे पकड़े न जा सके तथा क्रान्ति के नेतृत्व का भार उत्तर भारत में उनके ऊपर आ गया। तभी उन्होंने क्रान्ति शाखाओं को सारे भारत में फैला दिया तथा भगत सिंह जैसे श्रेष्ठतम क्रान्तिकारी उन्हें अपने सहयोगी के रूप में मिले। १९२८ में साइमन कमीशन के विरोध में जब पुलिस की लाठियों का शिकार हुये लाला लाजपत राय की मृत्यु हो गयी तो उनकी मृत्यु का बदला लेने के लिये उन्होंने डिप्टी सुप्रीण्टेण्डेण्ट सैंडर्स को भगत सिंह आदि के साथ मिलकर गोली से उड़ा दिया। चन्द्रशेखर का और परिचय उनसे सम्बन्धित घटनाओं के साथ देने का प्रयास किया जायेगा।

अब काकोरी डकैती काण्ड के सम्बन्ध में थोड़ी चर्चा करते हैं। उत्तर प्रदेश में शचीन्द्रनाथ सान्याल के नेतृत्व में क्रान्तिकारी तन्त्र फैलने व कालान्तर में दल का नाम 'हिन्दुस्तान रिपब्लिशन एशोसिएशन' रख देने आदि विषय के सम्बन्ध में हम पहले लिख आये हैं। क्रान्तिकारी गतिविधियों को आगे बढ़ाने के लिये धन की आवश्यकता पड़ने पर छोटी-मोटी डकैती डाली गयी पर उनसे अभीष्ट सिद्ध नहीं हुआ। इसी बीच विदेशों से आये हथियारों के लिये हजारों रुपये की आवश्यकता पड़ी। पर हर ओर से प्रयास करने पर यथा घरों से चोरी, लोगों से चंदा आदि इकट्ठा करने पर भी जब पैसे पूरे नहीं पड़े तो रामप्रसाद बिस्मिल के नेतृत्व में सरकारी रेलवे खजाने को लूटने की योजना बनी। इस विषय में हम अशफाक उल्ला की चेतावनी के सम्बन्ध में पहले ही लिख चुके हैं। तय हुआ कि खजाना ले जाने वाली रेल को एक नियत निर्जन स्थान पर रोककर इस लूट को अंजाम दिया जाये। इस डकैती के लिये मुख्य नाम थे श्री राजेन्द्र लाहिड़ी, रामप्रसाद बिस्मिल, रोशन सिंह, अशफाक उल्ला, बनवारीलाल, शचीन्द्र बख्शी, मुकुन्दीलाल, केशव, मन्मथनाथ गुप्त व चन्द्रशेखर आजाद। बिस्मिल इस सारी टुकड़ी का नेतृत्व कर रहे थे।

तारीख ९ अगस्त १९२५ को ८ डाउन गाड़ी को लूटने की योजना बनी। सभी क्रान्तिकारी हथियारों, हथौड़ों व अन्य आवश्यक सामान के साथ गाड़ी में सवार हुये। तीन व्यक्ति, यथा श्री अशफाक उल्ला के नेतृत्व में राजेन्द्र लाहिड़ी व शचीन्द्र बख्शी, सेंकड़ क्लास के डिब्बे में चढ़ गये, चार व्यक्ति तीसरे दर्जे के डिब्बे में सवार

थे। इन क्रान्तिकारियों के पास अन्य हथियारों के साथ चार माऊजर पिस्तौलें थी। जिनमें एक बार दस गोली भरी जाती थी तथा मारक क्षमता एक हजार गज थी। हरएक के पास पचास-पचास कारतूस थे। गाड़ी में कुछ फौज के हथियारबंद सिपाही व सेना का एक मेजर से भी ऊँचा अधिकारी भी यात्रा कर रहे थे।

काकोरी स्टेशन के आते-आते निर्दिष्ट स्थान पर अशफाक उल्ला ने जोर से चेन खींच दी। गाड़ी रुक गयी। दिन की रोशनी की थोड़ी बाकी थी। गार्ड उतरकर डब्बे के पास आया तो उसे पिस्तौल दिखाकर औंधें मुँह लेट जाने को कहा। चार क्रान्तिकारी माउजर पिस्तौलों से लैस, रेल के दोनों ओर दोनों सिरे पर खड़े होकर जोर-जोर से यात्रियों को बाहर न निकलने की चेतावनी देते रहे तथा डर पैदा करने के लिये समय-समय नियमित रूप से रेल के समानान्तर गोलियाँ चलाते रहे। गलती से एक आदमी रेल से उतर आया तथा मारा गया। कालान्तर में विश्वस्त सूत्रों से यह भी पता चला कि रेल में बैठे हथियारबंद सिपाही चुपचाप बैठे रहे। उन्होंने कोई भी प्रतिवाद नहीं किया तथा सेना के अफसर ने अपने डब्बे के दरबाजे की खिड़कियाँ बंद कर लीं तथा लखनऊ पहुँचने तक स्वयं को डब्बे में ही बंद रखा।

शेष व्यक्ति खजाने की ओर बढ़े, उसके सन्दूक को बाहर निकाल कर उसे तोड़ने की प्रक्रिया शुरू हुई जिसमें अशफाक उल्ला का विशेष योगदान रहा। इसी बीच दूसरी ओर से एक गाड़ी आती हुई बिना रुके आगे निकल गयी। अन्ततोगत्वा खजाने के थैले निकाल लिये गये तथा सभी लखनऊ के चौक की ओर रवाना हुये तथा वहाँ से अपने-अपने नियत स्थानों पर चले गये। इस लूट में मात्र दस मिनट का समय लगा।

इसकी प्रतिक्रिया रूप गिरफ्तारियों का दौर शुरू हुआ तथा ४० क्रान्तिकारी गिरफ्तार कर लिये गये। शाहजहाँपुर के बनारसीलाल व इन्दुभूषण गिरफ्तार होते ही मुखबिर हो गये तथा बनवारीलाल इकबाली गवाह बन गया। कानपुर के गोपी मोहन सरकारी गवाह बन गये। इस प्रकार पुलिस को करीब-करीब सारी बातें पता चल गयी। मुकद्दमा लखनऊ में चला। ४० में से १६ लोग छोड़ दिये गये तथा २४ अभियुक्त बने। सरकार की ओर से पण्डित जगत-नारायण मुल्ला इस मुकद्दमे की पैरवी कर रहे थे तथा क्रान्तिकारियों की ओर से श्री गोविन्दवल्लभ पंत, चन्द्रभानु गुप्त, बहादुर जी,

मोहनलाल सक्सैना, आदि कई प्रख्यात वकील पैरवी कर रहे थे।

१८ महीने मुकद्दमा चलने के बाद रामप्रसाद बिस्मिल, राजेन्द्र लाहिड़ी, अशफाक उल्ला, रोशन सिंह को फांसी तथा शचीन्द्र सान्याल व बख्शी को काले पानी व अन्य को १०-१४ वर्ष की सजा हुई। इस प्रकार दिसम्बर १९२७ में चार क्रान्तिकारियों को फाँसी दे दी गयी। फांसी होने के बाद सारे देश में इस घटना को लेकर तूफान खड़ा हो गया। पर इन क्रान्तिकारियों की सजा कम नहीं की गई। फाँसी होने के बाद इन सभी क्रान्तिकारियों को अपने-अपने शहरों में जनता द्वारा अद्वितीय सम्मान देते हुये उनका अन्तिम संस्कार कर दिया गया। चन्द्रशेखर आजाद पकड़े नहीं गये तथा उन्होंने बचेखुचे संगठन को पुनः सक्रिय व प्रभावशाली बनाने के प्रयास शुरू कर दिये जिसमें उनका साथ अमर शहीद सरदार भगत सिंह दे रहे थे।

काकोरी षड्यन्त्र के कालखण्ड के आस-पास देशभर में भी छिटफुट क्रान्तिकारी गतिविधियाँ चल रही थी जो अपने-अपने क्षेत्रों की जनता में एक प्रकार की जागृति व चेतना का भाव भरने का प्रयास कर रहे थे। इनमें से कुछ घटनाओं का हल्का परिचय देकर हम इस अध्याय को समाप्त करते हैं।

कानपुर साम्यवादी षड्यन्त्र—द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान अस्त्र-शस्त्रों की व्यवस्था में लगे नरेन्द्र भट्टाचार्य का जिक्र हम पहले कर चुके हैं, जिन्होंने सी० मार्टेन नाम से इस अभियान में शिरकत की थी। पश्चात् वे अमेरिका भाग गये तथा एम०एन० राय नाम से लिखने लगे। कालान्तर में मैक्सिको पहुँचे, साम्यवादी विचारधारा की ओर झुकने लगे तथा वहाँ से भी बोरोडिन नामक प्रसिद्ध रूसी से मिलकर, रूस पहुँचकर लेनिन के नेतृत्व में काम करने लगे तथा साम्यवाद में पूरी तरह रम गये। १९२० में उनसे कुछ नवयुवक मिले जिनमें शौकत उस्मानी, मुजफ्फर अहमद आदि ने भारत आकर साम्यवाद का प्रचार करना प्रारम्भ कर दिया। बाद को यह षड्यन्त्र के रूप में चला तथा अमृत डांगे, शौकत उस्मानी व मुजफ्फर अहमद तथा नलिनी पर मुकद्दमा चला। आरोप था ब्रिटिश सरकार को उलट देने का षड्यन्त्र। मजेदार बात है कि भारत में साम्यवाद के प्रवर्तक क्रान्तिकारी थे।

बब्बर अकाली आन्दोलन—पंजाब का यह प्रसिद्ध आन्दोलन मध्यम वर्ग से लेकर खेतिहर किसानों के बीच फैलकर इसने

काफी विशाल रूप ले लिया था। इसके जनक श्री किशन सिंह गडगज्ज तथा करन सिंह व उदय सिंह नामक युवक थे। यह भी क्रान्तिकारी दल था तथा राष्ट्र विरोधी तत्त्वों की हत्या के साथ-साथ वे मुखबिरों व विभीषणों की भी हत्या कर देते थे। १४ फरवरी १९२३ को उन्होंने हैयतपुर के दीवान को मार डाला तथा वैवलपुर के हजारा सिंह के साथ दो अन्य मुखबिरों की भी हत्या कर दी। इन्हीं भेदियों की लाइन में किशन सिंह व बूटा सिंह भी मार डाले गये।

एक दिन पुलिस के घेरे में आ जाने पर करम सिंह, उदय सिंह व बिशन सिंह नामक क्रान्तिकारियों ने अपनी जान की आहूति देदी। सितम्बर १९२३ की इस घटना से बब्बर खालसा आन्दोलन और तेज हो गया। कालान्तर में इसके मुख्य पात्र यथा किशन सिंह गडगज्य आदि पकड़े गये। कुल ९१ गिरफ्तार हुये तथा ५४ को सजा हो गयी। जिनमें ६ को फाँसी हुई जिसमें श्री गडगज्य भी शामिल थे।

मनमाड बम काण्ड—

मनमोहन नामक एक युवक ने अन्य के साथ मिलकर एक षड्यन्त्र रचा जिसमें साइमन कमीशन के सदस्यों की हत्या करने का कार्यक्रम इस प्रकार बना कि इसके सदस्यों की गाड़ी को बम से उड़ा दिया जाये। कुछ हथियार डाइनेमाइट, सात बम और तमंचे आदि इकट्ठा कर एक सहयोगी मारकण्डेय व हरेन्द्र के साथ निर्धारित स्थान पर जाने के लिये रेल में बैठे। पर दुर्भाग्य से पहले ही बम फट गया। जिससे मारकण्डेय की मृत्यु हो गयी। रेल के डब्बे की छत उड़ गयी तथा हरेन्द्र बेहोश हो गये। गाड़ी पटरी से उतर गयी। होश में आने पर हरेन्द्र ने बयान दे दिया तथा मनमोहन सिंह भी गिरफ्तर हो गये। नासिक कोर्ट में मनमोहन व हरेन्द्र को सात-सात वर्ष की सजा हो गयी।

इसी तर्ज पर देवघर काण्ड, दक्षिणेश्वर बम काण्ड आदि भी हुये जिनमें क्रान्तिकारियों को सजा हो गयी। कहने का तात्पर्य यह है कि, असहयोग आन्दोलन स्थगित होने पर क्रान्तिकारी पुनः संगठित होकर अपने-अपने क्षेत्रों में सक्रिय रहकर वहाँ की जनता को जागरुक करते रहे।

लाहौर षड्यन्त्र और सरदार भगत सिंह

काकोरी काण्ड के बाद के युग में उत्तर भारत में दो महान् क्रान्तिकारियों यथा चन्द्रशेखर आजाद तथा सरदार भगत सिंह का असीमित प्रभाव रहा। इन्हीं दोनों के अथक प्रयास से इस क्षेत्र में क्रान्तिकारियों का एक सशक्त संगठन पुनः प्रतिष्ठित हो गया।

सरदार भगत सिंह का जन्म प्रखर राष्ट्रप्रेमी, बलिदानी व क्रान्तिकारी परिवार में १३ असौज सम्वत् १९६४ (सन् १९०७) में लायलपुर के बांगा नामक गाँव में हुआ था। उनके जन्म के दिन इनके चाचा सरदार स्वर्ण सिंह जेल से छूटे, पिता सरदार किशन सिंह नेपाल से लौट आये तथा दूसरे चाचा सरदार अजीत सिंह के छूटने का समाचार भी उसी दिन मिला। इतनी शुभ सूचनायें मिलने पर इनकी दादी ने इन्हें 'भागों वाला' कहा तथा इस प्रकार उनका नाम भगत सिंह रखा गया। जाहिर है इन शेरों की संतान होने के कारण इस नवजात को बब्बर शेर ही होना था। जिसके लक्षण पूत के पाँव पाने में ही दिखने के दृष्टान्त के अनुसार बचपन से ही दिखने लगे थे। एक बार मेहता आनन्द किशोर इनके घर आये तो उन्होंने बालक भगत से पूछा—

–तुम क्या करते हो?

–मैं खेती करता हूँ।

–तुम बेचते क्या हो?

–मैं बन्दूकें बेचता हूँ।

इसी प्रकार अपने साथ खेतों में जाने पर उन्होंने सलाह दी कि हम बजाय अन्न के बन्दूकें क्यों नहीं उपजाते। जिससे हमारे यहाँ खूब हथियार हो। भारत की ब्रिटिश द्वारा गुलामी का उन्हें थोड़ा-थोड़ा आभास था। एक बार यूँ ही इन्होंने अपनी माँ से पूछा— 'माँ अपने देश में कुल कितने अंग्रेज हैं' माँ ने कहा—

–करीब डेढ़ लाख।

–हमारी आबादी कितनी है?

–करीब ३३ करोड़।

–माँ तो क्या ३३ करोड़ आदमी डेढ़ लाख अंग्रेजों को नहीं निकाल बाहर कर सकते।

बेचारी माता निरुत्तर हो गयी। भगत सिंह का परिवार कट्टर आर्यसमाजी तथा तथा उनके बाबा नित्य हवन करते थे, तथा सारे

परिवार में आर्यसमाजी संस्कार उनमें कूट-कूट कर भरे थे। सारा परिवार खुले विचारों का था। सिक्ख धर्म में तम्बाकू का प्रयोग आदि वर्जित है पर उनके पिता ने इसे लाभ का सौदा समझकर तम्बाकू की खेती भी की तथा कालान्तर में गुरुद्वारे में जाकर माफी माँग ली। कहने का तात्पर्य यह है कि उनका परिवार खुले विचारों वाला तथा नये विचारों को सहर्ष अपनाने वाला था।

कॉलेज पहुँचकर उनका परिचय भगवती चरण, यशपाल, सुखदेव आदि से हुआ। जो उनके बाद में प्रमुख सहयोगी बनने वाले थे। भगवती चरण आगरा व सुखदेव लायलपुर के रहने वाले थे। यशपाल पंजाब में धर्मशाला के पास गाँव में रहने वाले थे तथा उनका परिवार भी आर्यसमाजी संस्कारों में ढला था। भगत सिंह को क्रान्ति का पहला पाठ उनके गुरु श्री जयचन्द्र विद्यालंकार ने पढ़ाया। जिसके बाद उन्होंने पीछे मुड़कर नहीं देखा।

एफ०ए० पास करने के बाद घरवालों के शादी के लिये जोर डालने पर वे भागकर दिल्ली चले गये। जहाँ उन्होंने 'अर्जुन' नामक पत्रिका में संवाददाता का कार्य किया, तथा बाद में कानपुर में 'प्रताप' में काम करते-करते बलवन्त सिंह नाम से लेखन भी करते रहे तथा एक राष्ट्रीय विद्यालय के मास्टर भी रहे। पिता किशन सिंह द्वारा भेजी सूचना पर माता की बीमारी की सुनकर वे तुरन्त घर चले गये तथा अपने गाँव बंगा पहुँचकर उन दिनों पंजाब में चल रही प्रखर अकाली आन्दोलन के सत्याग्रहियों का अपने गाँव बंगा में विश्राम व लंगर की व्यवस्था कर उन्हें सम्मानित किया।

पुलिस से पहला सामना—लायलपुर में भगत सिंह ने श्री गोपीमोहन साहा जिन्होंने चार्ल्स टेगर्ट की हत्या करने का प्रयास किया था कि जमकर तारीफ की जिससे वे पुलिस की नजरों में तो आ गये पर उनके विरुद्ध कोई कार्यवाही नहीं की जा सकी। चन्द्रशेखर के साथ मिलकर तथा सुखदेव की असाधारण संगठन क्षमत के बल पर १९२६ में पंजाब में जोर-शोर से क्रान्तिकारियों का संगठन होने लगा। यशपाल ने जयगोपाल को लाकर सुखदेव से मिलवा दिया। इसी समय बिहार के फणीश्वर नाथ घोष व कमलनाथ तिवारी भी पंजाब आकर दल में सम्मिलित हो गये। काकोरी कैदियों को १९२६ में भगाने की योजना भी बनाई गई पर सफल नहीं हो सकी।

२३ अक्टूबर १९२८ को दशहरे पर दो बम लाहौर में फटे थे जिनमें दस व्यक्ति मारे गये व ३० घायल हुये। इस सिलसिले में भी पुलिस ने उन्हें फँसाने की कोशिश की पर सफल नहीं हो सकी। यद्यपि भगत पर मुकद्दमा चलाया गया था। इसी बीच उन्होंने लाहौर में 'नौजवान भारत सभा' नामक संस्था कायम की जो बहुत शक्तिशाली हो गयी। कालान्तर में उसे पुलिस ने दबा दिया।

केन्द्रीय दल का संगठन—देश में कार्यरत विभिन्न क्रान्तिकारी संगठनों में सही तालमेल बैठाने तथा व्यापकता के लिहाज से ८ दिसम्बर १९२८ को समस्त भारत के क्रान्तिकारियों की एक सभा में निम्न पदाधिकारी बनाये गये जिनका कार्य अपने-अपने क्षेत्रों में संगठन व क्रान्तिकारी गतिविधियों का प्रारम्भ करना था।

१. फणीश्वरनाथ घोष (बिहार), २. सुखदेव तथा भगत सिंह (पंजाब), ३. विजय कुमार सिंह तथा शिव वर्मा (उत्तर प्रदेश), ४. कुन्दनलाल, चन्द्रशेखर।

यूँ तो चन्द्रशेखर सारे दल के अध्यक्ष थे पर वे विशेषकर सेना विभाग के नेता चुने गये। अभी तक प्रचलित पार्टी का नाम हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एशोसिएशन को उद्देश्य की दृष्टि से नाकाफी समझा गया। अत: इसे बदलकर 'हिन्दुस्तान सोशलिस्टिक रिपब्लिकन आर्मी' रखा गया। दल ने समाजवाद और मजदूर वर्ग के अधिनायकत्व को ध्येय घोषित कर अपनी परिपक्वता का और अधिक परिचय दिया। दल की ओर से बम बनाने के कारखाने आगरा, लाहौर, सहारनपुर तथा कलकत्ता में खोले गये।

साइमन कमीशन व सैंडर्स की हत्या—

१९२८ में भारत के भाग्य का निपटारा करने आये साइमन कमीशन का तीव्र विरोध सिर्फ काँग्रेसियों ने ही नहीं अपितु अन्य संस्थाओं ने भी किया। इस श्रृंखला में जब ३० अक्टूबर १९२८ को कमीशन लाहौर आया तो वयोवृद्ध नेता लाला लाजपत राय के नेतृत्व में उसके विरोध में उग्र प्रदर्शन किया गया, जिसमें पुलिस ने इतनी लाठियाँ बरसाईं कि लालाजी बहुत चोटिल हो गये, तथा इन्हीं की वजह से १७ नवम्बर १९२८ को उनकी मृत्यु हो गयी। इतने वयोवृद्ध व सम्माननीय नेता की इस प्रकार बर्बर हत्या की

खबर फैलते ही सारे राष्ट्र में रोष व्याप्त हो गया।

क्रान्तिकारियों ने इस मृत्यु का बदला लेने का निश्चय किया क्योंकि यह एक प्रकार से सारे भारत की ही माँग थी। इस प्रकार इसके लिये जिम्मेदार सैण्डर्स की हत्या करने के लिये चार क्रान्तिकारी चुने गये। यथा राजगुरु, चन्द्रशेखर, भगत सिंह तथा जयगोपाल। १५ दिसम्बर को ये लोग थाने पहुँचे, ३ साईकिल पर तथा राजगुरु पैदल करीब ४ बजे सैण्डर्स थाने से बाहर निकला तथा मोटर साईकिल पर बैठते ही राजगुरु ने उसे गोली से उड़ा दिया। पश्चात् भगत सिंह ने पक्का करने के लिये उस पर तीन-चार बार गोलियाँ चला दी तथा भाग निकले। उनका पीछे करते चन्नन सिंह नामक सिपाही को चन्द्रशेखर ने गोली से मार डाला।

लाहौर पुलिस चौकन्नी हो गयी तथा चौकसी व तलाशी के बीच भी भगत सिंह अपना वेश सरदार से 'मोना' में परिवर्तित कर भगवती भाई की पत्नी दुर्गा भाभी व उनके एक मात्र पुत्र शची के साथ, पति-पत्नी का नाटक करते हुये, प्रथम श्रेणी के डिब्बे में बैठ ठाठ से लाहौर से निकलकर कलकत्ता पहुँच गये। राजगुरु उनका अर्दली बनकर उनके साथ निकल गया तथा चन्द्रशेखर भी अपने बाल मुड़वाकर पण्डा का वेश रखकर साधुओं की टोली के साथ-साथ लाहौर से बाहर निकल गये।

भगत ने कलकत्ता से आगरा आकर बम का कारखाना खोला तथा और कारखाने भी खोले जिनसे मोटे तौर पर किशोरीलाल, यशपाल तथा भगवतीचरण का सम्बन्ध था, इस प्रकार सैण्डर्स की हत्या कर, राष्ट्र के अपमान का बदला ले लिये जाने पर, सारे राष्ट्र में खुशी की लहर दौड़ गयी। जवाहरलाल नेहरू इस सारे प्रसंग के बारे में लिखते हैं—हमले के कारण हुई लालाजी की मृत्यु के कारण जनमानस में दुःख से अधिक रोष व्याप्त था..........। भगत सिंह को पहले बहुत से लोग नहीं जानते थे, उनकी प्रसिद्धि एक हिंसात्मक या आतंकवादी कार्य के लिये नहीं हुई.........वरन् वे व उनके साथी इसलिये प्रसिद्ध हुये कि उन्होंने कम से कम उस समय के लिये लाला लाजपतराय की और इस प्रकार उनके जरिये से सारे देश के सम्मान की रक्षा की। वह एक प्रतीक हो गया। लोग इस कार्य को तो भूल गये किन्तु यह प्रतीक कुछ महीनों के अन्दर फैल गया तथा पंजाब के हर एक गाँव व शहर में तथा उत्तर भारत उसके नामों से गूँजने लगा।

असेम्बली में बम धमाका : भगत सिंह आदि को फाँसी तथा क्रान्तियुग का अन्त

दल में काफी मंथन करने के बाद यह निश्चय किया गया, कि लुका-छुपी के क्रान्तिकारी कार्यकलापों से ऊपर उठकर अब सही समय आ गया है जब सारे राष्ट्र को हमारे कार्यक्रम, विचारधारा व लक्ष्य का पता लगे। जिससे जनता यह समझ सके कि यह क्रान्तिकारी कार्यकलाप मात्र कुछ लोगों की हत्या तक ही सीमित न होकर, एक निश्चित परिपक्व विचारधारा का अनुसरण करते हुये, सारी भारतीय जनता के कल्याण को ध्यान में रखकर राष्ट्र की पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिये कार्यरत है।

इस कार्य को अंजाम देने के लिये भगत सिंह व बटुकेश्वर दत्त को चुना गया, क्योंकि पार्टी यह भली प्रकार जानती थी कि अपने ज्ञान, वाकपटुता व वक्तृता के बल पर पार्टी के सारे आदर्शों व विचारों को जितने सटीक रूप से भगत सिंह रख सकते हैं उतना कोई और नहीं रख सकता। इस कार्य में मृत्यु निश्चित थी। क्योंकि भगत सिंह बम फेंकने के बाद गिरफ्तार होकर ही अपनी पार्टी के लक्ष्य को राष्ट्र के सामने रख सकते थे। उनके इसी आत्मोत्सर्ग की भावना के कारण वे शहीदे आजम भगत सिंह कहलाये।

इस योजना को कार्यान्वयन हेतु ८ अप्रैल १९२९ को ये दोनों क्रान्तिकारी यथा भगत सिंह व बटुकेश्वर दत्त अपने साथ प्रचार सामग्री व धमाके का सामान लेकर दिल्ली असेम्बली की दर्शक दीर्घा में जाकर बैठ गये। उस समय सरदार विट्ठलभाई पटेल की अध्यक्षता में, पब्लिक सेफ्टी, नामक एक बिल विचारार्थ प्रस्तुत था, तथा पटेल अपना निर्णय देने ही वाले थे कि दर्शक गैलरी से एक भयानक बम असेम्बली के हाल में गिरकर जोर के धमाके के साथ फट गया। सारे हाल में धुंआ भर गया। बम फेंकते समय इतना ध्यान रखा गया था कि किसी की जान न जाये। सर जार्ज शूस्टर, तथा सर वामनजी दलाल आदि कुछ व्यक्तियों को हल्की चोटें आई। दोनों क्रान्तिकारियों ने इन्कलाब जिन्दाबाद तथा साम्राज्य-वाद का नाश हो, के नारे बुलन्द किये तथा सारे हाल में कुछ पर्चे डाले जिनमें हिन्दुस्तानी प्रजातान्त्रिक संघ की ओर से अपील की गयी थी जिसमें एक फ्रैंच क्रान्तिकारी का हवाला देकर कहा गया था कि बहरों को सुनाने के लिये धड़ाके की जरूरत है।

अपने ऐतिहासिक संयुक्त बयान में इन दोनों ने अपने क्रान्तिकारी दल का उद्देश्य देश के मजदूरों तथा किसानों का एकाधिनायकत्व, स्थापित करना है, इस आदर्श को बड़ी वाकपटुता तथा भाषा शैली से जब सबके सामने रखा तो सभी लोगों ने तारीफ करते हुये कहा कि ये लोग भी कुछ समझ रखते हैं तथा राष्ट्र के हित के बारे में अच्छी समग्रता से सोचते हैं।

तो शुरू में जो बम फेंकने की निन्दा हुई उससे हजार गुने उत्साह से सारे भारत के जनमानस ने इन दोनों ही युवकों को अपनी सर आँखों पर बिठा लिया तथा उनके फोटो, तम्बोली की दुकान से लेकर घर-घर में दिखने लगे तथा भगत सिंह व बटुकेश्वर दत्त का नाम जनता की जुबान पर था। उनके बयान की अपील सिर्फ हृदय तक ही नहीं वरन् दिमाग तक जाती थी। दोनों पर ७ मई को शुरू होकर १२ जून को यह मुकद्दमा सेशन्स से खत्म हो गया।

लोगों को मालूम हो गया था कि क्रान्तिकारी समिति सही मायने में जनता के लिये लड़ रही है। सरदार के बयान से स्पष्ट होता है कि क्रान्तिकारियों का झुकाव साम्यवाद की ओर था तथा वे एक वर्गहीन समाज की कल्पना को आधार में रखकर अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने में लगे थे।

सेशन्स कोर्ट में तो कुछ विशेष सिद्ध नहीं हो पाया परन्तु उनके विरुद्ध सबूत इकट्ठा करने में लगी पुलिस, जब लाहौर बम काण्ड की छानबीन कर रही तो मुखबिरों से उन्हें भगत सिंह का सैण्डर्स की हत्या में हाथ होने के बारे में पता लगा। कालान्तर में सूत्र से सूत्र मिलाते हुये, तथा मुखबिरों की सहायता से कई स्थानों पर छापा मारकर करीब-करीब सभी क्रान्तिकारी जून १९२८ तक गिरफ्तार हो गये। इन सभी घटनाओं को जोड़कर एक मुकद्दमा तैयार किया गया जिनमें अभियुक्तों के नाम थे—सर्व श्री सुखदेव, किशोरीलाल, शिव वर्मा, गयाप्रसाद, यतीन्द्रनाथ दास, जयदेव कपूर, भगत सिंह, बटुकेश्वर दत्त, कमलनाथ, जितेन्द्र सान्याल, आशाराम, देशराज, प्रेमदत्त, महावीर सिंह, सुरेन्द्र पाण्डे, अजय घोष, विजय कुमार सिन्हा, शिवराम राजगुरु, कुन्दनलाल तथा जयगोपाल।

आठ दिनों में ही जय गोपाल मुखबिर बन गया तथा उसे माफी दे दी गयी। लाहौर में मुकद्दमे की शुरूआत हुई पर जेल में

अति असंतोषजनक व अमानवीय व्यवहार तथा दूषित भोजन आदि प्रबन्धों के विरुद्ध क्रान्तिकारियों ने अनशन कर दिया। सबसे पहले काकोरी काण्ड के कैदियों ने बरेली जेल में अनशन किया तथा सरकार की बेरुखी के कारण यह काफी दिनों तक चलता रहा। अनशन की सूचना सारे देश में फैल गयी। अत: बाहर सारे देश की जनता उद्वेलित हो गयी। आखिर, १६वें दिन सरकार ने यह आश्वासन देकर कि मेडीकल ग्राउण्ड पर चिकित्सक के कहने पर उन्हें विशेष छूट दी जायेगी। अनशन तो टूट गया पर समस्या जस की तस रही क्योंकि डॉक्टर तो अंग्रेज था, अत: क्रान्तिकारियों की मेडीकल ग्राउण्ड का कोई सवाल ही नहीं था।

इनका अनशन समाप्त होने पर इसी बात को लेकर भगत सिंह व बटुकेश्वर दत्त ने इसी मुद्दे पर अनशन प्रारम्भ कर दिया तथा बाद में लाहौर में सभी क्रान्तिकारी अनशन पर बैठ गये। सरकार की सारी कोशिशों के बाद भी यह अनशन नहीं टूटा तथा जनता की सहानुभूति क्रान्तिकारियों के प्रति बढ़ती ही रही। इनमें यतीन्द्र दास भी थे। यह अनशन करीब ६० दिन चला, पर इसने एक क्रान्तिकारी यतीन्द्र दास की बलि ले ली।

अपनी बात मनवाने के लिये बरेली जेल में काकोरी के क्रान्तिकारियों ने एक बार पुन: अनशन किया तथा अपनी बात इस बार मनवा कर ही अनशन तोड़ा। जेल में मेनुअल में आज-कल जो Class-A, B. C. आदि श्रेणियाँ देखी जाती हैं। उनको प्रारम्भिक दौर में शुरू करने का श्रेय मात्र इन्हीं वीर क्रान्तिकारियों को जाता है अस्तु।

इन अनशनों के कारण होती हुई देर से निपटने के लिये सरकार ने सामान्य प्रक्रिया का भी ढोंग छोड़कर, १ मई १९३० को भारत सरकार गजट में लाहौर षड्यन्त्र मुकद्दमा ऑर्डीनेन्स पास कर दिया इस ट्रिब्यूनल अदालत को यह अधिकार था कि अभियुक्तों की अनुपस्थिति में भी मुकद्दमा चलाया जाये।

७ अक्टूबर १९३० को फैसला सुना दिया गया, जिसके तहत भगत सिंह, राजगुरु, सुखदेव को फाँसी की सजा व अन्य को आजन्म काला पानी से लेकर सात वर्ष व तीन वर्ष की सजा सुनाई गयी। विडम्बना यह थी कि इनको अदालत ने तो फाँसी की सजा सुनाई, पर सारे भारत की जनता भगत सिंह जिन्दाबाद के नारे लगा रही थी। देश के कोने-कोने में हड़तालें व प्रदर्शन हुये तथा

फाँसी रुकवाने के सारे प्रयास हुये, यहाँ तक कि ११ फरवरी १९३१ को प्रिविकान्सिल में की गयी अपील भी ठुकरा दी गयी। अन्ततोगत्वा नीचता व निकृष्टता की सारी हदें पार करते हुये सरकार ने २३ मार्च १९३१ को लाहौर में शाम को इन तीनों नरव्याघ्रों को फाँसी दे दी तथा हिंसा के डर के मारे उनकी लाश सम्बन्धियों को न देकर बहुत अपमानजनक तरीके से उनका अन्तिम संस्कार करके उनकी अस्थियों को सतलज नदी में डलवा दिया।

भगत सिंह आदि के बलिदान से मात्र एक महीना पहले यथा २७ फरवरी १९३१ को चन्द्रशेखर को इलाहाबाद के अल्फ्रेंड पार्क में पुलिस ने घेर लिया, जहाँ अन्त तक वे गोली चलाते रहे, तथा आखिरी गोली उन्होंने स्वयं को मारकर अपनी भी आहूति दे दी। अशफाक उल्ला की भविष्यवाणी कितनी सटीक थी इसी बात से पता चलता है कि काकोरी काण्ड के मात्र साढ़े पाँच वर्ष के अन्दर यह सारा दल समाप्त हो गया। हाँ, इसकी उपलब्ध्यिाँ असाधारण थी। अस्तु।

असहयोग आन्दोलन के ठप्प होने के बाद काँग्रेस आदि संस्थानों के कार्यकलापों पर एक विहंगम दृष्टि

पिछले अध्यायों में हम लिख आये हैं कि प्रथम विश्वयुद्ध के बाद १० दिसम्बर १९१७ को जस्टिस रौलट के नेतृत्व में एक कमेटी बनायी गयी जिसके सारे ही सुझावों को जनता के घोर विरोध होने के कारण पास नहीं किया जा सका। इसके लिये ३० मार्च १९१९ को देशव्यापी हड़ताल भी की गयी थी। जबकि यह एक पूर्ण दमनकारी व क्रान्तिकारियों को पूरी तरह नेस्तनाबूद करने वाला एक्ट था, तो दूसरी ओर उन्हीं दिनों ब्रिटेन ने माण्टेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधार का झुनझुना भी भारतीय जनता के लिये तैयार करवाया।

इसके सुधारों के अनुसार, केन्द्र में व प्रान्तों में व्यवस्थापिका सभायें, कमेटियों का गठन किया जाय, जिसमें भारत के भी कुछ प्रतिनिधि निर्वाचित होकर आये व अपनी बातें व समस्यायें रखे। पर इस पूरे ड्रामे का प्रारूप कुछ इस प्रकार था कि इससे किसी भी समस्या का कोई हल नहीं निकलने वाला था, क्योंकि इन कमेटियों, काउन्सिलों आदि में बोलबाला तो ब्रिटिश का ही या

उनके गुर्गों का ही होना था। माण्टेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधार, 'हाथी के दाँत खाने के और दिखाने के और' कहावत को चरितार्थ करते हुये ब्रिटेन की विश्वासघाती दोगली नीति का ही एक और घटिया संस्करण था। जिस प्रकार मिस्टर ह्यूम ने काँग्रेस की स्थापना मात्र इसलिये की थी, कि भारतीय अपने दुःखड़े उनके सामने रखे, उनका निराकरण होगा या नहीं इसका दूर-दूर तक कोई पता नहीं था, अतः अपने जन्म के करीब १८-२० वर्ष तक काँग्रेस मात्र प्रार्थनापत्र देने वालों की ही पार्टी बनी रही, जिसमें भारत के भविष्य का या स्वतन्त्रता की रूपरेखा मात्र का भी दूर-दूर तक पता नहीं था। प्रथम विश्वयुद्ध में जब क्रान्तिकारी अपनी पूरी ताकत से ब्रिटिश को बाहर निकालने में लगे थे, तब भी काँग्रेस अस्पष्टता की नदी में गोते लगा रही थी। इसी प्रकार मोण्टेग्यू सुधार एक ऐसे शेर के समान थे जिसके पंजे व दाँत तोड़ दिये गये हों तथा वह मात्र एक शोपीस बना रहे।

जाहिर है कि इस सुधार को काँग्रेस ने पूरी तरह अस्वीकार कर दिया था तथा असहयोग आन्दोलन की ओर बढ़ गयी, जिसकी परिणति फरवरी सन् १९२२ में अचानक इसको रोक देने से हो गयी। अतः जो जनसमूह पूरी तरह से गाँधीजी के असहयोग से पूरी तरह जुड़ा हुआ था वह बिखर गया, तथा देश में विभिन्न विचारधारायें फैलने लगी तथा साम्प्रदायिकता भी फैलने लगी। यहाँ तक कि काँग्रेस में भी देशबन्धु चितरंजन दास व त्याग मूर्ति श्री मोतीलाल नेहरू ने मिलकर एक 'स्वराज दल' की स्थापना की। जिसका मसविदा बनाने का कार्य जवाहरलाल नेहरू को सौंपा गया। यह मसविदा काँग्रेस में स्थित विभिन्न विचारधाराओं वाले वर्गों, बुद्धि-जीवियों आदि की सलाह से बनाया गया, जिस कारण इस काँग्रेस में इसकी स्वीकारता बढ़ी। इस सबका श्रेय श्री मोतीलाल नेहरू को जाता है कि उन्होंने विभिन्न वर्गों को पूरा सहयोग प्राप्त किया।

इतना ही नहीं जिस मोण्टेग्यू सुधार योजना को देशबन्धु सहित सारी काँग्रेस ठुकरा चुकी थी। उसी सुधार योजना में अब देशबन्धु व मोतीलाल जी शामिल होने पर जोर देने लगे। कारण इसके अन्तर्गत इस योजना में शामिल होकर काउन्सिल में असेम्बली के प्रारूप को Mend or End करने के विचार से जाहिर है, गाँधीजी ने इसका पूरा विरोध किया, पर काँग्रेस विशेषकर गाँधीजी की अस्पष्टता तथा कोई भी कार्यक्रम उस समय उपलब्ध न होने

के कारण जो जनता में जोश भर सके, अधिकतर काँग्रेसी देशबन्धु व मोतीलाल के पक्ष में हो गये और आखिर में बापू को विवश होकर हाँ करनी पड़ी। इस प्रकार इन काउन्सिल व असेम्बलियों में भारतीय प्रतिनिधि आ तो गये पर रहे वही ढाक के तीन पात यानी न तो इन्हें मैण्ड किया जा सका और ना ही उन्हें समाप्त किया जा सका। इसी बीच में देशबन्धु की मृत्यु हो चुकी थी।

१९२७ व १९२८ में काँग्रेस अधिवेशन क्रमशः मद्रास व कलकत्ता में हुये। जहाँ मद्रास में साईमन कमीशन के सामने सम्भवतः अपना भाव बढ़ाने के लिये काँग्रेस ने राष्ट्रीय स्वतन्त्रता को अपना ध्येय बताया वही १९२८ में कलकत्ता में स्वराज के नेहरू मसविदे को पूरी तरह स्वीकार करते हुये, सरकार को एक प्रकार से अल्टीमेटम दिया कि यदि इसको पूरा का पूरा ३१ दिसम्बर १९२९ तक या उसके पहले स्वीकार कर लिया गया तो ठीक वरना काँग्रेस देश को करबन्दी या अन्य ससामयिक सलाह देकर अहिंसात्मक असहयोग आन्दोलन करने का उपक्रम करेगी। १९२७ व १९२८ की घोषणा में निर्णय की अस्पष्टता साफ दिखती है। १९२७ में जहाँ राष्ट्रीय स्वाधीनता की बात थी, १९२८ में वह पुनः स्वराज के मसविदे तक ही सीमित रह गयी। अस्तु।

सरकार को न तो उनकी बात माननी थी और ना ही उसे माना गया, और काँग्रेस को फँसाने के लिये गोलमेज सम्मेलन में आमन्त्रित किया। अतः जनवरी १९३० में काँग्रेस ने लाहौर अधिवेशन में घोषणा कि, काँग्रेस पिछले वर्ष कलकत्ता अधिवेशन के अनुसार घोषणा करती है कि अब हमारा स्वराज्य से मतलब है पूर्ण स्वाधीनता। यह भी घोषित किया जाता है कि नेहरू कमेटी की पूरी योजना अब रद्द की जाती है। ....तथा सरकार द्वारा बनायी गयी कमेटियों का बहिष्कार करती है, लोगों से कहती है कि भविष्य में होने वाले निर्वाचनों से दूर रहें तथा वर्तमान में जिन भी प्रान्तीय व केन्द्रीय काउन्सिलों के निर्वाचित सदस्य हैं वे तुरन्त इस्तीफा दे दें।

इस प्रकार व्यवस्थापिका सभाओं के १७२ सदस्यों ने फरवरी १९३० में इस्तीफा दे दिया। १४, १५, १६ फरवरी १९३० में साबरमती की बैठक में सत्याग्रह करना निश्चित हुआ और गाँधीजी नमक सत्याग्रह करने के लिये दण्डी मार्च को निकल पड़े। इस आन्दोलन में देश भर में हजारों गिरफ्तारियाँ हुई तथा गाँधी समेत

सभी कांग्रेसी नेता गिरफ्तार हो गये, पर सरकार के इशारे पर सर तेजबहादुर सप्रू व मिस्टर जैकर २३-२४ जुलाई को गाँधीजी से मिलने यरवदा जेल पहुँचे, जहाँ विभिन्न जेलों में बन्द अपने मुख्य सहयोगियों से सलाह कर इस सम्बन्ध में बातचीत के दौर चलते रहे। २५ जनवरी को कांग्रेस कार्य समिति से प्रतिबन्ध हटा दिया गया। सारे काँग्रेसी छोड़ दिये गये, तथा १९ फरवरी १९३१ को गाँधी इरविन की सन्धि की बात दिल्ली में हुई जो बाद में 'गाँधी इरविन समझौता' के नाम से प्रसिद्ध है।

एक प्रमुख तथ्य स्पष्ट होता है कि राष्ट्रीय स्वाधीनता की स्पष्ट घोषणा काँग्रेस द्वारा १९३० में की गयी। इससे पहले पूर्ण स्वतन्त्रता के ध्वजवाहक मात्र ये क्रान्तिकारी थे। यह विडम्बना ही कही जायेगी कि गाँधी इरविन सन्धि को मात्र कुछ ही दिनों बाद पूर्ण स्वतन्त्रता का उद्घोष कर सारे भारत के जनमास को चेतना से भरने वाले तीन नरव्याघ्र यथा भगत सिंह, राजगुरु, सुखदेव को फाँसी दे दी गयी थी। अस्तु।

१९२९ के बाद क्रान्तिकारियों के कार्यकलाप तथा व्यक्तिगत क्रान्तिधारा का अन्त

भगत सिंह के गिरफ्तार होने के बाद से करीब आठ नौ वर्ष तक क्रान्तिकारी सक्रिय तो रहे पर बुझते दीपक की बुझती लौ के समान। समय गुजरते-गुजरते उनके प्रयास क्षीर्ण पड़ते गये, तथा १९३८ आते-आते इस वैयक्तिक क्रान्तिवादी धारा का अन्त हो गया, तथा आगे की घटनाओं में सही मायनों में सशस्त्र क्रान्ति चेष्टा का आन्दोलन आगे बढ़ा। देश के विभिन्न हिस्सों में धीरे-धीरे ये क्रान्ति प्रयास अपने आप में अदम्य वीरता साहस व पराक्रम से भरे थे। इनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

देहली व पंजाब क्षेत्र में ध्वस्त हो चुके क्रान्तिकारी दल के पुर्नगठन का काफी हद तक सफल प्रयास अमर सेनानी चन्द्रशेखर आजाद ने अपने बचे सहयोगी यथा श्री भगवतीचरण शर्मा, यशपाल, हंसराज, सुखदेव राज तथा क्रान्तिकारिणी बालायें, सुशीला देवी (दीदी), दुर्गादेवी (भाभी), प्रकाशवती (बाद को श्रीमती यशपाल) के साथ मिलकर गतिविधियाँ प्रारम्भ कर दीं। इनमें २३ दिसम्बर १९२९ को जब वायसराय कोल्हापुर से देहली आ रहे थे तब अपनी पूरी योजना व तैयारी के साथ इनके दल ने उनके डब्बे को

रिमोट से चलने वाले बम को रेल लाईन पर रखकर उड़ाने का प्रयास किया। निजामुद्दीन पहुँचते-पहुँचते बम को विस्फोट तो कर दिया गया पर डब्बा वह जगह छोड़ छुका था तथा दूसरा डब्बा इस घटना में उड़ गया। सरकार में भी कोहराम मच गया तथा सरकार चौकन्नी हो गयी।

दुर्भाग्य से भगवतीचरण ३० मई १९३० को रावी नदी के तट पर एक बम को टैस्ट करने जाते समय हाथ में ही विस्फोट हो जाने के कारण उनकी मृत्यु हो गयी तथा स्वतन्त्रता के इस हुतात्मा का ठीक से दाह संस्कार भी न हो सका, तथा उन्हें रावी नदी में ही दफना दिया गया। और भी कई जगह बम फटे, डाके पड़े पर दिये की बुझती लौ के समान दल क्षीण होता गया तथा २७ फरवरी १९३१ को इलाहाबाद में चन्द्रशेखर ने भी अपने जीवन का उत्सर्ग कर लिया।

देश के अन्य भागों में छिटपुट घटनायें होती रही जिनका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। अब तक बंगाल पूरी तरह उफान पर था। तथा वहाँ क्रान्तिकारियों ने जौ शौर्य व वीरता दिखाते हुये ब्रिटिश शासन के लिये जो चुनौतियाँ खड़ी की और पुलिस ने जो क्रूरता की पराकाष्ठा की वे सदा याद रखी जायेगी। बंगाल सरकार की निजी रिपोर्ट के अनुसार १९३० में क्रान्तिकारियों द्वारा दस सफल हत्यायें की गई तथा सरकार ने ५१ क्रान्तिकारियों को फाँसी दे दी। यह है सरकार की क्रूरता।

सबसे पहले चटगाँव शस्त्रागार काण्ड का मात्र परिचय दिया जाता है। इस पूरी घटना का विवरण अमर शहीद सूर्यसेन के जीवन परिचय में दिया जा चुका है। बापू का दण्डीमार्च उन दिनों १९३० के १२ मार्च से शुरू हो चुका था तथा १२ अप्रैल को बापू गिरफ्तार कर लिये गये। इसके मात्र ६ दिन बाद अर्थात् १८ अप्रैल को सूर्यसेन के नेतृत्व में ७० क्रान्तिकारियों ने जो १७-२० वर्ष के थे, चटगाँव शस्त्रागार के साथ-साथ चटगाँव के अन्य संवेदनशील क्षेत्रों पर संगठित सुनियोजित आक्रमण करके पूरे क्षेत्र को ब्रिटिश प्रभाव से मुक्त कर दिया था। जाहिर है कि ब्रिटिश से हुये इस युद्ध में ७० में से ४९ क्रान्तिकारी सैनिक मारे गये तथा बाकी बाद में पकड़े गये। पर उन तीन दिनों के भीषण युद्ध में सूर्यसेन व उनके इन साथियों ने राष्ट्र के सामने बापू के आन्दोलन के विकल्प के रूप में इसे प्रस्तुत किया। जो कालान्तर में भारतीय जनमानस पर

स्थायी प्रभाव डालने वाला बना।

बंगाल में इन ब्रिटिश की हत्याओं का तांता लगा रहा। यथा ढाका में इन्स्पैक्टर जनरल मिस्टर लॉमेन की हत्या इन्स्पैक्टर जनरल मिस्टर मिल्सन की हत्या, १९३० में की गयी तथा १९३१ से १९३३ के बीच मेदिनपुर के एक के बाद एक तीन मजिस्ट्रेटों की हत्या कर दी गयी, कारण क्रान्तिकारियों के अनुसार हिजली में नजरबन्द कैदियों पर पुलिस द्वारा बर्बरता पूर्वक गोली चलाये जाने के जबाब में यह हत्यायें की गयी। यहाँ क्रान्तिकारियों ने बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया। जिनमें कुछ उदाहरण यहाँ प्रस्तुत हैं। २४ दिसम्बर १९३१ को दो छात्रायें कुमारी शान्ति घोष व सुनीति चौधरी ने मजिस्ट्रेट मिस्टर इस्टीबैस की हत्या कर दी तथा बंगाल के गवर्नर मिस्टर स्टेनले जैक्शन पर ६ फरवरी १९३२ को वीणादास नामक एक बहन ने ५ गोलियाँ दागी पर वे बच गये। इसी प्रकार हत्याओं का दौर चलता रहा तथा इसकी गति भी धीरे-धीरे क्षीण पड़ती गयी।

आखिरी हत्या जिसने सारे राष्ट्र में स्वाभिमान को एक बार पुनः पुलकित किया, वह अमर शहीद ऊधम सिंह द्वारा, १९४० में की गयी। जलियाँबाग के जल्लाद पंजाब के तत्कालीन ले० गवर्नर सर माईकल ओडियार की हत्या उसने इंग्लैण्ड में कर दी। इस प्रकार इस समाप्त होते वैयक्तिक क्रान्ति-कलापों ने सशस्त्र क्रान्ति चेष्टा के लिये आगे का मार्ग प्रशस्त किया।

दण्डी मार्च का भारत तथा द्वितीय विश्वयुद्ध के लक्षणों का उदय

पिछले अध्यायों में हम देख आये हैं, कि किस प्रकार प्रथम असहयोग आन्दोलन, मात्र चौरी-चारा काण्ड के कारण ठप्प हो गया तथा जनमानस में बिखराहट बढ़ गयी। साथ ही कोई भी सक्षम कार्यक्रम काँग्रेस के पास न होने के कारण, देशबन्धु चितरंजन दास व श्री मोतीलाल नेहरू के नेतृत्व में काँग्रेस में ही स्वराज नामक संगठन बना। जिसने एक बार पूरी तरह अस्वीकार कर दिये जाने वाली मोण्टेग्यू-चैम्सफोर्ड सुधार योजना में काँग्रेस के शामिल होने की जोरदार वकालत करते हुये प्रस्ताव पेश किया तथा गाँधी के अधिकतर साथी इस पक्ष में होने के कारण तथा साथ ही कोई अन्य प्रोग्राम जनता के समक्ष रखने में असफल होने

के कारण मोण्टेग्यूसुधार योजना में काँग्रेस के प्रतिनिधि भी शामिल हो गये।

अपने द्वारा अभीप्सित परिवर्तनों को इसी सुधार योजना में कई वर्षों बाद भी शामिल करने में असफल होने के कारण तथा अन्य राजनैतिक घटनाक्रम की वजह से एक बार पुनः इनके प्रतिनिधि सरकारों से इस्तीफा देकर वापस आ गये। तथा बापू का प्रसिद्ध दण्डी मार्च हुआ। जिसे सरकार ने पूरी क्रूरतापूर्वक दबा दिया तथा कालान्तर में चेहरा बचाने की कवायद करते हुये, दोनों पक्षों के बीच १९३१ में गाँधी इरविन समझौता हो गया। इस समझौते के हो जाने के बाद भी काँग्रेस किसी भी प्रकार का कोई प्रभावशाली कार्यक्रम जो जनमानस को उत्साहित करता, नहीं बना पा रही थी, तथा समय धीरे-धीरे गुजरता रहा। इसी अन्तराल में बदलते हुये राजनैतिक परिदृश्य व अन्य घटनाक्रमों के चलते काँग्रेस ने एक बार फिर माण्टेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधार का दामन थाम लिया तथा देश के आठ प्रान्तों में उसकी सरकारें ब्रिटिश द्वारा लिपिबद्ध अतिसीमित अधिकारों के साथ राजकाज देखने लगी।

१९३९ में काँग्रेस के अध्यक्ष के चुनाव में श्री सुभाषचन्द्र बोस महात्मा गाँधी के घोर विरोध करने पर भी उनके उम्मीदवार श्री पट्टाभि सीतारमैया को भारी बहुतम से पराजित कर अध्यक्ष बन चुके थे। यह विजय काँग्रेस में चल रहे मंथन व वामपंथी दृष्टिकोण रखने वाले लोगों के बहुमत की ओर भी इशारा करता है तथा साथ ही गाँधी के अहिंसक आन्दोलन की सफलता पर परोक्ष रूप से प्रश्नचिह्न भी लगाता है। सभी जानते हैं कि नेताजी किन विचारों के पोषक थे। अध्यक्ष बनने के बाद भी नेताजी ने इस्तीफा दे दिया तथा ब्रिटिश सरकार की आँखों में धूल झोंकते हुये काबुल के मार्ग से भारत से निकलकर जापान पहुँच गये, जहाँ नीयति उनसे अति महत्त्वपूर्ण कार्य कराने जा रही थी। यथा भारत की ब्रिटिश सरकार पर आजाद हिन्द फौज का आक्रमण। अस्तु। भारत में चल रहे इन घटनाक्रमों के समानान्तर काल में विश्वपटल पर भी महत्त्वपूर्ण घटनायें चल रही थी, तथा एक बार फिर द्वितीय विश्वयुद्ध के बादल धीरे-धीरे विश्व क्षितिज पर दृष्टिगत हो रहे थे।

प्रथम विश्वयुद्ध के समाप्त होने पर जर्मनी पर मित्र राष्ट्रों द्वारा वारसा-पैक्ट के अन्तर्गत लगाये गये प्रतिबन्ध व शर्तें इतनी अपमानजनक थी कि सारी जर्मनी ही एक खून का घूंट पीकर रह

गयी। पर वह शर्तें तो उन पर थोप ही दी गयी। इस पैक्ट का मुख्य उद्देश्य 'मित्र राष्ट्रों' के पूंजीवाद द्वारा जनमानस का शोषण करके स्वयं को अमीर से अमीर तर बनाना था। परन्तु इनके इस विजय रथ में, दो बार जर्मनी के सर्वहाराक्रान्ति करने वाले राष्ट्रभक्तों ने जबर्दस्त अड़ंगा लगाया था। १९२३ व १९३३ में किये गये इन प्रयासों को यद्यपि मित्र राष्ट्रों ने पूरी तरह कुचल तो दिया पर जर्मनी में उन्हें एक ऐसी कठपुतली सरकार बनाने की आवश्यकता हुई जिसके द्वारा जर्मनी की जनता की लूट-खसोट की जा सके। इस प्रकार की लूट खसोट व पूंजीवाद की सफलता के लिये, दो आवश्यक तत्त्व यानि जनमानस का आर्थिक रूप से ठीक-ठाक होना तथा साथ ही उनका अशिक्षित होना, जो जर्मनी में पूरी तरह विद्यमान थे। मात्र एक कठपुतली सरकार के अगुआ की तलाश थी जिसके द्वारा जर्मनी में पूंजीवाद फैलाकर मिलजुलकर खूब लूटखसोट कर अपनी थैली भरी जा सके। ऐसे ही समय यथा सन् १९३१-३२ में, जर्मनी की क्षितिज पर हिटलर का उदय हो रहा था। जनमानस की आहत भावनाओं को सहलाने का वचन देकर, हिटलर अपनी लोकप्रियता के चरम की ओर बढ़ रहा था। जाहिर है कि वह मित्र देशों का भी लाडला बन गया और धीरे-धीरे जर्मनी को अपने अधिकार में ले लिया। मित्र देशों ने भी उसकी हर तरह से यथा आर्थिक, सामरिक सहायता की। यहाँ तक कि पनडुबी जैसे घातक वाहन के निर्माण की भी आज्ञा दे दी। फ्राँस के चीखने चिल्लाने पर भी यह प्रवाह नहीं रुका तथा वारसा सन्धि जाने कब पीछे रह गयी। मित्र देशों ने कितनी भयानक भूल की थी कि अपने ही हाथों उसने भस्मासुर का निर्माण कर लिया जो एक इतिहास है।

जर्मनी के भी इसी प्रकार पूंजीबाद में शामिल होने पर जब उसे इसके विस्तार की आवश्यकता पड़ी तो उसने जाना कि सारा बाजार तो मित्र देशों के कब्जे में है। बस यही एक ऐसा मुख्य बिन्दु था जो विश्वयुद्ध के कई मुख्य कारणों में से एक था। जाहिर है कि भस्मासुर को तो अपना कार्य करना ही थी।

इसी के समानान्तर इटली (रोम) में भी यही हालात थे तथा वहां की जर्जर अर्थव्यवस्था को एक अन्य फासिस्ट, मुसेलिनी ने अपने अधिकार में लेकर हिटलर से हाथ मिला लिया। यह तानाशाह किस हद तक ज्यादाती पर ज्यादती करता गया, तथा मित्र राष्ट्र

उसे हमेशा तुष्ट या नजरअन्दाज करते रहे, इन सारे कार्यकलापों का विश्लेषण कर वे कोई निष्कर्ष निकाल पाते, तब तक बहुत देर हो चुकी थी तथा द्वितीय विश्वयुद्ध अवश्यंभावी हो चुका था। इन परिस्थितियों के आते-आते सन् १९३८ का अन्तिम चरण आ पहुँचा।

असमंजस ग्रस्त काँग्रेस की समकालीन गतिविधियाँ

विश्व में इस प्रकार चल रहे घटनाक्रम से पूर्ण परिचित होने पर भी तथा सुभाषचन्द्र बोस के द्वारा त्रिपुरा में पठित अपने अभिभाषण में स्पष्ट कहने पर भी कि अब समझौते का समय खत्म, ब्रिटिश को छह माह का अल्टीमेटम दे दिया जाय कि इस अवधि में या तो भारत को स्वतन्त्र कर दे अन्यथा स्वतन्त्रता संग्राम छेड़ दिया जायेगा, काँग्रेस अनिर्णय की स्थिति में रही। इसी बीच १ सितम्बर १९३९ को द्वितीय विश्वयुद्ध छिड़ गया तथा वायसराय ने भारत की ओर से लड़ाई छेड़ दी एवं तरह-तरह के ऑर्डिनेन्स जारी करके प्रान्तीय मन्त्रिमण्डलों की काफी कुछ अधिकार भी छीन लिये गये। १४ सितम्बर को काँग्रेस कार्य समिति ने एक बहुत ही कमजोर सा प्रस्ताव कि—कांग्रेस सहयोग के लिये तैयार है, पर यह भाईचारे के साथ होना चाहिए तथा ब्रिटेन को भी इसके बदले में कुछ देना चाहिए, बिना शर्त सहयोग नहीं होगा। जाहिर है कि ब्रिटिश सरकार चुप रही तथा हारकर काँग्रेस ने २२ अक्टूबर को अपने सदस्यों को आठों मन्त्रिमण्डलों से इस्तीफा दिलवा दिया। तब ब्रिटिश दमन चक्र पूरे रूप में खुलकर सामने आ गया।

इस प्रकार स्वतन्त्रता संग्राम छेड़ने में पूरी तरह हिचकिचा रही काँग्रेस ने एक बार फिर रामगढ़ अधिवेशन के जरिये १९४० में सशर्त सहयोग का हाथ बढ़ाया, तथा वह भी एक बार फिर सरकार द्वारा स्वीकार नहीं हुआ, तब हारकर मजबूरन काँग्रेस को व्यक्तिक सत्याग्रह छेड़ना पड़ा। व्यक्तिक सत्याग्रह का आशय है कि पहले से इत्तिला देकर खास जगह पहुँच जाओ और वहाँ न एक पाई, न एक भाई जैसा कोई मिलता जुलता नारा देकर गिरफ्तारी दे दो।

ब्रिटेन जैसे क्रूर व दुर्दान्त शत्रु के सामने इस प्रकार का प्रतीकवादी आन्दोलन तो शेर के सामने मैमना को छोड़ने वाले दृष्टान्त से भी गया गुजरा था। भला ब्रिटिश राज्य जैसे दमनकारी,

अत्याचारी, सरकारी तन्त्र के सामने इसकी क्या बिसात। साथ ही इस विचार से ज्ञात होता था कि गाँधीवाद जितने सुयोग्यठाट के साथ भारतीय राजनैतिक क्षेत्र में पहुँचा था, अब पूर्ण रूप से ह्रासशील हो चुका था। यह सच है कि विपत्ति में फँसा ब्रिटिश साम्राज्यवाद इसके लिये तैयार नहीं था, फिर भी इस अवस्था में भी उसकी दमनकारी शक्ति इस प्रकार के आन्दोलन को कुचलने के लिये पर्याप्त थी।

हाँ, इस आन्दोलन से मात्र लाभ यह हुआ कि काँग्रेस के सभी नामी-गिरामी नेता जब जेल में डाल दिये गये तब सारे विश्व को पता चल गया कि भारत के लोग इस युद्ध के विरुद्ध है। परन्तु ब्रिटेन के कान पर जूँ तक नहीं रेंगी।

सुभाष बाबू का आह्वान—सन् १९४० में ही काँग्रेस अधिवेशन के पण्डाल के ठीक बगल में सुभाष बोस समझौता विरोधी सम्मेलन कर रहे थे, तथा उन्होंने ६ अप्रैल १९४० से यह सत्याग्रह छेड़ने का ऐलान किया। इसे हॉलवेल मोनूमेण्ट आन्दोलन नाम दिया गया। सत्याग्रही एक काल्पनिक मोनूमेण्ट तोड़ने जाते थे तथा उन्हें गिरफ्तार कर लिया जाता था पर उत्तर भारत में विशेषकर इलाहाबाद में प्रखर आन्दोलन छेड़ दिया गया। जिसके मुखिया थे, सर्व श्री केदारनाथ मालवीय, बसन्त बनर्जी, रूप नारायण पाण्डेय आदि। यहां कोतवाली, जेल, हाईकोर्ट पर झण्डा लगाने का रूप दिया गया तथा लाल पर्चे बाँटकर बताया गया कि अब सत्याग्रह का युग नहीं रहा, वरन् सरकारी इमारतों पर कब्जा करने का युग आ गया है। इलाहाबाद के ही इन यूथलीगियों को ही यह श्रेय जाता है कि 'रेल की पटरी उखाड़ो और काटो' का यहाँ पहली बार उन्होंने ही नारा दिया। नारे दीवारों पर लिखे गये तथा पर्चे बाँटकर सशस्त्र क्रान्ति की आवश्यकता बतायी गयी। उत्तर प्रदेश के अन्य स्थानों यथा बनारस आदि में भी ये प्रदर्शन हुये पर ये सभी सत्याग्रह के इर्द-गिर्द ही सीमित रहे। ब्रिटिश सरकार पर इन दबावमूलक आन्दोलनों का कोई असर नहीं हुआ तथा वह टस से मस नहीं हुई।

क्रिप्स कमीशन—इसी बीच युद्ध क्षेत्र में ब्रिटेन की लगातार हार हो रही थी। ७ दिसम्बर १९४१ को जापान, जर्मनी के पक्ष में उतर आया तथा देखते ही देखते उसने प्रशान्त महासागार पर अधिकार कर लिया तथा अगले तीन माह यानि ८ मार्च १९४२

को रंगून पर भी उसने कब्जा कर लिया। इस बिगड़ती स्थिति से निपटने के लिये ११ मार्च १९४२ को 'क्रिप्स कमीशन' की घोषणा हुई और २७ मार्च को स्टेफोर्डक्रिप्स भारत वर्ष के सामने प्रस्तावों का पिटारा लेकर भारतीय नेताओं से मिलने पहुँच गये। उनका कहना था कि इन परिस्थितियों में भारत ब्रिटिश का साथ दे। पर नेताओं ने साथ देने के लिये भारतवासियों के हित में जो कम से कम शर्तें हो सकती थी वे रखी जिसे अमान्य कर दिया गया। जाहिर है क्रिप्स साहब उल्टे पैर वापिस बोरियाँ बिस्तर बाँधकर चले गये तथा भारतीय राजनीति के पुरोधा जहाँ थे वहीं रह गये। अर्थात् ब्रिटेन से बारम्बार अपने प्रस्तावों को अस्वीकार किये जाने पर, काँग्रेस के सामने आन्दोलन छेड़ने के अतिरिक्त और कोई चारा न था। पर यह एक ऐसा निर्णय था जिसे लेने में काँग्रेस के शीर्ष नेता कतरा रहे थे।

और भारतीय जनसमूह ने अगस्त क्रान्ति कर दी

यह पढ़ने में बड़ा ही अटपटा व अजीबोगरीब लग रहा होगा कि भारतीय जनमानस ने अगस्त क्रान्ति कर दी, पर ध्रुव सत्य यह ही है क्योंकि क्रान्ति का शंखनाद करने के लिये कोई भी मूर्धन्य या प्रभावशाली नेता उपलब्ध नहीं था। वे सब ब्रिटिश सरकार के मूर्खतापूर्ण निर्णय के कारण, गिरफ्तार करके जेल में डाल दिये गये थे, तथा जनता ने क्रान्ति की बागडोर सीधे अपने हाथ में ले ली। यह स्थिति क्यों बन गयी इसके लिये हम गाँधीवाद का अति संक्षेप में विश्लेषण करके यह जानने का प्रयास करते हैं कि भारतवर्ष की स्वतन्त्रता के सन्दर्भ में गाँधीवाद किस मुकाम पर पहुँच सका, तथा आगे बढ़ने में असमर्थ रहा।

गाँधीवाद : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन—

यदि दक्षिण अफ्रीका से प्रारम्भ करें तो गाँधीवाद को अब तक करीब ५२ वर्ष हो चुके थे, पर भारत में इसका पदार्पण हुये करीब २०-२२ वर्ष हो चुके थे। गाँधीवाद का मुख्य अस्त्र था— सत्य अहिंसा को केन्द्र में रखकर सत्याग्रह किया जाये जिसका तात्पर्य था कि अपनी माँगें मनवाने के लिये जेल जाया जाये, माँगकर व जताकर जाया जाये जिससे कि सरकार पर अपनी माँगें मनवाने के लिये दबाव डाला जा सके व अन्ततोगत्वा सरकार उनकी बात मान ले।

सत्याग्रह का यह अस्त्र, एक संवेदनशील, जनहितैषी सरकार को तो कुछ करने के लिये बाध्य कर सकता है, पर एक पूरी तरह से संवेदनहीन, दमनकारी, बर्बर व क्रूर सरकार जो दूसरे देश में, अपना शोषणकारी तन्त्र चला रही है, उस पर इन सत्याग्रहों का कोई असर नहीं पड़ता। भला जो अंग्रेज १८५७ में अपनी क्रूरता व नृशंसता का खूनी पंजा 'माँ भारती' के वक्षस्थल पर गाड़कर उसे सतत् दिन-रात लहू-लुहान करने में लगे थे, तथा जिन्हें बाहर निकाल फेंकने में उद्यत, लाखों क्रान्तिकारी व जनसमूह या तो निर्ममता व बर्बरता से मार डाले गये, या फाँसी दे दी हो, उस पर इस गाँधीवादी आन्दोलन का भला क्या प्रभाव पड़ना था।

अतः जो भी सत्याग्रह आन्दोलन, १९२०, १९२१, १९३० व १९४०-४१ में हुये उन्हें या तो बीच में ही रोकना पड़ा या नेता गिरफ्तार होने के बाद भी वाँछित परिणाम प्राप्त न कर सके, हाँ हाथ में छोटे-मोटे आश्वासनों का झुनझुना उन्हें जरूर दे दिया गया, पर रहे वही ढाक के तीन पात। विशेषकर १९३४ में दण्डीमार्च व १९४०-४१ में प्रतीकवादी सत्याग्रह की जो भद्दपिटी थी, उसे देखते हुये सारे मूर्धन्य काँग्रेसियों में एक अजीब सी बेचैनी व उधेड़बुन चल रही थी।

यह तो रहा गाँधीवाद का एक पहलू, पर दूसरा जो अति तेजस्वी, राष्ट्र में ऊर्जा भरने वाला पहलू यह था कि २०वीं सदी के इस युग पुरुष व महान् विभूति बापू ने, सत्याग्रह की प्रक्रिया से ही सारे भारतीय जनसमूह को आपने जोड़ा ही नहीं, वरन् जनता जनार्दन उनके वाक्यों को ब्रह्म वाक्य मानती थी। उनके मात्र एक इशारे पर वह उनके आदेशों का पालन करने को तत्पर हो जाती थी। राष्ट्र के सारे जनमानस में इस प्रकार एकत्व की भावना को कूट-कूट कर भरने वाले इस महापरोधा को ही देश को एक सूत्र में बाँधने का अनुपम श्रेय जाता है। उनकी इस विलक्षण प्रतिभा व समर्पण का ही परिणाम है कि उन्हीं दिनों के एक प्रसिद्ध कवि ने उनके बारे में लिखा—

चल पड़े जिधर दो डग-मग में,
चल पड़े कोटि पग उसी ओर।
मुड़ गये जिधर दो नयन सजल,
मुड़ गये कोटि दृग उसी ओर॥

बापू की इस असाधारण जिजीविषा को, यह कविता मात्र एक छोटी सी श्रद्धाञ्जलि ही है।

और इसी जन समूह को, राष्ट्र की स्वतन्त्रता में प्रभावशाली ढंग से प्रयुक्त करने में फिलहाल वे स्वयं को असफल पा रहे थे। एक के बाद एक सत्याग्रह में वांछित सफलता न मिल पाने के कारण तथा विशेषकर १९३४ व १९४०-४१ के सत्याग्रहियों के भी अभीष्ट सिद्धि से काफी दूर रहने के कारण, बापू के अवचेतन में कहीं न कहीं यह धारणा धरकर चुकी थी कि मात्र अहिंसात्मक आन्दोलन के करने से अंग्रेजों से भारत को मुक्त नहीं करवाया जा सकता और वे करें तो क्यों करें इसी उधेड़बुन में लगे रहे। सत्य व अहिंसा उनके जीवन की पूंजी थी जिसे वे छोड़ नहीं पा रहे थे, पर इन अस्त्रों के सरकार पर प्रयोग पूरी तरह प्रभावहीन सिद्ध हो रहे थे।

क्रिप्स कमीशन के असफल हो जाने के कारण तथा अगस्त क्रान्ति के शुरू होने के अन्तराल के कुछ सप्ताहों में, बापू के अन्तरंग अनुयायियों तथा समिति के वरिष्ठ सदस्यों के बीच भी एक बड़ा ही विचित्र मंथन चल रहा था। वे अच्छी तरह अहिंसक आन्दोलन की प्रभावहीनता को समझ चुके थे तथा अहिंसा में पटरी उखाड़ना, टेलीफोन के तार काटना आदि कार्य कलाप शामिल होते हैं या नहीं तथा इसी प्रकार की अन्य प्रक्रियाओं को भी क्या अहिंसात्मक आन्दोलन में शामिल किया जा सकता है। अर्थात् ५२ वर्ष के गाँधीवाद आन्दोलन के असफल रहने के कारण कांग्रेस के एक अच्छेखासे धड़े में वामपंथी प्रवृत्तियाँ जोर मारने लगी थी। जाहिर है कि इन प्रवृत्तियों को जन्म लेने व पोषित होने देने में भारतीय क्रान्तिकारियों द्वारा किये गये बलिदानों का काफी योगदान रहा था। अतः बाहर से वामपंथियों की आलोचना झेलता गाँधीवाद, अब अन्दर से भी काफी त्रस्त था। इसका विस्तार से विवरण आगे किया जायेगा। इन सारे ही विचारों से रूबरू होते बापू, कोई ऐसा मार्ग निकालना चाहते थे कि साँप भी मर जाये तथा लाठी भी नहीं टूटे।

काँग्रेस के नीति निर्धारण में अस्पष्टता का दौर— अपनी इस योजना को क्रियान्वयन करने के लिये बापू ने एक उपाय निकाला कि इस अहिंसात्मक आन्दोलन पर फौरी तौर पर मात्र ब्रिटिश सरकार को दिखाने व वाँछित सौदा करने के उद्देश्य

से, एक ऊपर क्रान्ति का मुलम्मा चढ़ाया जाये, यानि हाथी के दाँत खाने के और दिखाने के और की कहावत चरितार्थ करने की कोशिश की गयी। पर इस बार भ्रम में फँसी जनता ने हाथी के दाँत दिखाने और पर ज्यादा ध्यान देकर आन्दोलन की सारी बाजी ही पलट दी तथा भयानक विस्फोट के साथ अगस्त क्रान्ति हो गयी। अब हम संक्षेप में तत्कालीन घटनाक्रम का अवलोकन करते हैं।

१४ जुलाई १९४२ को वर्धा में क्राँग्रेस कार्य समिति ने एक विराट प्रस्ताव पारित किया। जिसका संक्षेपसार इस प्रकार है— भारत में अंग्रेजी शासन का शीघ्र अन्त होना चाहिए.......। विश्वयुद्ध आरम्भ होने से ही काँग्रेस दृढ़तापूर्वक युद्ध में बाधा न पहुँचाने की नीति पर चलती आ रही है। परन्तु अपने सत्याग्रह को भी निष्फल बना देने का खतरा उठाकर भी, मात्र इसे एक 'प्रतीकवादी' रूप देने पर भी, हमारी उम्मीदें चूर-चूर हो गयी तथा क्रिप्स प्रस्ताव, जिसमें हमने राष्ट्रीय मांग के अनुरूप कम से कम अधिकार माँगे उसमें भी हमें मात्र असफलता ही हाथ लगी। इस कारण भारतीय जनमानस में ब्रिटिश विरोधी भावनायें बढ़ी, तथा असन्तोष भी गहराता जा रहा है, उसका फल यह है कि ब्रिटिश के जापान द्वारा पराजित होने पर जनमानस प्रसन्नता का अनुभव करता है........। काँग्रेस इस ब्रिटिश विरोधी जन भावना को शुभकामना में बदल देगी, यदि भारत को स्वतन्त्र कर दिया जाये........। यदि काँग्रेस की यह अपील व्यर्थ गयी तो कांग्रेस ने अब तक जितनी भी अहिंसात्मक शक्ति का संचय किया था वह अनिच्छा पूर्वक उसका उपयोग करने पर बाध्य होगी।

क्रिप्स कमीशन के असफल हो जाने के बाद बापू के वक्तव्यों व लेखों में एक विशेष प्रकार की अस्पष्टता तथा भ्रम फैलाने वाली परिस्थितियों के निर्माण की आवृत्ति आती थी। इतना ही नहीं उनके अनन्य सहयोगी व अन्तरंग सदस्यगणों के लेख भी इस भ्रम को बढ़ावा देने में सहयोग कर रहे थे। यथा—

१. १९४२ की १९ जुलाई को बापू ने अपने पत्र हरिजन में लिखा—इस बार मैं माँग कर जेल जाने वाला नहीं हूँ। यह बहुत नरम चीज होगी। अबकी बार मेरा इरादा यह है कि आन्दोलन को जहाँ तक हो सके शीघ्र तथा ह्रस्व किया किया जाये।

२. २६ जुलाई को उन्होंने फिर लिखा—आन्दोलन को नरमी

से चलाने के लिये जितने भी ऐहतियात हो सकते हैं वे सब मैं लूँगा। पर यदि मैं देखूँगा कि ब्रिटिश सरकार व मित्र शक्तियों पर किसी प्रकार की छाप नहीं पड़ रही है तो मैं अन्त तक जाऊँगा। भारत में जो कुछ होगा, उसके लिये यह उचित ही है कि मैं मित्र शक्तियों को जिम्मेदार समझूँ।

३. महादेव भाई देसाई ने ९ अगस्त के हरिजन अंक में लिखा—हम अहिंसा, असहयोग के कुछ तरीकों से बराबर परिचित हैं। इसमें सरकारी संस्थाओं तथा नौकरियों का बाईकाट और टैक्सबंदी भी है। पर अब शत्रु के सारे कर्मक्षेत्र तक अपने असहयोग को अहिंसा के दायरे में लाना होगा।

४. महात्माजी के एक अन्य प्रधान शिष्य श्री मशरूवाला ने २३ अगस्त के हरिजन में तोड़फोड़ का समर्थन करते हुये लिखा—रेलों व पुलों आदि के हस्तक्षेप को अहिंसा माना जाये।

५. सरदार पटेल ने दो-तीन स्थानों पर अपने वक्तव्यों में कहा कि—अब की बार संग्राम का वारा न्यारा एक सप्ताह में हो जायेगा।

ये वक्तव्य व लेख मात्र यह दर्शाते हैं कि बापू के अन्तरंगतम् वृत्त के सदस्यों में कैसी-कैसी बातें चल रही थी तथा इस पर बाद-विवाद होता तथा कि पटरियाँ उखाड़ना व टेलीफोन के तार काटना आदि अहिंसा है या नहीं। गाँधी जी ने एक पत्र में यों लिखा कि मशरूवाला ने मुझे इस विषय पर तर्क करते सुना होगा कि रेलों, पुलों आदि के हस्तक्षेप को अहिंसा के अन्तर्गत माना जा सकता है या नहीं। जाहिर है कि बापू के तर्कों में न तो इनका खण्डन था न ही समर्थन।

१४ जुलाई को वर्धा में पारित प्रस्ताव व सन्दर्भित आन्दोलन के विषय में देशी-विदेशी पत्रकारों व संवाददाताओं द्वारा पूछे गये प्रश्नों के उत्तर में भी बापू की अस्पष्टता व भ्रम की ध्वनि झलकती थी। यथा—

प्रश्न—क्या आप जेल जाना चाहेंगे?

उत्तर—नहीं मैं जेल नहीं जाना चाहूँगा।

प्रश्न—क्या आप जेल भेज दिये जाने पर अनशन करेंगे?

उत्तर—जेल जाने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता, पर यदि मैं जेल में ठूँस दिया गया तो मैं अनशन करूँगा या नहीं, बता नहीं सकता।

प्रश्न—आन्दोलन होने पर यदि उपद्रव होंगे तो?

उत्तर—मेरा तो उद्देश्य ऐसा नहीं है, पर उपद्रव अगर हों तो हों।

(ऐसा कहते समय उन्होंने जरा भी डर जाहिर नहीं किया)

प्रश्न—जब तक महायुद्ध चल रहा है तब तक के लिये अपने आन्दोलन को स्थगित रखें?

उत्तर—आन्दोलन होने पर जर्मनी के साथ निपटारा करने में आसानी होगी।

अगले आन्दोलन में स्पष्टीकरण—काँग्रेस नेताओं के वक्तव्य से साफ था कि आन्दोलन होकर ही रहेगा, यदि रुक सकता है तो वह है भारत की स्वतन्त्रता। इस परिमाण में आन्दोलन चलाने की बात करने वाली काँग्रेस से जब आन्दोलन की रूपरेखा व स्वरूप के बारे में 'न्यूज क्रानिकल' ने बापू से इस विषय में जानना चाहा तो उनका उत्तर था कि आन्दोलन के कार्यक्रम में जन आन्दोलन के अन्तर्गत विशुद्ध अहिंसात्मक सारी बातें आ सकती है। पर मैं विशेष विवरण नहीं दे सकता। इसका कारण यह नहीं है कि मैं कुछ छिपा रहा हूँ, बल्कि यह है कि अभी तक कोई खास कार्यक्रम तय नहीं किया गया है। ध्यान देने योग्य बात है कि यह प्रस्ताव भी काँग्रेस के पहले प्रस्तावों की तरह ही था जिसमें क्रान्ति की झलक तक नहीं थी तथा मात्र कुछ सप्ताह में शुरू होने वाले आन्दोलन के बारे में भी कोई निश्चित कार्यक्रम उनके पास नहीं था।

यह प्रस्ताव व काँग्रेसी नेताओं द्वारा विशेषकर बापू द्वारा दिये गये वक्तव्यों से एक बात साफ थी कि बापू अपने अहिंसात्मक आन्दोलन पर क्रान्ति का दिखावटी मुलम्मा चढ़ाकर अपने लक्ष्य को प्राप्त करने का प्रयास कर रहे थे।

पर उनके इन वक्तव्यों व घटनाक्रम ने जनमानस में एक भ्रम से भरा सन्देश पहुँचाया कि इस बार जेल नहीं जाना है तथा पटरी उखाड़ना, तार काटना आदि खबरों का भी जनता तक भिन्न-भिन्न आयामों में पहुँचकर उन्हें और भी उद्वेलित कर रहा था कि आखिर करना क्या है। इसी घटनाक्रम में इसी भ्रमजाल में उलझे बापू के अति निकट व विश्वसनीय सहयोगी, पट्टाभि सीतारमैया को कुछ ऐसा आभास हुआ कि टेलीफोन के तार काटना, बापू द्वारा निषिद्ध नहीं है तथा इसी आधार पर एक विस्तृत पत्र निकालकर उन्होंने

काँग्रेस में सब जगह भेजा, जो 'आन्ध्र की गश्ती चिट्ठी' नाम से प्रसिद्ध हुई। इसकी कुछ प्रतियाँ सरकार के हाथ भी लगी। बस फिर क्या था सरकार ने इसी का हवाला देते हुये बराबर यह कहा कि तोड़-फोड़ के कार्यों के लिये भीड़ की खामख्यालि नहीं, वरन् जिम्मेदार काँग्रेसीजन उत्तरदायी हैं। बाद को पास किये गये प्रस्ताव में सरकार ने कहा कि-काउन्सिल सहित गवर्नर जनरल को यह पता रहा है कि कुछ दिनों से काँग्रेस दल ने बराबर गैरकानूनी और कुछ क्षेत्रों में हिंसात्मक कार्यवाहियाँ की हैं। जैसी कार्यवाही में रेल, तार, यातायात तथा समाचार के साधनों में तोड़फोड़, हड़तालों की तैयारी, सरकारी फौजों को बरगलाना तथा युद्ध की तैयारियों में विशेषकर भर्ती में बाधा देना था।

महात्मा गाँधी के इस सम्बन्ध में प्रतिवाद करने पर भी वायसराय ने उन्हें लिखा कि—मुझे इसका बहुत अच्छी तरह पता है कि अखिल भारतीय कांग्रेस के नामी-गिरामी नेताओं द्वारा गुप्त हिदायतों के अनुसार तोड़-फोड़ का कार्य किया गया है। मुझे यह पता है कि सुपरिचित काँग्रेसजनों ने हिंसा तथा हत्या के कार्यक्रमों को संगठित किया है और उसमें भाग लिया है। इस समय भी एक गुप्त संस्था कार्य कर रही है जिसमें काँग्रेस सदस्य की पत्नी प्रमुख भाग ले रही हैं और यह संस्था बम के साथ आक्रमण तथा आतंकवाद को संगठित कर रही है।

इस पत्र में जिस महिला का जिक्र किया गया वह और कोई नहीं, वरन् प्रसिद्ध वीरांगना व क्रान्तिकारिणी श्रीमती अरुणा आसफअली थी, जिन्होंने ९ अगस्त १९४२ को मुम्बई के आजाद मैदान में तिरंगा फहराया था तथा गिरफ्तारी से बचने के लिये फरार हो गयी थी। १९४५ के दिसम्बर में कांग्रेस कार्य समिति के एक अजीबोगरीब प्रस्ताव पास करने पर जिसके अनुसार—इसने १९४२ के सारे ही आन्दोलन को हिंसक कहकर तथा काँग्रेस की अहिंसा-नीतियों के विरुद्ध होने के कारण, सारा पल्ला ही झाड़ लिया था। तब श्रीमती अरुणा तथा उनके एक सहयोगी श्री अच्युत पटवर्धन ने फरारी की हालत में ही काँग्रेस कार्यसमिति को एक आँखें खोलने वाला पत्र लिखा जो कांग्रेस के अन्दर चल रहे अन्तर्विरोधों को तो उजागर करता ही है साथ ही साथ अहिंसा शब्द की व्याख्या को ही चुनौती दे देता है। यह पत्र संक्षेप में हम यथा स्थान उद्धृत करेंगे।

ऊपर वर्णित दोनों ही वक्तव्य सरकार द्वारा सार्वजनिक कर दिये गये तथा अगले दिनों में समाचार पत्र आदि में प्रकाशित होकर आम जनमानस तक पहुँच गये। सरकार द्वारा जारी इन विज्ञप्तियों में कितना सत्य अर्द्ध सत्य या असत्य है इसकी समीक्षा करना हमारा उद्देश्य नहीं है। पर विडम्बना यह है कि आम जनता के पास इस विज्ञप्ति के द्वारा ही काँग्रेस के सही या गलत मन्तव्यों का समाचार पहुँचा तथा जनता सही या गलत धीरे-धीरे समझने लगी कि अगले आन्दोलन में क्या करना है।

नेता इस प्रकार के वातावरण के लिये मजबूर—ऊपर वर्णित घटनाक्रम स्पष्ट इंगित करता है कि कांग्रेस के महान् नेता, सत्याग्रह का पुराना तरीका बिल्कुल प्रभावहीन होने के कारण, इस प्रकार का वातावरण बनाने के लिये मजबूर थे। तभी इस पुराने अस्त्र में क्रान्ति का मुलम्मा चढ़ाकर पेश करने की जरूरत पड़ी। गाँधी जी अहिंसा से हटे नहीं, पर उन्होंने उसके दायरे में रहते हुये यह प्रभाव उत्पन्न करना चाहा कि वह अब की बार कहीं भी नहीं रुकेंगे, आगे बढ़ते चले जायेंगे, इसकी परवाह नहीं करेंगे कि चौरी-चौरा या सोलापुर काण्ड हो। पर यह तो ऊपरी बात थी। भीतर से वे यही चाहते थे कि ऐसा नहीं करना पड़े और समझौता हो जाये।

अगस्त प्रस्ताव—बम्बई में इन्हीं परिस्थितियों में अखिल भारतीय काँग्रेस कमेटी की बैठक हुई तथा ५ अगस्त को उसका प्रस्ताव प्रस्तावित हुआ। इसे पं० नेहरू ने पेश किया तथा सरदार पटेल ने इसका अनुमोदन किया। पं० नेहरू ने कहा कि—प्रस्ताव कोई धमकी नहीं है यह तो एक निमन्त्रण है। हमने सहयोग के लिये हाथ बढ़ाया है, यह स्वतन्त्र भारत के सहयोग का दावतनामा है। स्वतन्त्रता के अतिरिक्त किसी शर्त पर हमारा सहयोग नहीं हो सकता।

इस प्रसिद्ध अगस्त प्रस्ताव का सार संक्षेप इस प्रकार है—विदेशी शासन प्रणाली के आगे सिर झुकाने से भारत का पतन होता जा रहा है और उसकी आत्मरक्षा करने की व आक्रमण का विरोध करने की शक्ति घटती जा रही है। भारत में अंग्रेजी शासन का अन्त हो जाने पर ही द्वितीय विश्वयुद्ध का भविष्य निर्भर है। खतरे को देखते हुये भारत को स्वतन्त्र कर देने और ब्रिटिश अधिपत्य को समाप्त कर देने की आवश्यकता है। स्थिति में सुधार

तभी हो सकता है जब भविष्य के लिये गारंटियाँ न देकर तुरन्त भारत छोड़ दिया जाये। स्वतन्त्रता की घोषणा होने पर एक अस्थाई सरकार बना दी जायेगी और स्वतन्त्र भारत मित्र राष्ट्रों का मित्र बन जायेगा..........। हमारा प्रथम कर्त्तव्य अपनी सशस्त्र तथा हिंसात्मक शक्तियों द्वारा मित्र राष्ट्रों से सहयोग कर भारत की रक्षा करना, आक्रमण का विरोध करना, और खेतों कारखानों तथा अन्य स्थानों में काम करने वाले उन श्रमजीवियों का कल्याण करना, जो निश्चय ही समस्त शक्ति व अधिकार के वास्तविक पात्र हैं......। इस अन्तिम क्षण में भी कमेटी व फिर ब्रिटेन व मित्र राष्ट्रों से अपील करती है, परन्तु यह भी अनुभव करती है कि उसे अब राष्ट्र को ऐसी साम्राज्यवादी सरकार के विरुद्ध अपनी इच्छा प्रदर्शित करने से रोकने का कोई अधिकार नहीं है जो उस पर अधिपत्य जमाती है।

इसलिये कमेटी भारत की स्वतन्त्रता व स्वाधीनता के अविच्छेद्य अधिकार का समर्थन करने के उद्देश्य से अहिंसात्मक प्रणाली व अधिक से अधिक विस्तृत परिमाण पर एक विशाल संग्राम चालू करने की स्वीकृति देने का निश्चय करती है। जिससे देश गत २२ वर्षों के शान्तिपूर्वक संग्राम में संचित की गयी समस्त अहिंसात्मक शक्ति का प्रयोग कर सकें, यह संग्राम निश्चय ही गाँधीजी के नेतृत्व में होगा।

जैसा कि द्रष्टव्य है कि इस प्रस्ताव में कहीं भी क्रान्ति अन्तर्निहित नहीं है तथा यह भी, इस ढंग के पहले किये गये काँग्रेस प्रस्तावों में से एक प्रस्ताव है। सरकार की तरफ से बार-बार माँग की गयी कि पहले प्रस्ताव वापिस लो तब कुछ हो। पर दूसरी ओर काँग्रेस भी इस प्रस्ताव पर बार-बार विश्वास प्रकट करती रही। जाहिर है कि सरकार पर इस प्रस्ताव का न कोई असर पड़ना था और नहीं कोई असर पड़ा।

करो या मरो का मन्त्र—बापू ने कार्यक्रम का खाका खींचते हुये कहा कि—आप अब मेरे मातहत हो गये। सच्ची लड़ाई अभी शुरू नहीं हुई है। अभी तो मैं वायसराय से बात करूँगा, कुछ समय तो देना ही होगा, मौलाना साहब के यह पूछने पर कि तब तक के लिये कोई कार्यक्रम तो बताइये, मैंने कहा—'चरखा'।

मैं नमक की सुविधायें या शराबबन्दी लेने नहीं जा रहा हूँ।

मैं तो एक ही चीज लेने जा रहा हूँ—'आजादी'। आपको मैं एक मन्त्र देता हूँ। करो या मरो। जेल को भूल जायें आप सुबह-शाम यही कहें कि—खाता हूँ, पीता हूँ, श्वास लेता हूँ, तो गुलामी की जंजीर तोड़ने के लिये। आजादी डरपोकों के लिये नहीं है.......।

मन्त्र की अस्पष्टता—बापू ने इस आन्दोलन के लिये करो या मरो का ध्येय तो बताया पर यह नहीं बताया कि क्या करो। एक ताकतवर मन्त्र होते हुये भी यह अस्पष्टता इसमें सन्देह नहीं। इस अर्थ में यह इस आन्दोलन का प्रतीक भी था यानि नेताओं की ओर से जो कार्यक्रमहीनता व अस्पष्टता अब तक रही थी वही इस करो या मन्त्र में भी समाहित थी।

अवश्य जनता ने 'करो या मरो' को किसी और ही अर्थ में लिया। गाँधीजी के इस वक्तव्य में जेल जाने की बात नहीं थी, मरने की बात थी। और जनता अपनी सहज बुद्धि से जानती थी कि कौन से कार्य ऐसे हैं जिसमें जेल जाना नहीं है और मरना है। एक बार फिर यही प्रश्न उठता है कि शब्द शास्त्र के कुशल चितेरे, बापू ने आकस्मिक रूप से यह मन्त्र दिया था या जानबूझकर? इसका स्पष्टीकरण हम पहले ही निवेदन कर चुके हैं।

सरकार व जनता के बीच खड़े राष्ट्रपिता बापू—अगस्त प्रस्ताव में निहित सारी शक्ति संचय कर, आन्दोलन की सारी कमान व बागडोर अपने एक हाथ में लिये हुये तथा जनता में अपने वक्तव्यों से बारूद भरकर उसके 'डिटोनेटर' को मात्र दिखावे के तौर पर अपने दूसरे हाथ में लिये, बापू सरकार से आशा कर रहे थे कि यह झुकेगी। इस आन्दोलन को न तो बापू ही चलाना चाहते थे तथा घोर विपन्नता में फँसी द्वितीय विश्वयुद्ध की हार से त्रस्त ब्रिटिश सरकार भी यह आन्दोलन हरगिज नहीं चाहती थी, परन्तु इसकी एक हिमालय के समान भूल ने सारे परिदृश्य को ही बदल कर रख दिया। जो हस्ती इस आन्दोलन को रोक सकती थी उसी महान् नायक बापू को अपने पिछले प्रचलित तरीके अपनाकर गिरफ्तार करके ८ अगस्त को जेल भेज दिया। तथा सारे ही मूर्धन्य काँग्रेसी भी जेल की सलाखों के पीछे पहुँच गये।

जो डिटोनेटर बापू ने मात्र दिखावे के लिये पकड़ा था वह छूटकर इस जन समूह में भरी बारूद के मध्य गिर पड़ा तथा एक भीषण विस्फोट के साथ ऐसी क्रान्ति हुई कि उसके प्रवाह से एक बार सारा साम्राज्य ढह गया। जनता अब दबाव वाली राजनीति से

उठकर शक्ति पर कब्जा करने की धारा में प्रवाहित हो गयी।

जैसा कि ट्राटस्की ने लिखा है—क्रान्ति की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि जनता ऐतिहासिक घटनाओं में सीधे-सीधे हस्तक्षेप करके चीजों को अपने हाथ में ले लेती है। क्रान्ति का इतिहास सर्वोपरि इस बात का इतिहास है कि जनता अपने भाग्य निर्माण में जबर्दस्ती घुस आये। १९४२ में यही हुआ। अब की बार जनता के सामने अस्पष्ट अफवाहों के अतिरिक्त कुछ भी नहीं था। कोई कार्यक्रम नहीं था, और उसके नेता गिरफ्तार कर लिये गये थे, पर वह अपने साहस व बुद्धि को सम्बल बनाकर दौड़ पड़ी और उसने इतिहास निर्माण के सूत्र को कुछ समय के लिये अपने हाथ में ले लिया और इतने जोरों से लिया कि इससे पहले उसने कभी नहीं लिया था। जिस क्रान्ति के लिये दोनों ही पक्ष बचने का प्रयास कर रहे थे, वह जनता ने पूरे वेग के साथ कर दी।

सन् १९४६ में अपने व्याख्यान में सरदार पटेल ने स्वयं स्वीकार किया था कि गाँधी जी क्रान्ति के विरुद्ध एक तगड़ी दीवार हैं, पर परिस्थितियों के अजीब षड्यन्त्र ने क्रान्ति के विरुद्ध इस दीवार को सरकार ने गिरफ्तार करके कार्यक्षेत्र से हटा दिया। स्मरण रहे कि सरकार क्रान्ति नहीं चाहती थी। पर उसी के इस कार्य का परिणाम यह हुआ कि एक भयंकर अप्रस्तुत क्रान्ति हुई, यदि गाँधीजी गिरफ्तार नहीं होते तो क्रान्ति भी नहीं होती।

बम्बई में बापू की गिरफ्तारी पर उपस्थित काँग्रेसजनों में किंकर्तव्यविमूढ़ता छा गयी। जनता में पहले आश्चर्य व फिर रोष के भाव जाग्रत हुये। ९ अगस्त को ८ बजे गवालिया मैदान में स्वयंसेवकों की अपार भीड़ को पुलिस ने लाठीचार्ज से तितर बितर कर दिया तथा १५ जगह पुलिस ने गोलियाँ चलाई। जनता के जोश का सबसे बड़ा प्रमाण यह था कि सर्वत्र जिधर देखिये उधर, यहाँ तक कि पेड़ों पर करो या मरो लिखा हुआ था।

शीर्ष नेताओं की ओर से जनता के लिये कोई स्पष्ट निर्देश न होने के कारण समय-समय पर उनके द्वारा दिये गये भ्रमपूर्ण व अस्पष्टता लिये भाषणों को अपने-अपने तरीकों से व्याख्या करते हुये जनता ने जैसा ठीक समझा वैसा किया। अत: बम्बई में यदि कहीं ट्राम व मोटरों में आग लगाई जा रही थी तो कहीं पटरी उखाड़ी व तार काटे जा रहे थे। कहीं इमारतों पर कब्जा कर तिरंगा लहराने आन्दोलनकारी जा रहे थे तो कहीं जलूस की शक्ल में

प्रदर्शन हो रहा था आदि-आदि। अपनी-अपनी व्याख्याओं के अनुसार लोग क्रान्ति में भाग ले रहे थे। तथा यह एक प्रकार का पूरे जोश से भरा हुआ नेतृत्व से वियुक्त एक खिचड़ी आन्दोलन था। पर इस समय बहुत से नेता जनता में से निकल आये तथा उन्होंने अपने-अपने सीमित क्षेत्र में ही वीरतापूर्वक क्रान्ति का बिगुल फूँक दिया। इनमें से मात्र कुछ का ही अतिसंक्षेप परिचय देने का प्रयास यथा स्थान करेंगे।

कुछ जिम्मेदार काँग्रेसियों जिनमें वामपन्थी व दक्षिणपन्थी दोनों ही थे ने एक गुप्त संगठन बना लिया तथा एक ब्राडकास्टिंग स्टेशन भी शुरू किया। जिसके द्वारा वे यथायोग्य व यथाशक्ति आन्दोलनकारियों को गति देने का प्रयास करते रहे। सितम्बर तक आन्दोलनकारी बम तक का प्रयोग करने लगे थे।

हजारों व्यक्ति इस सम्बन्ध में गिरफ्तार हुये, सैकड़ों गोली से मार डाले गये। बहुत सी इमारतें नष्ट कर दी गयी, स्टेशन, थाने की चौकियाँ, पुलिस वालों के खड़े होने की गुमटियाँ नकार दी गयी। कई सरकारी अफसर मारे गये। रेल गाड़ियाँ उलट दी गयी। संक्षेप में जनता ने निडर होकर अपनी क्रान्तिकारी शक्तियों का प्रयोग किया। पर कोई स्पष्ट कार्यक्रम व संगठन न होने के कारण उनकी ये चेष्टायें महान् होते हुये भी बिखर गयी। नवम्बर १९४२ में रेडियो स्टेशन पकड़ लिया गया तथा लोगों को लम्बी सजायें हुई। फरवरी १९४३ तक आन्दोलन तेजी से चला पर गाँधीजी के अनशन के कारण गति धीमी होने पर भी १९४४ की फरवरी तक आन्दोलन घिसटता रहा।

जो वर्णन हम ऊपर कर आये हैं उसी से पूरी तरह मेल खाते हुये परिदृश्य सारे ही राष्ट्र के प्रान्तों में दृष्टिगोचर हुये। कहीं कम नहीं ज्यादा। इस आन्दोलन की बागडोर को अपने सीमित साधनों व दायरे में चलाने वाले अनगिनत युवक और युवतियाँ प्रकाश में आये। जिन्होंने स्वतन्त्रता के इस आन्दोलन में या तो अपने प्राणोत्सर्ग कर दिये या फाँसी के फंदे पर झूल गये। ये नई १९४२ की पीढ़ी किसी भी प्रकार असहयोग आन्दोलन के कार्यकर्ताओं से मेल नहीं खाती थी, अपितु यह सारे बलिदानी यथा—बिस्मिल, अशफाक उल्ला, चन्द्रशेखर, भगत सिंह की सोच रखने वाले क्रान्तिकारी थे। इनकी संख्या के बारे में कभी भी पता नहीं लगेगा। पर उनके बलिदानों की गाथा नीचे दिये गये कुछ व्यक्तित्वों के कार्यकलापों

में ढूँढी जा सकती है।

उत्तर प्रदेश में बलिया २० अगस्त तक क्रान्तिकारियों के अधिकार में रहा। बाद में सेना के आ जाने पर वह पुनः सरकार के कब्जे में चला गया। यहाँ जनता को नेतृत्व देने वाले सर्वश्री उमाशंकर, सरजू प्रसाद, हीरा पंसारी आदि गिरफ्तार कर लिये गये तथा उन्हें भयंकर यातनायें दी गयी।

गाजीपुर में शेरपुर के रमाशंकर राय व शोभन राम मारे गये तथा एक महिला राधिका देवी को कुएँ में डालकर मार डाला गया। इलाहाबाद में झण्डा लेकर जुलूस निकालती लड़कियों पर गोलियाँ चलाई गईं, पर जुलूस आगे बढ़ता ही रहा।

जौनपुर के सूर्यनाथ उपाध्याय ने एक क्रान्तिकारी टोली बना रखी थी, जो जगह-जगह जाकर क्रान्ति कार्य करती रहती थी। उन्हीं के साथ श्री राजनरायण मिश्र भी थे जो जौनपुर में ही क्रान्ति कार्य में लगे हुये थे। कालान्तर में दोनों ही क्रान्तिकारी अन्य व्यक्तियों यथा श्री राजमणि दुबे, नन्दकिशोर के साथ पकड़े गये। राजनारायण मिश्र को बाद में फाँसी दे दी गयी। जौनपुर के आन्दोलन की विशेषता यह है कि जहाँ अन्य स्थानों पर आन्दोलन जल्दी समाप्त हो गया। जौनपुर में कई वर्ष तक चलता रहा। राजनारायण मिश्र ने ३०० नवयुवकों की टोली तैयार कर ली थी। जिसमें वह सरकार पर आक्रमण करते थे।

असम में कनकलता नामक एक बालिका जब थाने पर ध्वज फहराने जा रही थी तब उसे पुलिस ने गोली से मार दिया। तथा इसी प्रकार बंगाल में मातंगिनी हाजिरा नामक एक ७३ वर्ष की वृद्धा को जब वे एक जुलूस का नेतृत्व कर रही थी, तब फौज ने उन पर गोली चला दी, तब भी वे तब तक आगे बढ़ती रही जब तक कि उनकी मृत्यु नहीं हो गयी। इस घटना में श्री लक्ष्मीनारायण व एक चौदह वर्ष का बच्चा भी शहीद हो गया।

इसी प्रकार के आन्दोलन व बलिदान सारे देश में होते रहे। उन बलिदानियों के नाम आदि का कुछ भी पता नहीं है। इस क्रान्ति में हजारों क्रान्तिकारी शहीद हुये व अनगिनत आन्दोलन-कारियों को जेल में डाल दिया गया। धीरे-धीरे यह भयंकर आग उगलता हुआ कुशल नेतृत्व के अभाव में धीरे-धीरे शान्त हो गया पर अपने असीमित बलिदानों की अमिट छाप छोड़कर। इस आन्दोलन को दबा दिये जाने के बाद सरकार ने अपने दमनचक्र

में जो क्रूर व बर्बर व्यवहार किया उसकी बानगी हम पिछले अध्याय में अन्यत्र लिख चुके हैं। उतने से ही पाठक समझ लें।

१९४५ में काँग्रेस का तर्कहीन प्रस्ताव व उस पर कुछ काँग्रेसियों की प्रतिक्रिया

२१ दिसम्बर १९४५ को काँग्रेस कार्य समिति ने १९४२ की क्रान्ति के सम्बन्ध में एक प्रस्ताव पास किया। जिसमें क्रान्ति करने वाले शहीदों की तारीफ तो की गई पर उनके कार्यों को अहिंसा की सीमा से बाहर का कहकर अपनी सारी ही जिम्मेदारी से पल्ला झाड़ लिया। यह अनोखा प्रस्ताव अपने उत्तरदायित्व से काँग्रेस के भागने की ओर तो इंगित करता ही है, साथ ही भविष्य में इसको होने वाले संभावित नुकसान को भी स्पष्टतः रेखांकित करता है। इसी के फलस्वरूप श्रीमती अरुणा आसफअली व श्री अच्युत-पटवर्धन ने मौलाना आजाद को अपना पत्र भेजकर इस प्रस्ताव की बखिया ही नहीं उधेड़ दी वरन् उन्हें भविष्य में होने वाले संभावित नुकसान को भी बताने का प्रयास किया। ये दोनों ही विभूतियाँ उस समय फरारी की हालत में थे। इस पत्र का अतिसंक्षेप में विवरण यहाँ प्रस्तुत है—

हमने अहिंसा पर २१ दिसम्बर १९४५ को पास किया गया काँग्रेस कार्य समिति का प्रस्ताव देखा तथा इस विषय पर गंभीर मंथन करके तथा इस प्रस्ताव से कांग्रेस पर होने वाले भावी दुष्परिणामों को सोचकर हम यह पत्र आपको भेजने को विवश हैं।

सर्वप्रथम हम समय-समय पर 'अहिंसा' शब्द की व्याख्या पर काँग्रेस के अन्दर ही उठाये गये विभिन्न पहलुओं पर मात्र एक टिप्पणी करना चाहते हैं। अहिंसा के सम्बन्ध में काँग्रेस की नीति मुख्यतः परिस्थिति के अनुसार रही है। समय-समय पर काँग्रेस ने व्यावहारिकता के अन्दर अहिंसा की परिभाषा की है। भूतकाल में भी काँग्रेस ने गाँधीवादी अहिंसा के कट्टर तर्क को मानने से इन्कार किया है। अहिंसा का सार यह है कि हम यह मानते हैं कि जो लोग सरकारी पद्धति को चलाते हैं वे उतने जिम्मेदार नहीं है, जितनी कि वह पद्धति जिसको सरकार कहते हैं, सारी बातों के लिये जिम्मेदार है।

८ अगस्त की गिरफ्तारी के बाद, जो भी कांग्रेसी बचे उन्होंने मिलकर एक गुप्त संस्था बनाई तथा इस स्वस्फूर्त तथा अचानक ही

मुक्त हुई इन आन्दोलनकारियों की शक्ति को यथासम्भव नेतृत्व दिया जाये, तथा शीर्ष नेताओं की गिरफ्तारी के बाद वह स्पष्ट निर्देश के अभाव में जो हमने उचित व परिस्थिति जन्य समझा वह किया। तथा अपने रेडियो स्टेशन से यथासम्भव दिशा निर्देश देने के प्रयास करते रहे। हमें यह कहने में बिल्कुल भी संकोच नहीं है, कि विपुल परिमाणों में उत्पन्न औपदानिक शक्तियों से उत्पन्न हजारों लाखों टन जो ऊर्जा उत्पन्न हुई उसकी मात्र एक आध माशा परिचालना हमने दी, इससे अधिक कुछ नहीं। काँग्रेस की पुकार पर जनता ने अपने आप जबाब दिया। यह आधुनिक इतिहास की सबसे बड़ी घटना है। जब जनता ने एकदम खुले विद्रोह की ओर कदम बढ़ा लिये तो उन्होंने चाहा कि सरकारी आतंकवाद के विरुद्ध जहाँ तक हो सके संगठित हुआ जाये। भले ही कुछ समय के लिये ही सही, उनकी प्रतिभा विजयी हुई। रेल की पटरियों को उखाड़ने, तार काटने, गुप्त कार्य, सरकारी लोगों का जोरदार वायकाट तथा अन्य बहुत से विषय में स्पष्ट निर्देश दिये गये कि क्या करना है।

आपका यह भी निश्चित कहना है कि जिस-जिस प्रकार से संग्राम किया गया वह काँग्रेस की अहिंसा नीति के विरुद्ध है, और उसे मेल नहीं खाते। इस प्रकार हमारे पास दो ही रास्ते रह जाते हैं। एक तो यह कि जो कुछ हुआ उसे जनता का स्वतः स्फूर्त विद्रोह का विस्फोट मान लें और अपने को उसी से प्रभावित समझें और भविष्य के लिये आपके फैसले को शिरोधार्य समझकर काम करे। दूसरा तरीका यह हो सकता है कि इस आन्दोलन में जो हमारा भाग रहा है हम उससे मुकर जायें और आपके फैसले को चुपचाप कबूल कर लें। पर ईमानदारी के साथ ही विश्वास हमें दूसरे मार्ग को अपनाने से रोक रहे हैं। हमने एक ही व्यावहारिक कसौटी का अनुसरण किया जिन बातों से भी प्रतिरोध तथा संग्राम की शक्ति स्थायी होती है और स्वतन्त्र होने की भावना तगड़ी पड़ती है और अधिक होती है वह जायज है। हम आन्तरिक रूप से इस बात के लिये मजबूर हैं कि हम फिर से अपना विश्वास व्यक्त करें।

हमने अपनी छुद्र बुद्धि से जनता के तौर-तरीकों का अध्यन किया और फिर इस बात की चेष्टा की कि दूर के विद्रोह केन्द्रों से हमें किस बात से क्या तजुर्बा हो रहा है। इन तरीकों को काम

में लाते हुये हजारों ने जीवन बलिदान कर दिया। ऐसी हालत में यदि हम उनसे मुकर जायें तो यह कायरता होगी। हमारा संग्राम ब्रिटिश पद्धति के विरुद्ध सामूहिक संग्राम था न कि यह हमारा निजी संग्राम था।

हम अपनी गलती नहीं मानते, तथा हमारा यह वक्तव्य है कि कार्य समिति ने अपनी सुख्याति पर इससे बट्टा ही लगाया है, कि स्वतन्त्रता संग्राम में जो ऐतिहासिक कृत्य किये गये उन्हें आप से आप होने वाली भावुकतापूर्ण गलत कृतियाँ बतला दिया। हम अपनी गलतियों को समझने में असमर्थ हैं।

जो लोग जनता को इस बात के लिये कहते हैं कि एकदम विद्रोही होकर एक मुहूर्त में अपना सर्वस्व बलिदान कर दें, उन पर स्वाभाविक रूप से इस बात की जिम्मेदारी व मजबूरी है कि संग्राम की उपलब्ध शक्तियों को नेतृत्व दिया जाये तथा उनमें सहयोग स्थापित किया जाये। यह बहुत ही जरूरी है और इस हालत में और भी जरूरी हो जाता है जबकि प्रतिरोध विकेन्द्रीकृत है।

इसलिये हम देखते हैं कि इस प्रस्ताव में हमारे द्वारा जनता में उत्पन्न जोश को संगठित कर प्रयोग में लाना तो दूर, वरन् उसे पूरी तरह नकारकर अपना पल्ला झाड़ लिया गया। इसी नीति पर आगे चलते जाना इस बात को जाहिर करता है कि गत तीन वर्षों में जो तजुर्बे हुये उनसे इनकार किया जा रहा है। मरे हुये लोगों को वीर तथा शहीद कहना तथा तारीफ करना व साथ ही उनके कार्यों की निन्दा करना जिनको उन्होंने सामूहिक रूप से निर्भय होकर किया, इसका भी यही नतीजा हुआ कि जोश को कार्य से अलग कर दिया गया। इसी नीति के कारण भूतकाल में भी बहुत से अच्छे कार्यकर्ता काँग्रेस से अलग हो चुके हैं। इसलिये हमारी प्रार्थना है कि इन विषयों पर पुर्नविचार किया जाये। इस प्रस्ताव का भविष्य के संग्राम पर होने वाला असर बहुत ही गम्भीर व भयंकर होगा....।

अरुणा आसफअली व अच्युतपटवर्धन का यह पत्र काँग्रेस की सारी कहानी स्वयंमेव ही कह रहा है। अस्तु।

आजाद हिन्द फौज : सुभाषचन्द्र बोस

भारतवर्ष में ब्रिटिश सत्ता की चूलें हिला देने वाले १९४२ के आन्दोलन के बाद, इसके रहे-सहे तन्त्र को पूरी तरह तहस-नहस करने का कार्य, आजाद हिन्द फौज ने किया। द्वितीय विश्वयुद्ध

समाप्त होने पर, जब आजाद हिन्द फौज के सैनिकों पर दिल्ली में मुकद्दमा चलाया गया तब तक सारा राष्ट्र सुभाष बोस की इस सेना की असलियत व मकसद अच्छी तरह जान चुका था। अतः इसे लेकर जो आन्दोलन पुनः शुरू हुआ तथा ब्रिटिश कमाण्डर-इन-चीफ ने जब ब्रिटिश सेना के भारतीय सैनिकों से मतदान कराके यह जानना चाहा कि आजाद हिन्द फौज के सिपाहियों को सजा दी जाय या नहीं तब ८० प्रतिशत सैनिकों ने 'नहीं' में अपना मत दिया, तथा एक बार फिर उनसे यह कहने पर कि आपके इस मत का आपके सैनिक भविष्य पर बुरा असर पड़ सकता है तब भी ७८ प्रतिशत सैनिकों ने अपना मत 'नहीं' में ही दिया। अन्ततः अन्य सामयिक कारणों के साथ-साथ इन सैनिकों का दृढ़राष्ट्र प्रेम भी आजाद हिन्द फौज के सैनिकों पर मुकद्दमा चलाने के सम्बन्ध में एक बहुत बड़ा प्रतिरोध साबित हुआ। यह तथ्य उन्हीं दिनों 'हिन्दुस्तान स्टैंडर्स' नामक अखबार में प्रकाशित किये गये थे।

आगे आजाद हिन्द फौज के कार्यकलापों के बारे में अतिसंक्षेप में कुछ तथ्य देने का प्रयास किया जाता है। प्रथम विश्वयुद्ध से सम्बन्धित अध्याय में हम यह दिखा चुके हैं कि किस प्रकार गदर पार्टी द्वारा ब्रिटिश फौज के पकड़े गये भारतीय सिपाहियों को प्रेरित करके श्री बरकतुल्ला के प्रयासों से उन दिनों भी आजाद हिन्द फौज का गठन किया गया था, जो ब्रिटिश सिपाहियों से लड़ी थी। पर अधिक सफलता नहीं मिली थी।

द्वितीय विश्वयुद्ध के समय भी घटनाक्रम कुछ इस प्रकार चल रहा था कि एक बार फिर आजाद हिन्द फौज के गठन की संभावना नजर आने लगी। १९२० के आस-पास रासबिहारी बोस जापान में ही आकर बस गये थे, तथा वहीं एक जापानी महिला से विवाह कर रह रहे थे। द्वितीय विश्वयुद्ध प्रारम्भ होते ही तथा जापान का पूर्वी क्षेत्र में विजय का तांता लगने पर रासबिहारी को एक बार फिर जापान के साथ मिलकर ब्रिटिश से भारत में युद्ध कर, राष्ट्र को स्वतन्त्र कराने की संभावना नजर आयी। जापान में उनका अच्छा खासा प्रभाव था, अतः जब उन्होंने अपनी योजना विस्तार से जापान के उप समरसचिव को समझाई तो वे तुरन्त इस योजना के लिये तैयार हो गये। तदनुसार 'इण्डियन इण्डिपैण्डेन्स लीग' का जन्म हुआ जिसके अध्यक्ष रासबिहारी चुने गये। सारे भारतीय रासबिहारी नाम से अच्छी तरह परिचित थे, अतः पूर्वी

देशों में भी जहाँ-जहाँ जापान की विजय होती गयी वहाँ-वहाँ इण्डियन इण्डिपैण्डेन्स लीग के दफ्तर खुलते चले गये। इस प्रकार बैंकाक में स्वामी सत्यानन्द पुरी के नेतृत्व में शाखा खुल गई।

युद्ध के दौरान जो भी भारतीय सैनिक पकड़े जा रहे थे उन्हें प्रेरित करके संगठित किया जा रहा था। रासबिहारी की योजनानुसार एक ओर तो इन सैनिकों को संगठित करना था तथा दूसरी ओर शत्रु सेना के अन्दर घुस कर भारतीय सैनिकों को ब्रिटिश के पक्ष में युद्ध करने की व्यर्थता व राष्ट्र के स्वतन्त्र कराने के महत्व को समझाने के लिये, बहुत से क्रान्तिकारी ब्रिटिश सेना में घुस गये व यह कार्य जोरों से चलने लगा। इसी श्रृंखला में श्री प्रीतम सिंह, कैप्टेन मोहन सिंह से मिले जो अपनी सैनिक टुकड़ी के साथ जापानियों द्वारा अलग-थलग कर दिये गये थे। प्रीतम सिंह के बहुत समझाने पर उन्होंने अन्ततः जापानी सेना के सामने आत्मसमर्पण कर दिया तथा आजाद हिन्द फौज के गठन में पूरी ताकत से लग गये। प्रारम्भ में यह दल मात्र २०० सैनिकों का था जो मोहन सिंह के प्रयास से बढ़कर ३० हजार तक पहुँच गया, तथा इसमें नये अफसर यथा कैप्टेन मोहम्मद अकरम खां, कर्नल गिल, राघवन, मैनन और गोहो भी जुड़ गये।

१९४२ में मार्च से जून तक कई बैठकें हुई जिनमें आजाद हिन्द फौज का लक्ष्य व जापान के साथ उनके सम्बन्धों का आधार आदि बातों का निर्णय किया गया। जो प्रस्ताव पास किये गये उनका सार था कि—

१. भारत एक तथा अविभाज्य है। काँग्रेस एक मात्र प्रतिनिधि मूलक संस्था है।

२. जापान सरकार के सम्बन्ध में निर्णय लिया गया है कि वह भारतीयों को स्वतन्त्र नागरिक समझे, पूर्वी एशिया के भारतीयों की सम्पत्ति को शत्रु सम्पत्ति न समझे।

३. युद्धोपकरणों आदि के रूप में भारतीय जो कुछ भी लेंगे, उसे स्वतन्त्र भारत चुकता करेगा।

४. आजाद हिन्द फौज का अब बाकायदा संगठन हो, कप्तान मोहन सिंह उसके कमाण्डर हों।

५. सुभाष बोस को अनुरोध किया जाये कि वे यहाँ आकर कार्यभार संभालें।

६. आजाद हिन्द फौज, जापान की कठपुतली नहीं है। वरन् जापान के साथ सहयोग करने वाली एक स्वतन्त्र अस्तित्व वाली सेना है।

अगले करीब डेढ़ वर्षों तक जापान व आजाद हिन्द फौज के बीच मनमुटाव होता रहा तथा कई मुद्दों पर सहमति न होने, यहाँ तक कि विरोध होने पर तथा जापान के अध्यक्ष तोजो के आश्वासन देने पर भी कि, जापान का भारत पर हमला करने का कोई इरादा नहीं है, बात नहीं बनी तथा जापान द्वारा जनरल मोहन सिंह की गिरफ्तारी होने पर, आजाद हिन्द फौज को कुछ काल के लिये भंग कर दिया गया और इस बीच अन्य अफसरों में शाहनवाज हुसैन भी जुड़ गये।

अन्ततः एक बार पुनः १९४३ की फरवरी में आजाद हिन्द फौज के ३०० अफसरों की एक काउन्सिल बुलाई गयी, तथा गलतफहमियाँ दूर होने के पश्चात् एक बार पुनः रासबिहारी के प्रयासों से आजाद हिन्द फौज का गठन शुरू कर दिया गया। इसी बीच सुभाषचन्द्र बोस भारत से फरार होकर जर्मनी होते हुये एक सबमैरीन द्वारा जापान पहुँच गये। तथा २० जून १९४३ को टोक्यो रेडियो ने इसकी पुष्टि कर दी। उनके पहुँचते ही रासबिहारी ने आजाद हिन्द फौज का पूरा नेतृत्व नेताजी को सौंप दिया तथा जापान का पतन होने से पहले ही जनवरी १९४५ में उनकी मृत्यु हो गयी।

सुभाष बाबू ने जर्मनी में आजाद हिन्द फौज का संगठन करने के बाद टोक्यो पहुँचकर अपने संगठन का लक्ष्य जनता के सामने रखा। ''हमारा यह उद्देश्य कदापि नहीं है कि अंग्रेजों के जुए की जगह हम पर जापानी जुआ आ जाय। हम तो भारत को ब्रिटिश गुलामी से मुक्त कराना चाहते हैं और इस सम्बन्ध में जापान की मदद चाहते हैं।'' नेताजी के जापान पहुँचने पर मात्र एक मास के समय में आजाद हिन्द फौज का गठन हो गया। जुलाई १९४३ में वे सिंगापुर आ गये जहाँ उनका भव्य स्वागत हुआ। पूर्वी ऐशिया के भारतीयों ने इस पुनीत यज्ञ में जी भरकर दान दिया। तथा उन्हीं के पैसे से आजाद हिन्द फौज का सारा खर्चा वहन होता था तथा २५ अगस्त को सुभाष बाबू ने आजाद हिन्द फौज का नेतृत्व अपने हाथ में ले लिया। अक्टूबर में बापू का जन्म मनाते हुये उन्होंने कहा—''यदि १९२० की असहाय हालत में गाँधीजी संग्राम के

अपने नये तरीकों को लेकर न आते तो शायद अब भी भारतवर्ष ज्यों का त्यों पतित होता।''

२१ अक्टूबर १९४३ को आजाद हिन्द सरकार की स्थापना हुई। इस उपलक्ष्य में सिंगापुर में बहुत बड़ा समारोह हुआ तथा रासबिहारी, कर्नल चटर्जी आदि ने अपने-अपने ओजस्वी भाषण दिये।

आजाद हिन्द फौज का घोषणा-पत्र—प्लासी में सन् १७५७ की हार के बाद १०० वर्ष तक हिन्दुस्तानी अपनी स्वतन्त्रता के लिये बराबर लड़ते रहे। इस युग का इतिहास स्वतन्त्रता की खूनी लड़ाई का इतिहास है। सिराजुद्दौला, टीपू सुल्तान, हैदरअली, अवध की बेगमें, शक्ति सिंह अटारी वाला, झाँसी की रानी, तांत्या टोपे, नाना साहब का नाम इतिहास में स्वर्ण अक्षरों से लिखा जायेगा। दुर्भाग्यवश हमारे पूर्वज यह नहीं समझते थे कि विजय के लिये-'एकता' पहली शर्त है। इसलिये १८५७ में उनकी हार हो गयी। बाद में कायर अंग्रेजों ने भारतीयों से हथियार छीन लिये, कुछ दिनों तक भारतीय शान्त रहे। मगर १८८५ में कांग्रेस की स्थापना से एक नई जागृति का ही प्रादुर्भाव हुआ। इस स्वतन्त्रता के प्रात:काल में हमारा कर्त्तव्य है कि आजाद सरकार की स्थापना कर उसके संरक्षण में हम आजादी की लड़ाई शुरू कर दें। और तब तक लड़ें जब तक हम स्वतन्त्र न हो जायें।

भारत के आजाद मंत्री—इस घोषणा पत्र के साथ ही आजाद हिन्द फौज की स्थाई सरकार रंगून में ही बनी। जिसके अध्यक्ष, प्रधानमंत्री व विदेश मंत्री बने श्री सुभाषचन्द्र बोस तथा अन्य कुछ नाम हैं—कैप्टेन श्रीमती लक्ष्मी सहगल, लैफ्टीनेण्ट कर्नल चटर्जी अर्थ मंत्री, ले०क० गुलजारा सिंह, एम०जेड० कयानी, एहसान कादिर, लोकनाथ, ले०क० शाहनवाज आदि भी सरकार में विभिन्न भागों के मंत्री बने।

क्रान्ति की गाड़ी आगे की ओर—इस सरकार की ओर से ब्रिटेन तथा अमेरिका के विरुद्ध युद्ध की घोषणा की गयी। जनवरी १९४४ में आजाद हिन्द फौज की 'सुभाष ब्रिगेड' युद्ध क्षेत्र में उतरने के लिये रंगून पहुँची। यद्यपि यह सेना जापान के साथ युद्ध में थी पर नेताजी ने स्पष्ट कर दिया कि उनकी सेना जापानी कानून के आधीन काम नहीं करेगी, तथा भारत भूमि में पहले आजाद हिन्द फौज को राष्ट्र के तिरंगे के साथ भारत में घुसने दिया

जाये, तथा कोई और झण्डा भी भारत में नहीं फहराया जाये। यह स्मरण रहे कि आजाद हिन्द फौज का सारा खर्चा स्वयं भारतीय वहन करते थे। हाँ, जो जापान से युद्धोपकरण लेते थे उसका मूल्य स्वतन्त्र भारत की सरकार चुकायेगी। इस प्रकार का करार जापान के साथ था। नेताजी को करोड़ों का दान मिला। दाताओं में मुसलमानों की संख्या बहुत अधिक थी।

युद्ध का परिदृश्य, शुरूआती विजय के बाद पीछे हटने को विवश—बर्मा व भारत से मिलने वाली मणिपुर व नागालैण्ड की सीमा में यह फौज प्रवेश कर गयी तथा अराकान, कलादान, टिड्डिम, पलेस, कोहिमा, हाका आदि स्थानों पर विजय प्राप्त कर ली। सर्वप्रथम इसने मई १९४४ में प्रवेश करके मोऊडक में प्रवेश करके तिरंगा फहराया तथा 'शुभ सुख चैन' गाना गाया।

कालान्तर में यौद्धिक परिस्थितियाँ जापान के विरुद्ध होती गयी, तथा एक के बाद एक अमेरिका के प्रचण्ड व भीषण आक्रमणों के सामने मजबूरन जापानी सेना को पीछे हटना पड़ा तथा नौबत रंगून छोड़ने तक की आ गयी। इस बदली स्थिति में विजयी रहने पर भी आजाद हिन्द फौज को भी पीछे हटना पड़ा तथा नवम्बर १९४४ को यह सेना रंगून पहुँच गयी।

नेताजी, कर्नल हबीबुर्रहमान व अन्य सहयोगियों के साथ नवम्बर १९४४ में आगे की रणनीति समझने टोक्यो चले गये, पर १९४५ की जनवरी में लौटने पर पूरा परिदृश्य ही बदल चुका था तथा सारी ही सेना के पीछे हटने की बारी थी।

जर्मनी ने घुटने टेक दिये तथा जापान के लगातार हारने के कारण आजाद हिन्द सेना के सामने भी जीत के सारे रास्ते बन्द हो गये। इस पर भी बहुत से फौजियों ने लड़कर प्राण न्यौछावर करना उचित समझा। अतः या तो युद्धभूमि में मारे गये या गिरफ्तार हो गये। २३ अप्रैल को जापनी रंगून त्यागकर चले गये। तब आगे की युद्धनीति पर चर्चा करने नेताजी, कर्नल हबीबुर्रहमान के साथ विमान से टोक्यो रवाना हुये पर रास्ते में ही दुर्घटना हो गयी तथा नेताजी के सर में बहुत चोट आयी और ६ घण्टे बाद उनकी मृत्यु हो गयी। यह ब्यौरा उनके साथी श्री हबीबुर्रहमान का दिया हुआ है, इस प्रकार एक अत्यन्त तूफानी जीवन का अन्त हो गया, जो जिया तो देश के लिये और मरा तो देश के लिये। कालान्तर में बचीखुची फौज ने भी आत्मसर्पण कर दिया।

आजाद हिन्द फौजियों पर मुकद्दमा—ब्रिटिश सरकार ने काफी फौजियों को तो कोर्टमार्शल करके मार डाला, पर दिखाने के लिये दिल्ली के लालकिले में कुछ को यथा मेजर जनरल शाहनवाज, लक्ष्मी सहगल तथा ढिल्लन पर पहला मुकद्दमा चला। पर नतीजा उल्टा हुआ। सारी जनता भड़क गयी। आजाद हिन्द फौज की वास्तविकता सारे भारतीय जान चुके थे। आजाद हिन्द फौज के सम्बन्ध में जो प्रचार कार्य हुये और जिस प्रकार जनता में इसके बाहदुर नेताओं की आवभगत हुई उसके फलस्वरूप ब्रिटेन की भारतीय फौज पर बहुत क्रान्तिकारी प्रभाव पड़ा। इसमें सन्देह नहीं कि भारत की जनता को तैयार करने में लगभग २७ वर्षों में महात्मा गाँधी का बहुत बड़ा हाथ रहा है पर उनका प्रभाव चाहे जितना भी हो, न तो वह, न अन्य क्रान्तिकारी, भारतीय फौजों पर वह प्रभाव डाल सके, जिसके कारण ब्रिटिश साम्राज्यवाद का भारत त्याग एक वास्तविकता होकर रहा। यह सच है कि आजाद हिन्द फौज ने एकोक ही सब कुछ नहीं कर दिया। बीज तो भीतर ही काम करता है, तथा इसका प्रतिफल आजाद हिन्द फौज का वह पेड़ था जो हमारे सामने आया। आजाद हिन्द फौज खुद ही क्रान्तिकारियों विशेषकर रासबिहारी व नेताजी सुभाष द्वारा उत्पन्न हुई थी। जनता के जगाने वाले के रूप में गाँधीजी तथा फौज को जगाने वाले के रूप में नेताजी सुभाषचन्द्र बोस का नाम सदा अमर रहेगा। आजाद हिन्द फौज से ब्रिटिश साम्राज्यवाद की इमारत को वह अन्तिम धक्का लगा जिसमें वह ढह गयी। भारतीय सेना लगभग रातों-रात विदेशी पिट्ठू सेना से देश भक्त सेना में परिणित हो गयी।

इधर सशस्त्र सेना में अंग्रेजों के प्रति भीषण असन्तोष पैदा हो गया, तथा भारतीय नेवी ने तो खुल्लमखुल्ला विद्रोह कर दिया जो 'नेवी म्यूटिनी' नाम से प्रसिद्ध है। जाहिर है कि जिस सेना के दम पर ब्रिटिश अपनी हुकूमत राष्ट्र पर कायम रख सके थे जब वही उनसे विद्रोह करने लगी, तो उन्हें भारत छोड़कर जाना पड़ा तथा १५ अगस्त १९४७ को देश स्वतन्त्र तो हो गया, पर विभाजन का जो खंजर माँ भारती के वक्षस्थल पर लगा, वहाँ से रक्त अभी तक रिस रहा है। पता नहीं यह घाव कब भरेगा।

—:०:—

मूल्य : ₹१२०

ISBN-978-81-940956-5-1

9 788194 095651

हितकारी प्रकाशन समिति
E-mail : aryaprabhakar@yahoo.com

आवरण : श्रीमहालक्ष्मी; ९८९९६५१५०३
E-mail : smcolour@gmail.com